कमीशन दर

लीग से प्रकाशित पुस्तकों पर निम्न-लिखित दर से कमीशन दिया जायगा।

१५) रु० के मूल्य तक की पुस्तकों पर कोई कमीशन नहीं दिया जायगा।

१५) रु० से अधिक और ३०) रु० तक की पुस्तकों पर १२।।) रु० सै०

३०)	,,	६०)	,,	२०)	,,
६०)	,,	१००)	,,	२५)	,,
१००)	,,	२००)	,,	३३।-)	,,
३००)	,,	४००)	,,	३५)	,,
४००)	,,			४०)	,,

कृपा करके आप अपने आज्ञापत्र में यह अवश्य लिखें कि आपकी पुस्तकों का पारसल आपको किस प्रकार से (सवारीगाड़ी या मालगाड़ी अथवा डाकख़ाने के द्वारा) भेजा जाय, और इसके अतिरिक्त आप अपना पूरा-पूरा नाम और पता तथा निकट का स्टेशन इत्यादि सब शुद्ध और साफ़ (पढ़ने के योग्य) लिखने की कृपा करें, अन्यथा आपके आज्ञा-पत्र की पूर्ति में यदि विलंब होगया या उसकी ओर ध्यान ना दिया जा सका, तो उस के लिए आप लीग का कोई अपराध न समझियेगा और न उसे दोषी ठहराइयेगा।

विशेष जानकारी के लिये कृपया निम्न-लिखित पते पर पत्र-व्यवहार कीजिये—

मैनेजर

श्रीरामतीर्थ-पब्लिकेशन लीग

नं० २५ मारवाड़ी-गली, लखनऊ

श्रीः

स्वामी रामतीर्थ
के
लेख व उपदेश

अर्थात्

(हिंदी-भाषा में)

कुल्याते-राम (खुमखाना-ए-राम) जिल्द १

प्रकाशक—
श्रीरामतीर्थ-पब्लिकेशन लीग
लखनऊ

मार्च] द्वितीयावृत्ति [१६३६

मूल्य
साधारण संस्करण १) विशेष संस्करण १।)

मुद्रक श्रीदुलारेलाल भार्गव, गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस, लखनऊ

नं०	नाम पुस्तक	सा० सं०	वि० सं०
४.	ख़तूते-राम (गुरुजी के नाम राम के पत्र) पृष्ठ २०८	॥)	॥।)
५.	संक्षिप्त राम-जीवनी, पृष्ठ लगभग ३३० ...	॥।)	१)

आत्मदर्शी बाबा नगीनासिंह वेदी-कृत

नं०	नाम पुस्तक	सा० सं०	वि० सं०
६.	वेदानुवचन, पृष्ठ लगभग ५२० ...	१॥)	२)
७.	मियारुल मिकाशफ़ा, पृष्ठ लगभग १७० ...	॥)	१)
८.	रिसाला अजायबुल-इल्म, पृष्ठ लगभग १२० ...	।=)	॥।)
९.	जगजीत-प्रश्न (ईशावास्योपनिषद् की शांकर-भाष्यानुसार व्याख्या, पृष्ठ लगभग १०० ...	।=)	॥।)

अँगरेज़ी में

नं०	नाम पुस्तक	सा० सं०	वि० सं०
१.	स्वामी राम के समग्र अँगरेज़ी उपदेश व लेख, आठ जिल्दों में, पूरा सेट बिना कमीशन	७)	१४)
,,	प्रति जिल्द ...	१)	२)
२.	पैरेबल्स ऑफ़ राम (उक्त उपदेशों में स्वामी राम से वर्णित समग्र कहानियाँ), पृष्ठ लगभग ५००	२)	३)
३.	स्वामी राम की नोटबुक्स, दो जिल्दों में ...	२)	४)
	प्रति जिल्द ...	१॥)	३)
४.	सरदार पूर्णसिंह-कृत स्टोरी ऑफ़ स्वामी राम द्वितीयावृत्ति, पृष्ठ लगभग ३२५ ...	२॥)	३)
५.	पं० ब्रजनाथ शर्मा-कृत स्वामी राम की सविस्तर जीवनी और उपदेश-सार, पृष्ठ ७५० से ऊपर ...	३॥)	४)
६.	हार्ट ऑफ़ राम	॥)	
७.	पोइम्स ऑफ़ राम	॥)	१)
८.	संक्षिप्त राम-जीवनी सहित गणित पर के व्याख्यान के	॥)	
९.	प्रैक्टिकल गीता (बा० नारायणस्वरूप-कृत) ...		।=)

स्वामी राम के छपे चित्र भिन्न-भिन्न आकृति में

प्रति चित्र सादा)॥, तिरंगा बड़ा =), छोटा -)

राम कैलेंडर (जिसमें अति सुंदर तिरंगा चित्र छपा हुआ है), प्रति कापी सहित तारीख़ के =)॥ बिना तारीख़ =)

मैनेजर—श्रीरामतीर्थ-पब्लिकेशन लीग, लखनऊ

विषय-सूची

विषय | पृष्ठ

श्रीरामतीर्थ-पब्लिकेशन लीग के ग्रंथ

हिंदी में

नं०	नाम पुस्तक	सा० सं०	वि० सं०
१.	श्रीरामतीर्थ-ग्रंथावली २८ भागों में, पूरा सेट ...	१०)	१५)
	,, फुटकर भाग ...	॥)	॥।)
२.	उक्त ग्रंथावली की संशोधित आवृत्ति के पहले १८ भाग, छः जिल्दों में। प्रति जिल्द	१)	१॥)
३.	दशादेश (राम बादशाह के १० हुक्मनामे)		१)
४.	राम-वर्षा भाग १-२ एक (जिल्द में) ...	१)	१॥)
५.	राम-पत्र (गुरुजी के नाम राम के पत्र) ...	१)	१॥)
६.	बृहत् राम-जीवनी (उर्दू कुल्लियाते-राम, जिल्द २ का हिंदी अनुवाद), पृष्ठ ६७२ ...	२॥)	३)
७.	श्रीमद्भगवद्गीता, श्री० आर० एस० नारायण स्वामी-कृत व्याख्या-सहित, दो जिल्दों में, पृष्ठ लगभग २०००	४)	६)
	प्रति जिल्द) ...	२)	३)

आत्मदर्शी बाबा नगीनासिंह वेदी-कृत

नं०	नाम पुस्तक	सा० सं०	वि० सं०
८.	वेदानुवचन, प्रथम आवृत्ति पृष्ठ लगभग ५५०,	१॥)	१॥।)
	,, द्वितीय आवृत्ति. पृष्ठ-लगभग ७१५	२॥)	३)
९.	आत्मसाक्षात्कार की कसौटी, पृष्ठ १७२ ...	॥)	॥।)
१०.	रिसाला अजायबुल-इल्म अर्थात् भगवत्-ज्ञान के विचित्र रहस्य, पृष्ठ १६० ...	॥)	॥।)

उर्दू में

नं०	नाम पुस्तक	सा० सं०	वि० सं०
१.	कुल्लियाते-राम जिल्द १ (रिसाला अलिफ़ के एक वर्ष के १२ अंक), पृष्ठ लगभग ५०० ...	१॥)	२)
२.	कुल्लियाते-राम जिल्द २ (अर्थात् स्वामी राम की सविस्तर जीवनी), पृष्ठ लगभग ५०० ...	१॥)	२)
३.	राम-वर्षा, दोनों भाग एक जिल्द में, पृष्ठ लगभग ५२५	१)	१॥)

प्रासंगिक वाक्य—धन्य हैं वे महापुरुष, जो बचपन से लेकर समस्त अवस्थाओं को पार करके विज्ञानस्वरूप हो दुबारा बच्चे के समान सब दुःख-सुख आदि द्वंद्वों से छुटकारा पा चुके हैं, और इस पद्य के वाच्य हैं कि

इंतहाए-कार जो थी इब्तिदाए-कार थी ।

अर्थात् जो साधन वा कर्म का अन्त था, वही उसका आरम्भ था ।

ऐ पाठक ! स्मरण रहे, यह महात्मा ऊपर से प्यारे-प्यारे, भोले-भाले वही हैं, जिनका काम है ईश्वर की छाती पर कूदना । इंद्र आदिक देवता उनको हाथों पर उठाते हैं, ब्रह्मा आदिक उन पर वारे-वारे जाते हैं, किंतु कैसी बेपरवाही ! कि आँख उठाकर देखते भी तो नहीं । चारों वेद इन्हीं को प्रशंसा और स्तुति करते हैं—

धूलि तिन्हाँदी जे मिले नानक दी अरदास ।

यदि ऐसे महापुरुषों की चरण-रज मिले, तो इसे गुरु नानक की भेंट समझो ।

कुछ बहुत समय बीतने नहीं पाता कि बच्चे का आनंद अपना मुख्य स्थान परिवर्तन करता है । अब खेल-कूद में जो आनंद है, वह और कहीं नहीं । यहाँ तक कि माँ भी बिसर जाती है । विद्या-कला, धन-मान का तो पूछना ही क्या है ।

थोड़ा समय और बीतता है कि आनंद का चक्कर अपना केंद्र किताबों को बना लेता है । अब न खेल सूझता है, न कसरत; न माँ याद है, न सौंदर्य और न तमाशा ।

कुछ समय के पश्चात् नौकरी आदि मिली । आनंद लक्ष्मी के करिश्मे (चमत्कार) में आ स्थिर हुआ । अब रुपया की टंकार-जैसा कोई राग ही नहीं, धन इकट्ठा करने से श्रेष्ठ कोई काज ही नहीं ।

इस जड़ माया के आने पर चंचल माया (स्त्री) की लगन में

सब उड़ गये, सुहागा फिर गया, सब सफ़ाई हो गई। आगे क्या कहूँ ? आगे क्या कहूँ ?

ज्ञान की आई आँधी रे यारो, ज्ञान की आई आँधी।
सकल उड़ानी भरम की टाटी, क्या रानी क्या बाँदी॥

समस्त संसार ज्ञानाग्नि में जल गया।

वार, पार, यार; जित वल देखा नूर जमाल॥

रामकृष्ण परमहंस के सम्मुख स्त्री आ खड़ी हुई; माँ! माँ! काली! काली! कहकर चरण पकड़ लिए। मजनूँ के सामने बाप खड़ा था—

मजनूँ गुफ़्ता बिगो, पिदर कीस्त ?
ग़ैर अज़ लैला दिगर कसे चीस्त।

अर्थ—ऐ मजनूँ! बता, तेरा पिता कौन है ? उसने कहा कि लैला के सिवा और कौन हो सकता है, अर्थात् लैला ही है।

शिबली जुमे (शुक्रवार) की नमाज़ के लिये इमाम बनाया गया, तो वहाँ यह मधुर वाक्य उसने गाया—

मन ख़ुदायम, मन ख़ुदायम, मन ख़ुदा।
फ़ारग़म अज़ किब्रो अज़ कीनों हवा॥

अर्थ—मैं ख़ुदा हूँ, मैं ख़ुदा हूँ, मैं ख़ुदा हूँ, और लालच, द्वेष तथा अभिमान से मैं मुक्त हूँ।

यह सुनकर जुनैद ने शिकायत की—

आँचे मन बा तो गुफ़्ताअम व नहुफ़्त।
तो अयानश हमी कुनी अज़हार॥

अर्थ—जो कुछ मैंने तुझको पोशीदगी (एकांत) में कहा, तू उसको खुल्लम खुला प्रकट करता है।

शिबली ने उत्तर दिया—

मन हमी गोयम व हमी शुनवम।
नेस्त कस ग़ैरे-मन व हर दो दयार॥

निवेदन

हिंदी-ग्रंथावली के भाग ११ से १४ के भीतर-भीतर जो "खुम-खाना-ए-राम" जिल्द पहली, अर्थात् उर्दू रिसाला अलिफ़ के प्रथम वारह अंकों का हिंदी-अनुवाद पृथक्-पृथक् भागों में विना क्रम के विभक्त हुआ छपा था, वह आज एक स्थान पर एकत्र करके क्रम-पूर्वक एक बृहद् पुस्तकाकार में प्रकाशित किया गया है। इसीलिए इसका नाम भी "खुमखाना-ए-राम" (कुल्याते-राम) जिल्द पहली रक्खा गया है। इससे पहले खुमखाना-ए-राम जिल्द दूसरी जिसमें उर्दू रिसाला अलिफ़ के शेष अंक थे और जो हिंदी-ग्रंथावली के अनेक भागों में विखरकर छप चुके थे, उन सबका हिंदी-अनुवाद सहित स्वामी राम की विस्तार-पूर्वक जीवनी के छप चुका था, जिसका नाम हिंदी "में बृहद् राम-जीवनी" है। इस हिंदी "खुमखाना-ए-राम" जिल्द पहली की माँग बहुत ज़ोर से थी, जिसे आज पूरी होते देखकर हमें आनंद हो रहा है। इस प्रकार लीग अब हिंदी-ग्रंथावली के लगभग १६ भागों का अनुवाद संशोधित करने के वाद पाँच बृहद् जिल्दों में प्रकाशित करने में सफल हुई है। यदि ग्रंथावली के पाठकों व राम-प्रेमियों ने ग्रंथावली के शेष १२ भागों के शीघ्र वितरण करने व कराने में तन, मन, धन से सहायता दी, तो आशा है कि लीग इन अवशिष्ट १२ भागों का अनुवाद भी शीघ्र शुद्ध कराकर बृहद् पुस्तकाकार में लगभग चार जिल्दों में प्रकाशित करने में सफल हो जायगी। ईश्वर करे. राम-प्रेमियों के हृदय में इस धर्म-कार्य के लिये उत्साह दिन-प्रति-दिन वृद्धि पावे. जिससे लीग अपने

हँसी की खसी कर रहे हो। ओ शिवशंकर! तेरे सामने तेरी लापरवाही मूर्तिमान् होकर "कामदेव" के रूप में प्रकट हो तुझ पर तीर और तुफ़ंग बरसा रही है। खोल अपना तीसरा नेत्र (ज्ञान-चत्तु), और इस कामदेव को भस्म कर।

न मारा आपको जो ख़ाक हो अक्सीर बन जाता।
अगर पारे को ऐ अक्सीरगर! मारा तो क्या मारा॥

ओ सूर्यरूप मनुष्य! आप ही अविद्या के बादल बनाकर अपने प्रकाश को मत छिपा ले। क्यों नहीं तुमसे प्रकाश के सोते प्रतिच्चण चारों ओर जारी रहते? ओ सत्य के जिज्ञासु! तेरी सुगंध से संसारोपवन महक जाना चाहिए, तेरे शुद्ध जीवन के प्रभाव की बदौलत शांति और आनंद (Peace on earth and good will) से संसार की वायु सुगंधित हो जाना चाहिए। जैसे दीपक से प्रकाश फैलता है, वैसे ही तुझसे आनंद चारों ओर बरसते रहना चाहिए। स्त्री या पुरुषों की छातियों में कामदेव के उपद्रव एवं ईर्ष्या-द्वेष की आँधियों को तेरे अमृत बरसानेवाले दर्शनों से ही रुक जाना चाहिए, जैसा कि भगवान् दत्तात्रेय को दूर से दो एक बेर देखने से एक प्रथम श्रेणी की पुंश्चली स्त्री (वेश्या) का जीवन पल्टा खा गया था; हृदय को सुख और आँखों को शीतलता देनेवाले दर्शनों से शांति की ऐसी वर्षा हो गई कि मानो भयानक आँधी का तूफ़ान दूर हो गया; बेचारी के मन का कल्मष और कलुषता की धूलि आदि सब एकदम बैठ गई (दूर हो गई)।

हर ज्ञान-प्रदीप सदा लशके। मन-मंदिर योगिन के बसके॥
बहु मोह उदय जो हृदय तिनके। तमपुंज वहीं ताको हनि के॥
अति लौल अनंग पतंग महा। छिन माहिं स्वभाविक ताहिं दहा॥
निहकाम समूह गुणाग्रदिपै। सो सनेह-सनेह वही अरपै॥
जिनके अति भाल के भाग भले। अस दीपक ता मन-धाम जले॥

कर्तव्य-पालन में दिनोंदिन उन्नति करती जाय और इस शुभ धर्म-सेवा में कृतकृत्य हो। तथास्तु।

सुर्जनलाल (शांतिप्रकाश)
अवैतनिक मंत्री श्रीरामतीर्थ-पब्लिकेशन लीग
लखनऊ

वैसे ही तुम्हें तनिक भी अधिकार नहीं कि तुम्हारी आध्यात्मिक वीमारी औरों को जा लगे—"को वा ज्वरः प्राणभृतां हि चिंता।" प्राणियों के लिये ज्वर क्या है ? चिंता और शोक।

रूए कि ज़ो दिले न कुशायद न दीदनीस्त।
हरफ़े कि नेस्त मग़ज़ दरो ना शुनीदनीस्त॥

अर्थ—वह मुखड़ा, जिसके देखने से किसी का चित्त प्रसन्न न हो, देखने योग्य नहीं है; वह हरफ़ (बात) जिसमें तात्पर्य कुछ नहीं है, सुनने योग्य नहीं।

Do any hearts beat faster,
Do any faces brighten,
To hear your footsteps on the stair,
To meet you. greet you, anywhere ?
Are any happier to-day
Through words they have heard you say ?
Life were not worth the living
If no one were the better
For having met you on the way,
And known the sun-shine of your stay.

अर्थ—जीने में तुम्हारे पगों का शब्द सुनकर या किसी स्थान पर तुमको मिलने और सलाम करने से किसी का चित्त आप के प्रेम में लिप्त हुआ या किसी व्यक्ति का मुखमंडल प्रफुल्लित हुआ ? तुम्हारे मुख से निकले हुए शब्दों को सुनकर कोई मनुष्य आज पहले की अपेक्षा अधिक प्रसन्न हुआ ? निस्संदेह यह जीवन जीवित रहने योग्य कदापि नहीं, यदि कोई पुरुष मार्ग में तुमको मिलकर या तुम्हारे निवास का प्रसाद जानकर उत्तम न हो, अर्थात् यदि किसी को तुमसे कुछ लाभ न पहुँच सके, तो तुम्हारा संसार में जीना व्यर्थ और निष्प्रयोजन है।

शुभ समाचार

यों तो श्रीरामतीर्थ-पब्लिकेशन लीग, लखनऊ समय-समय पर अधिकारी सज्जनों व धार्मिक पुस्तकालयों को यथाशक्ति अपनी पुस्तकें बिना दाम अथवा आधे दाम पर बाँटती ही है, किंतु धार्मिक सज्जनों को इस धर्म-कार्य में हाथ बँटाने का शुभ अवसर देने के लिए लीग ने यह तय (निश्चय) किया है कि जो सज्जन इस शुभ उद्देश्य से स्थायी रूप से जितनी रक़म लीग के पास जमा करा देंगे, लीग उसके व्याज से—जो अधिक-से-अधिक ॥) प्रति सैकड़ा तक होगा—प्रतिवर्ष उनके नाम से पुस्तकें बिना दाम लिए अधिकारी सज्जनों व सार्वजनिक पुस्तकालयों को निरंतर वितरण करती रहेगी। आशा है, दानी सज्जन प्रसन्नता-पूर्वक इस शुभ कार्य में योग देंगे और इस रीति से यश व पुण्य दोनों के भागी होंगे।

मंत्री
श्रीरामतीर्थ-पब्लिकेशन लीग
लखनऊ

SWAMI RAMA TIRTHA M. A.

AMERICA 1903

आनंद

(रिसाला अलिफ नं० १)

ओ इस लेख से आँख लड़ानेवाले प्यारे! ज़रा उस दिन को याद कर जब कि तेरा आनंद माता के आँचल-तले ढका था, माँ की आस्तीन से बँधा था। स्वर्गीय सुंदरियाँ बुलाती हैं, अप्सराएँ गोद में लिया चाहती हैं, किंतु तुम हो और माँ का दुपट्टा। आप छिपते हो, मुखड़ा छिपाते हो। राजा साहब बुलाते हैं, मैजिस्ट्रेट साहब याद फ़रमाते हैं, तुम्हारी बला से, तुम तकते तक नहीं; वरन् अप्सरा-मुखी कपोलवालों और वैभववान् व्यक्तियों पर सचमुच पेशाब करना आप ही का काम था। एम्० ए० और एल्० एल्० डी० की तुम्हारे आगे कुछ हक़ीक़त ही नहीं। क़ीमती किताबें तुम्हारे ख़्याल में केवल फाड़ देने को बनाई गई थीं। क्योंजी! कैसे सुखी थे उन दिनों? सब देखनेवाले बलाएँ लेते हैं, भाई न्योछावर हुआ चाहते हैं, बहनें अपने आपको न्योछावर करने को तैयार हैं। पिता के प्यारे, माता की आँखों के तारे, ओढ़ने की फ़िकर न बिछौने का जिकर। सच है—

मासूम के बहिश्त सदा हम-रकाब है।

Heavan dwells with us in infancy.

शिशु के निकट नित्य स्वर्ग का वास है।

यह वही दिन है, जहाँ दृष्टि में न लोक है न परलोक, न जीव है न ईश्वर, न 'मैं' है न 'तू', न गुण है न दोष, न धृष्टता है न लज्जा, सुंदरियों के हाव-भाव और कटाक्ष नितान्त निस्सार, संसार की सुख-समृद्धि अत्यन्त निरर्थक।

मग्न हो गया। वह रुपया, जो शेष सब वस्तुओं से अधिक प्यारा था, स्त्री के लिये उस रुपये को एक प्रकार से तिलांजलि देना प्रसन्नचित्त से स्वीकार हुआ। अब कनफटे गुरुजी (स्त्री) के रात के एकान्त के गुरु-मंत्रों में आनंदजी ने आसन जमाया। किंतु इसको चैन कहाँ !

बहूजी और बाबूजी नन्हें की बाट ताकते हैं। हाय, कब हमारे घर में बालक खेलेगा, कब उस खिलौने से दिल बहलेगा। बाबूजी तो अखबारों और डॉक्टरों से नुस्खे दरियाफ़्त करते हैं, और बहूजी गंडा-तावीज़, साधु-फ़कीर की खोज में रहती हैं कि हाय, किसी यत्न से अपने यौवन के विरवा में फल लगे। ज़र (धन) है, ज़ेवर (भूषण) है, जमीन है; पर एक ही वस्तु की कमी है, जिस बिना ये सारी वस्तुएँ फीकी हैं। बच्चे के लिये बाबूजी अपनी अर्धाङ्गिनी के जीवन में दूसरा विवाह करने को तत्पर हैं।

गंगामाई की कृपा से बालक हुआ। आँखें मलते-मलते इकलौते बेटे का मुख देखा। ऐसा सुख फिर कब होगा। ख़ुशी से फूले नहीं समाते। नन्हाँ है कि एक तमाशा है। सारे कुटुंब की जान है। उससे एक पल का वियोग दूभर है। दफ़्तर में काम करते ही नन्हाँ आँखों के सामने फिरता है। गृहस्थी के आनंद की सीढ़ी का डंडा खतम हो चुका (गृहस्थ के आनंद का अन्त हो चुका)। माँ है कि इस बच्चे को चूमती नहीं, गौ की तरह चाटती है, अपनी ही जान, अपने ही देह-प्राण गुमान करती है। दादी के प्रेम का तो कुछ पूछिए ही नहीं।

दौलत कोई दुनिया में पिसर[1] से नहीं बेहतर,
राहत[2] कोई आरामे-जिगर[3] से नहीं बेहतर;

---

१ पुत्र। २ सुख। ३ आत्मज।

लज़्ज़त कोई पाकीज़ा समर[१] से नहीं बेहतर,
निगहत[२] कोई बूए-गुले-तर[३] से नहीं बेहतर;
सदियों में इलाजे-दिले-मजरूह[४] यही है,
रेहाँ[५] है यही, राह[६] यही, रूह[७] यही है।
माँ-बाप को आसायशो-राहत है पिसर से,
तल्ख़ी[८] में भी जीने की हलावत[९] है पिसर से;
नूर जिस्म में आँखों में बसारत[१०] है पिसर से,
अय्यामे-जयीफ़ी[११] में भी ताक़त है पिसर से;
आरामे-जिगर, क़ूव्वते-दिल, राहते-जाँ है,
पीरी[१२] में यह ताक़त है कि पज़्मुर्दा[१३] जवाँ है।

बच्चा कुछ बड़ा हुआ। माँ के आँचल के ओझल ज़रा मुँह छिपाया, और तोतली ज़बान से पिता को कहा—'पा! झात', इतने ही में माँ और बाप दोनों को बेसुध कर दिया, मन मोह लिया, चित्त चुरा लिया, माता-पिता गद्गद हो गये। भई! सच कहना, यह अवस्था एक साधारण संसारी पुरुष के लिये आनंद की न सेनी का ऊँचा पाया (डंडा) है कि नहीं? न्याय की दृष्टि से देखो, तो मानना पड़ेगा कि इस अवस्था के बाद आनंद का सूर्य मध्याह्न (परा काष्ठा) से उतर जाता है। इसके बाद इधर तो जवानी की दोपहर ढलनी आरंभ होगी, और उधर बच्चा गुदगुदी के योग्य नहीं, वरन् सुधारने योग्य हो जायगा। मारे हँसी के दोहरा होकर और सारा मुँह खोलकर बेखटके ठट्ठा लगाना फिर कहाँ? उसे देख फिर उसकी शिक्षा और अध्ययन की चिंता होगी, कभी-कभी ताड़ना भी हुआ करेगी। लड़का फिर हर्ष-जनक नहीं, वरन् चिंता-जनक हो जायगा।

---

१ उत्तम फल। २ सुगन्धि। ३ ताज़े फूल की सुगंधि। ४ घायल चित्त का दारू। ५ पुष्प। ६ ख़ुशी। ७ प्राण। ८ दुःख। ९ सुख। १० दृष्टि। ११ वृद्धावस्था। १२ बुढ़ापा। १३ मुरझाया हुआ।

यह वर्णन स्पष्ट सिद्ध करता है कि हमारे बाबू साहब को जीवन के सैरो-सफर (यात्रा) ने सांसारिक आनंद की चोटी पर आन पहुँचाया। इस ऊँचाई पर बाबू साहब को खिला हुआ कमल-फूल मिला।

नन्हाँ है गोल मोल कि इक कँवल-फूल है ;
नाज़ुक है लाल लाल अचंभा अमूल है।

किंतु हमें बाबू साहब से क्या, हमें तो 'आनंद' का इतिहास लिखना है। कैसे रूप बदले! कहाँ-कहाँ फिरा, माँ के आँचल-तले, बच्चों के खेल-कूद में, किताबों के पृष्ठों में, सोने की चमक-दमक में, फूलों के रंग और गंध में, मूर्तियों की मुसकिराती हुई आँखों में, स्त्री के चुंबन और आलिंगन में, और हृत्खंड शिशु के प्यारे-प्यारे, लाल-लाल मुसकिराते हुए ओष्ठों में।

ओ आनंद! क्या तू सचमुच इन्हीं स्थानों में बसता है ?

दूसरा दृश्य

दोपहर का समय है। हमारे बाबू साहब कोट-पगड़ी उतार दफ़्तर के काम में लगे हैं। पंखा हो रहा है। यह लो, लेमोनेड की बोतल खुली। बरफ़ डालकर बाबू साहब ने पी ली। प्यास नहीं बुझती। हाय गरमी!

बाबू साहब की उपस्थिति में सब अधीन क्लर्क आदि साँस दाबे (चुपचाप) अपने-अपने काम में लगे हैं। कोई सिर नहीं उठाता।

टन टन टन टन टन.............

बाबू साहब—रामा! सुन तो टेलीफ़ोन क्या कहता है? क्या ख़बर है, कुशल तो है?

नौकर से इतना कहा और न मालूम क्यों, काम छोड़ लपककर स्वयं ही सुनने लगे। सुनना था कि हाय-हाय करके छाती

पीटना। क्या हुआ ? कैसी ख़बर थी ? कैसी प्राण-वेधी घटना थी ? हृदय छीलनेवाली आवाज़ थी ? सुनते ही आशा-लता पर बिजली गिरी। रंग उतर गया। ओंठ सूख गए। हाथ-पाँव फूल गए—

काटो तो लहू नहीं बदन में।

सरकारी काग़ज़ और नोट जो देखने के निमित्त खुले पड़े थे, संदूक़चे में झटपट बंद करना चाहते हैं, किंतु मन में यह अधीरता कि हाथ काम नहीं कर सकते। यज्ञोपवीत से बँधी हुई ताली से संदूक़चा बंद किया चाहते हैं, किंतु उँगलियाँ चूकी जाती हैं। जितनी ही शीघ्रता करते हैं, उतनी ही देर हुई जाती है। बेहोशी में ही सिर पर पगड़ी और बदन पर कोट रक्खा और दफ़्तर से बाहर भागे। बटन कोई लगा और कोई नहीं लगा। किसी से सलाम की न किसी से राम राम। सब विस्मित हैं, भगवान् ! क्या बात है ? (टेलीफ़ोन के इस कर्कश स्वर ने वही हलचल डाल दी, जो बाँसुरी के मनोहर स्वर ने व्रज की गोपिकाओं में डाली थी)।

रामा—हुज़ूर ! साईस को हुकुम दिया है, वह अभी फिटन लाया।

बाबू साहब—अरे जल गए, जल गए ! आग-आग...।

इतना कहा और अपनी मान-प्रतिष्ठा को ताक़ पर रख खुले बाज़ार दौड़े। एक दौड़ती हुई ट्रामगाड़ीवाले को आवाज़ कसी, हाथ उठाया, ठहरो-ठहरो, और धम से अपने आपको ट्रामगाड़ी में जा डाला। मारे घबराहट के ट्रामवाले को पुकार कर कहते हैं 'जल्दी-जल्दी।' बस चले, तो चाबुक और लगाम उसके हाथ से छीनकर घोड़ों को सरपट दौड़ा दें। सामने से प्रांत के गवर्नर साहब बहादुर की गाड़ी मिली (वही गवर्नर, जिनकी सेवा में भारतवर्ष के धनिक उपस्थित होकर सलाम का

अवसर जब पाते हैं, तो उसके बाद बरसों अपने इष्ट-मित्रों में बैठकर बड़े अभिमान से इसका ज़िक्र किया करते हैं), किंतु इस समय हमारे बाबूजी की आँखों में संसार अँधेरा रूप हो रहा है। लाट साहब की गाड़ी पास से निकल गई, और इनको मालूम ही नहीं पड़ा, सलाम तो क्या करते। ट्राम के भीतर दाहिनी ओर से मीठी-मीठी आवाज़ यह क्या आ रही है ?

जुंबिश[1] में होंठ ऐसे हैं नाज़ुक[2] नफ़स के साथ ;
जैसे हिले नसीम[3] से पत्ती गुलाब की।

"हुज़ूर ! आपके तेजोमय ललाट पर विषाद (उदासीनता) क्यों है ? आज मुख-मंडल पर तेज क्यों नहीं बरसता ? वह कांति क्या हुई ? ईश्वर के लिये हमें तो दया-दृष्टि से वंचित न रखियेगा।" प्यारे पाठक ! जानते हो, यह किसकी आवाज़ थी ? यह एक चंद्रमुखी, चंद्र-वदनी, उर्वशी-ईर्षु सुंदरी का बोलना था, जिस पर बाबू साहब का चित्त चिरकाल से आसक्त था, जिसके मिलने का ख़याल कभी छूटता ही न था, जिसका चित्र हृदय के दर्पण पर दृढ़ता-पूर्वक अंकित था, जो तनिक काम-धंधे का आवरण उठा, और चट दृष्टि उधर पड़ी। आज वह चंद्रमुखी, सुन्दर मृगनयनी, माधुरी हाव-भाव के साथ बाबू साहब से वाग्विलास कर रही है। किंतु हाय ! हृदय-कमल पर कैसी तुषार-वर्षा हो गई कि प्रकाशमान् सूर्य तो उदय हुआ, पर यह (कमल) न खिला—

लब अज़ गुफ़्तन चुनाँ बस्तम कि गोई ;
दहन बर चेहरा ज़ख़्मे-बूदो-बेह शुद।

अर्थ—मैंने बोलने से ओंठ इस तरह बंद कर लिए, मानों मुँह चेहरे के ऊपर एक घाव था और वह अच्छा हो गया।

नोट—क्यों भाई ! अपने घर की आग बुझाने के लिये

१ हिलना। २ कोमल श्वास। ३ समीर।

कभी तुम भी ऐसे व्याकुल हुए ? तुम्हारा सब सामान जल रहा है। अंतःकरण में आग लगी हुई है। तुम्हारी राजधानी (Rome) मलियामेट हो रही है। आत्मा का पता नहीं। शांति लुप्त है। स्वरूप का ज्ञान खोया हुआ है। किंतु है इस आग के बुझाने की चिन्ता ? नीरो (Nero) की तरह घर-बार सब अग्नि के समर्पण करना और लुच्चों में बैठकर गुलछर्रे उड़ाना कहाँ तक ?

आँचे मा करदेम बर ख़ुद हेच नाबीना न कर्द ;
दरमियाने-ख़ाना गुम करदेम साहिबे-ख़ाना रा।
दिला ता कै दरीं काखे-मजाज़ी ;
कुनी मानिंद तिफ़्लाँ ख़ाकबाज़ी।

अर्थ—जो कुछ हमने अपने पर किया, वह किसी अंधे (मूर्ख) ने भी ऐसा नहीं किया। क्योंकि घर के भीतर हमने घर के मालिक को खो डाला है।

ऐ दिल ! तू इस कृत्रिम प्रासाद अर्थात् संसार में कब तक बच्चों की भाँति धूलि उड़ाता रहेगा ?

बाबूजी का घर

ट्राम से उतरने न पाये थे कि दूर से धुआँ आकाश की ओर उठता दृष्टिगोचर हुआ। आगे बढ़े, तो हाहाकार, क्रंदन-विलाप, आर्तनाद स्वागत करने को मिले। घर के निकट स्त्री-पुरुषों के ठठ-के-ठठ लगे हुए पाये। पुलिस-इन्सपेक्टर, सिपाही, मजदूर, सहस्रों मनुष्य झुंड-के-झुंड इकट्ठा थे। कुहराम मचा था। आग चारों ओर लगी थी। हर तरफ़ से ज्वाला उठ रही थी। यह शहतीर गिरा, वह धन्नी टूटी। तड़-तड़, चटाक-चटाक। सैकड़ों मशकें और सैकड़ों घड़े भर-भरकर आते थे, किंतु पानी तेल का काम देता था। साल-भर हुआ, इस हवेली को तैयार

हुए। इसमें बड़ी धूम-धाम से ब्रह्मभोज कराया गया था, दीन-दुखियों को रोटियाँ बाँटी गई थीं, बड़े उत्साह से हवन की अग्नि प्रज्वलित की गई थी। एक तो वह दिन था, आज यह दिन है कि सारा मकान आहुतिरूप हो रहा है। वेद की ऋचाओं की जगह क्रंदन और रुदन की ध्वनि हो रही है। लोग उस दिन भी एकत्रित थे, जब हवेली बनी थी; आज भी एकत्रित हैं, जब हवेली नष्ट हो रही है—

> बर बनाऊँ ख़ाक इस वहशतकदा[1] में नासिहा[2] ;
> आए जब मज़दूर मुझको गोरकन[3] याद आ गया।

वाह रे संसार! तेरी नश्वरता! वाह रे मनुष्य! तेरा प्राण-समर्पण! बहूजी और बाबूजी कहाँ हैं? दास-दासियाँ किधर हैं? नन्हाँ क्यों नहीं दिखाई देता? सब तड़प रहे हैं, और सब तो मकान के बाहर हैं, किंतु बच्चा घर के भीतर।

बाबू साहब निढाल तो पहले ही से थे, यह हृदय-विदारक सूचना सुनने की देर थी कि मन-मुकुर पर और भी ठेस लगी। अधीर होकर रोना आरंभ किया। कलेजा बल्लियों उछलने लगा। दुःख से हाथ मलने लगे, और चिल्ला-चिल्लाकर बोले—"अरे! कोई मेरे हृदय-खंड (नन्हे) को बचाओ। उसकी जान के लाले पड़ रहे हैं। तलमला रहा है। अभी समय है। ऐसा न हो, जल-भुनकर राख हो जाय। हज़ार रुपया इनाम। जीवन-भर ग़ुलाम रहूँगा। बचाओ, बचाओ! ईश्वर के लिये बचाओ।"

बहूजी सोने के आभूषण उतार-उतारकर फेंक रही है कि यह लो, मेरे लाल को मुझ से मिला दो। दादी छाती कूट रही है, "हाय मैं मरी, मैं मरी। मेरा नन्हाँ, मेरा नन्हाँ!" सेवा करनेवाली दासियाँ अलग बिलबिला रही हैं। बच्चे की दुःखमय

---

१ भयानक स्थान। २ उपदेशक। ३ क़ब्र खोदनेवाला।

दशा ने हवेली के जलने और हज़ारों रुपयों के माल और असबाब के राख हो जाने को स्मृति से भुला दिया।

निस्संदेह, बच्चा ऐसी ही प्रिय वस्तु है। लाखों और करोड़ों रुपया की उसके सामने क्या हक़ीक़त है।

संसार में सब वस्तुओं से अधिक प्यारा है बच्चा। किंतु बच्चे से भी प्रियतर कोई वस्तु है कि नहीं? देख लो, इस समय समस्त संपत्ति बच्चे पर निछावर कर देने को कह रहे हैं; किंतु ऐसा प्यारा बच्चा एक और वस्तु पर सचमुच बलिदान कर रहे हैं। वह क्या? प्यारी जान। "वाह जिंद[1] मेरी"। हज़ारों रुपये जायँ, आभूषण जायँ, नन्हें के बचानेवालों के प्राण भी नष्ट हो जायँ, बला से; किंतु स्वयं बाबू साहब या बहूजी आग के मुँह में नहीं कूद सकते। (इस घटना को देखकर भागवत का वह कँपकपी लानेवाला दृश्य आँखों के सम्मुख खिंच गया, जबकि प्यारा कृष्ण यमुनाजी में कूद पड़ा; समस्त ग्वाल-बाल और गोपियाँ किनारे खड़े हक्के-बक्के मुँह देखते रह गये; नंद और यशोदा मूर्च्छित हो गये; किंतु कालीदह--यमुनाकुंड--में कोई नहीं कूदा)।

ए लो! बच्चे की जान गई, किंतु बाबूजी और बहू ने अपनी जान रक्खी। अपनी आँखों के सम्मुख अपने आत्मज को अग्नि में स्वाहा होते हुए देखा। लोकोक्ति प्रसिद्ध है, जब बँदरिया के अपने पैर जलने लगते हैं, तब बच्चों को अपने पैर के नीचे दबा लिया करती है।

तनिक इस शब्द को सुनना! आग फड़फड़ाती है!— नहीं-नहीं, अग्नि देवता पुकार-पुकारकर उपदेश सुनाता है।

न वा अरे पुत्राणां कामाय पुत्राः प्रिया भवंत्यात्मनस्तु कामाय पुत्राः प्रिया भवंति। (यजु०, बृ० उ०, अ० ४, ब्रा० ५, मं० ६)

---

१ जान, प्राण।

अर्थ—पिसरे-खुशरू[1] का तसर्रुफ़[2] कब है अपने बाप पर ;
बाप तो आशिक़ हुआ था एक अपने आप पर।

कैसी सन्नाटे की हवा चलने लगी। सायँ-सायँ! यह वेद का संदेशा लाई है। गला फाड़-फाड़कर (ललकार कर) सुना रही है—

स यथा शकुनिःसूत्रेण प्रबद्धो दिशं दिशं पतित्वाऽन्यत्रायतनमलब्ध्वा बन्धनमेवोपश्रयत, एवमेव खलु सोम्य! तन्मनो दिशं दिशं पतित्वाऽन्यत्रायतनमलब्ध्वा प्राणमेवोपश्रयते, प्राणबन्धनꣳ हि सोम्य मन इति। (साम०, छां० उ०, प्रपा० ६, खं०८, मं०२)

तात्पर्य—

क़फ़स एक था आइनों से बना, लटकता गुले-ताज़ा मर्कज़[3] में था ;
था फूल एक पर अक्स[4] हर तर्फ़ थे, थे माशूक़ सब बुलबुले-बंद के।
गुले-अक्स की तर्फ़ बुलबुल चली, चली थी न दम भर कि ठोकर लगी ;
जिसे फूल समझी थी साया ही था, यह झपटी तो नट शीशा सिर पर लगा।
जो दायें को झाँकी वही गुल खिला, जो बायें को दौड़ी यही हाल था ;
मुक़ाबिल उड़ी मुँह की खाई वहाँ, जो नीचे गिरी चोट आई वहाँ।
क़फ़स के था हर सिम्त शीशा लगा, खिला फूल था वस्त[5] में वाह वा।
उठा सिर को जिस आन पीछे मुड़ी, तो खंदाँ[6] था गुल आँख उससे लड़ी।
झिझकने लगी, अब भी धोखा न हो, है सचमुच का गुल तो फ़क़त नामको।
चली आख़िरश करके दिल को दिलेर, मिला गुल, लगी इक न दम भर की देर।
मिला गुल, हुई मस्तो-दिलशाद[7] थी, क़फ़स था न शीशे वह आज़ाद थी।
यही हाल इनसान! तेरा हुआ, क़फ़स[8] में है दुनिया के घेरा हुआ।
भटकता है जिसके लिये दर-बदर, वह आराम है क़ल्ब[9] में जलवागर।

तू आहूये-खुतनी मुश्क जोई अज़ सहरा,
ज़ि नाफ़े-ख्वेश नदारी ख़बर, ख़ता ईंजास्त।

---

१ हँसमुख पुत्र। २ अधिकार। ३ केन्द्र। ४ प्रतिबिम्ब। ५ बीच में। ६ खिला हुआ। ७ प्रसन्न चित्त। ८ पिंजड़ा। ९ भीतर, हृदय में।

तात्पर्य—

हे मृग तेरी सुगंध से भयो यह वन भरपूर ;
कस्तूरी तो निकट है क्यों धावत है दूर।

ढँढोरा शहर में लड़का बग़ल में ; ख़ुदा इस पास यह ढूँढे जंगल में।
मुद्दी हीर फिरे विच बेले ; राँझा यारा बुक्कल विच खेले।

देखता था मैं जिसे होके नदीदा हर सू।
मेरी आँखों में छिपा था मुझे मालूम न था॥

वाह राम ! आनंद तो क्या बताने लगे थे, ख़ूब आग लगाई।

राम—हाँ, यह आनंद कभी नहीं मिलने का, जब तक इस बाह्य परिवार, सम्पत्ति, अहं-मम को एक प्रकार अग्नि के समर्पण न कर दिया जाय, 'घर जाल तमाशा डिट्ठा।' पुत्र अग्नि में भस्म हो जाय; स्त्री, माँ, अपना शरीर और सब पिछलग्गे उड़ जायँ, राम-ही-राम दृष्टिगोचर हो। जैसे पठित मनुष्य के लिये लिखा हुआ ॐ (प्रणव) अक्षर झट अपने अर्थों को स्पष्ट कर देता है, वैसे ही समस्त वस्तुएँ हायरोग्लिफ (Hieroglyph, चित्रमय शब्द) के अनुसार दृष्टि पड़ते ही राम के दरस दिखाएँ, तब आनंद होता है।

अत्र पिताऽपिता भवति माताऽमाता लोकाऽलोका देवा अदेवा वेदा अवेदाः। (बृ० उ०, अ० ४, ब्रा० ३, मं० २२)

अभिप्राय - ऐसी दशा में आत्मा समस्त बंधनों से रहित हुआ अपने शुद्ध स्वरूप में स्थिर होता है, अर्थात् जाग्रति में जो पिता के संबंध से नामज़द था, उस आनंद अवस्था में वह पिता पिता नहीं रहता, माता माता नहीं रहती, संसार संसार के रूप में नहीं रहता, देवता देवता नहीं रहता, ऐसे ही वेद वेद नहीं रहते; तात्पर्य यह कि जब पुरुष समस्त संबंधों और बंधनों से रहित होता है, तब आनंद का सागर उसके

भीतर उमँड़ आता है, अर्थात् तब उसे अपने स्वरूप का अनुभव होता है, इससे पहले कभी नहीं।

सूली ऊपर प्यारे की सेज।

दुर्रेस्त खुश, कफ़े-बुल-हवस रा न दिहंद;
परवाना रास्त शमा, मगस रा न दिहंद।

अर्थ— मोती अच्छी वस्तु है, उसको लोभी की हथेली में नहीं देते; पतंग के लिये दीपक है, मक्खी को नहीं देते।

पस अज़ मुर्दन[1] बनाये जायँगे साग़र[2] मिरी गिल के;
लबे-जानाँ[3] के बोसे ख़ूब लेंगे ख़ाक में मिल के।

विषयों में जो आनंद मिला, क्या वह स्त्री के रक्त, मांस, हाड़, चाम में आलथी-पालथी लगाये हुए बैठा था? हर, हर, हर! बिलकुल नहीं, वह तो केवल चित्त-वृत्ति के निरोध में था, एकाग्रता में था।

यद्यत् सुखं भवेत तत्तद् ब्रह्मैव प्रतिबिंबनात्;
वृत्तिष्वंतर्मुखा स्वस्य निर्विघ्नं प्रतिबिंबनम्।

तात्पर्य—जब-जब संसारी सुख मिलता है, उस समय अंतःकरण में ब्रह्मस्वरूप प्रतिबिंबित हुआ होता है, अर्थात् अंतःकरण में बिना अपने स्वरूप के प्रतिबिंबित हुए आनंद कदापि अनुभव नहीं होता, और यह प्रतिबिंब अंतःकरण में उस समय पड़ता है, जब चित्त-वृत्तियाँ अंतर्मुख (निरोध) होती हैं, और मन अचंचल होता है।

इधर क्षण-भर के लिये अहं-मम भाव मिटा, भय और चिंता से मुक्ति मिली, नाम-रूप भेद लुप्त हुआ; उधर आनंद-ही-आनंद तरंगायित था। 'मैं देह हूँ', यह गंदा ख़्याल मिटते ही आनन्द ने मुँह दिखाया। इधर भ्रांति का बादल उठा, उधर आनन्दरूपी चन्द्र

---

१ मृत्यु के बाद। २ मेरी मिट्टी के प्याले। ३ प्यारे के ओठ।

ने मुँह दिखाया। यह चंद्र (आनंद) तेरा आत्मा है। द्वैत की लटों को मुख पर से उठा, और शोक-रात्रि को पर्व-दिन बना।

तो ख़ुद हिजाबे-ख़ुदी ऐ दिल ! अज़ मियाँ बरखेज़।

अर्थात्—ऐ दिल ! द्वैत-आवरण तू आप स्वयं है, अपने भीतर से तू उठ जाग।

बर चेहरए-तो नक़ाब ता कै। बरचश्मए-ख़ुर सहाब ता कै।

अर्थात् तेरे मुख-मंडल पर आवरण कब तक ? सूर्य के स्रोत पर बादल कब तक ?

घुंड कढके क्यों चन मुँह उत्ते, ओहले रहयों खलो,

फ़क़ीरा ! आपे अल्लाह हो।

स्वयं आँखें मीचकर अविद्या (दुःख) रूपी अंधकार उत्पन्न किया है। ऐ सूर्य ! आँखें खोल। उजाला-ही-उजाला हो जायगा। सब वस्तुओं को प्रकाशित (आनंदमय) बनानेवाला तू है।

आफ़ताबी आफ़ताबी आफ़ताब। ज़र्रहा दारंद अज़ तो रंगो-ताब॥

अर्थात्—ऐ प्यारे ! तू सूर्य है, तू सूर्य है, तू सूर्य है और ये समस्त कण (सृष्टि) तुझसे ही चमक-दमक पाते हैं।

न तत्र सूर्यो भाति न चंद्र तारकं नेमा विद्युतो भांति कुतोऽयमग्निः। तमेव भांतमनुभाति सर्वं तस्यभासा सर्वमिदं विभाति। (कठ उ०, अ० २, व० ५, मं० १५)

तात्पर्य—न वहाँ (वास्तविक स्वरूप में) सूर्य चमकता है, न चंद्रमा और न ये बिजलियाँ ही पर मार सकती हैं। अग्नि की ज्वाला तो फिर कहाँ ? वरन् सत्य तो यह है कि उस प्रकाशों के प्रकाश-स्वरूप के तेज से यह सब जगत् प्रकाशित है, और उसके तेज से ही ये सब नाम और रूप तेजोमय हो रहे हैं।

च—चानना[1] कुल्ल जहान दा[2] तूँ। तेरे आश्रय होय व्यवहार सारा॥

---

१ प्रकाश। २ का।

होय सर्वकी आँख में देखदाँ हैं। तुझे सूझदा चानना अंध्यारा ॥
नित जागना सोवना ख़्वाब तीनों। देख तेरे आगे होय कई वारा ॥
बुल्हाशाह[1] प्रकाश-स्वरूप तेरा। घट-वद्ध न होत है एक सारा ॥

प्रश्न—बच्चा हर समय क्यों आनंद रहता है, मस्त फिरता है ?

उत्तर—उसमें "मैं शरीर या बुद्धि हूँ" इस भ्रम ने घर नहीं किया होता, द्वैत की रात्रि उसके लिये अभी नहीं पड़ी।

The baby new to earth and sky
What time his tender palm is prest
Against the cirle of his breast
Has never thought that this is I
(Tennyson)

अर्थ—जो बच्चा अभी संसार में प्रकट ही हुआ है, जब उसकी कोमल-कोमल हथेली को उसकी छाती से लगाया जाता है, तो उसे विचार नहीं होता कि 'यह मैं हूँ।'

प्रश्न—संसारी मनुष्य की प्रसन्नता, जो इन्द्रियों के विलास से प्राप्त होती है, जुगनू की दुम की तरह चमकते ही मात क्यों पड़ जाती है ?

उत्तर—इन विषय-सुखों से द्वैत (देहाध्यास) केवल दम-भर के लिये ही दूर होती है, अथवा यों कहो कि द्वैत की अँधेरी रात में केवल एक क्षण-भर हो के लिये आत्मदेव (आनंद) की बिजली कौंध जाती है।

अविद्या-रूपी रात्रि (दुःख) को सदैव के लिये नाश करना चाहते हो, तो 'जानो अपने आपको' Know thyself.

अथातो ब्रह्मजिज्ञासा (वेदांत-दर्शन, प्रथम सूत्र)
जुस्तजू कुन, जुस्तजू कुन, जुस्तजू। दर बरे-ख़ुद वों कि बेरूँ नेस्त ऊ ॥

---

१ कवि का नाम।

अर्थ—जुस्तजू कर, जुस्तजू कर, जुस्तजू कर (अर्थात् अत्यंत अधिक खोजकर), अपने भीतर देख, क्योंकि वह (प्यारा) बाहर नहीं है।

इतने पृष्ट काले हुए। उपदेश क्या मिला ? यह कि जितनी बाहर की वस्तुएँ आनंदप्रद और हर्षदायक हैं, केवल इसलिये हैं कि आनंद की खानि जो अपना आप है, उस (हिरण्यगर्भ) से तनिक-सा सोना लेकर गिलट की गई हैं। जब यह गिलट उतर जाता है, तो मानों कलई खुली, और वस्तुएँ फीकी बनीं।

हर कसे रा पिसरे-ख़ुद बजमाल नुमायद व अक़्ले-ख़ुद बकमाल

प्रत्येक को अपना सुत सुंदर और अपनी बुद्धि पूर्ण प्रतीत होती है। बच्चा माँ की गोद में तोतली बोली से जब कहता है—'मेरी माँ, म्हारी मा' तो उसमें 'मेरी' और 'म्हारी' है गोल्डन टच (Golden touch) प्यारा बना देनेवाल मंत्र। जब बड़े भाई से एक अदा (नखरे) से कहता है—'मेरी है, म्हारी है', और वह बोलता है—'नहीं, मेरी है', तो इतनी शकरञ्जी (खिन्न-चित्त) होती है कि नन्हे से ओंठ निकालकर बिसूरने लगता है। यह देखा, और मा ने झट चूमकर कहा—'मेरी कहने-वाले पर वारी !' वाह 'मेरी' भी तो क्या जादू है ! फिर ज्यों-ज्यों देखता है कि इस माँ में औरों का भी भाग है, तो उसके संबंध का नाता कमज़ोर होता जाता है, और पहला-सा प्रेम नहीं रहता। जितना इसमें 'मेर' कम हुआ, उतना ही प्रेम दूर हुआ। किसी और स्त्री ने गोद ले लिया हो, तो कभी असली माँ याद ही नहीं आती। ऐ सर्वोत्तम मनुष्य ! संसार की समस्त वस्तुएँ तेरे सामने नाच नाचती या मुजरा-तमाशा दिखलाती हैं। जिस पर तेरी कृपा-दृष्टि होती है, उसे तू मान प्रदान करता है। 'मेरी', 'हमारी', 'अपनी', इस अलंकार से सजाता है। यह 'मेरी' वह उपाधि है, वह मान-वस्त्र है कि जिस वस्तु को मिली, वह आनंद-रूप बनी।

गुलिस्ताँ में जाकर हर इक गुल को देखा।न तेरी-सी रंगत, न तेरी-सी बू है॥

गार्गन (Gargan) की आँख जिस पर पड़ती थी, पत्थर बना देती थी, मगर यह 'मेरा' कहनेवाली आँख जिस वस्तु पर पड़ी, वह आनंद से भरी—

कुरबाने-निगाहे-तो शवम बाज़ निगाहे।

तात्पर्य—तेरी दृष्टि पर मैं न्योछावर हूँ। पुनः-पुनः अपनी दृष्टि कीजिये।

एक व्यक्ति सैर करके घर वापस आया, तो कंधे पर के बहुमूल्य दुशाले से अपना दो-डेढ़ रुपए का बूट (जूता) पोंछने लगा। किसी ने इस लापरवाही का कारण पूछा, तो मालूम हुआ कि दुशाला उसके बाप का है, और बूट उसका अपना। वाह, पहले आप पीछे बाप।

ऊषा। और संध्या के समय पौ फटने की लाली के रंग वह चमक-दमक रखते हैं, और ऐसे चित्र-विचित्र होते हैं कि कृत्रिम रंग उनके सौंदर्य को कहाँ पहुँचेंगे; किंतु ड्राइंगरूम के चित्रों के रंग अधिक चित्ताकर्षक होते हैं। कारण? यही कि इन पर 'मेरे' का इतलाक़ (प्रयोग) हो सकता है। कहाँ तो आकाश के तेजस्वी (शोभायमान) तारे और कहाँ दुलहिन की तीन गज़ चुनरी (बनारसी साड़ी) के तारे; किंतु पाठक! सच कहना, जो रुचि इन उत्तरकथित तारों में है, वह है पूर्वकथित तारों में? नहीं, कदापि नहीं। कारण? बस यही कि चुनरी (चुँदरी) के तारे 'मैं' और 'मेरे' के हल्क़े (वृत्त) में हैं। ऐ 'मैं' (आत्मा)! तेरी कारीगरी पर न्योछावर!

प्रश्न—"आँ कि दिल रा मे रुबायद अज़ बरम पैदास्त कीस्त?" कौन मेरे दिल को चुरा रहा है? कौन?

उत्तर—"हुस्ने-तो अज़ रूए-जानाँ मुनअकस शुद शोर चीस्त।"

तू ही प्रेम-पात्र बनकर यह चोरी कर रहा है, ह्यू एंड क्राई (hue and cry = शोर, क्रंदन और कोलाहल) कैसी ?

चित्त चुराने में सबसे अधिक निपुण कौन होता है ? चतुर्दश-वर्षीया चंद्र-वदनी ? कदापि नहीं, वरन् वह जिस पर चित्त आ जाय, अर्थात् जिस पर 'मैं' आ जाय।

मेरा गिरिया तेरे रुख़सार को चमकाता है।
तेल इस आग पै तिल आँख का टपकाता है॥

क्या लैला के सौंदर्य पर मजनूँ का जी आया ? नहीं, मजनूँ के जी आने पर लैला का सौंदर्य बना। क्या अच्छा कहा है— "लैला रा बचश्मे-मजनूँ बायद दीद" लैला को मजनूँ की आँख से देखना चाहिए। गोपियों का जी श्याम वर्ण पर आया, तो श्याम ने वह सुंदर रूप पाया कि तारों को लजाया—

देख छबी सब तारे लाजें। नैन-चकोर मुख-चंद को भाजें॥

सोचकर बताओ ऐ मेरे प्राण ! अव्यक्त ईश्वर लोगों को क्यों इच्छित और अभीष्ट है ? किसलिये वह प्यारा है ? केवल अपने लिये। अन्नदाता है, मालिक है, दयामय है, करुणामय है, सृष्टिकर्त्ता (Maker) है, माता के उदर में उसने प्रतिपालन किया, शिशुपन में दूध दिया, और यह उसी की कृपा से है कि—

अब्रो-बादो-महो-ख़ुरशीदो फ़लक दर कारंद।
ता तो नाने-बकफ़आरी व बग़फ़लत न ख़ुरी॥
हमा अज़ बहरे-तो सरगश्ता ओ फ़रमाँबरदार।
शरते-इन्साफ़ न बाशद कि तो फ़रमाँ न बरी॥

अर्थ—बादल, हवा, चंद्रमा, सूर्य और आकाश सब तेरे काम के लिये हैं; ताकि तू रोटी प्राप्त करे, किंतु उसको ग़फ़लत (प्रमाद) से न खाये। ये सब तेरे लिये चक्कर लगा रहे हैं, और तेरे आज्ञाकारी हैं। अतः न्याय की यह शर्त नहीं कि तू (उस ईश्वर की) आज्ञा न माने।

अतः इसी तरह ईसाइयों के यहाँ एक गीत (Hymn) गाया करते हैं "उसने मेरे साथ पहले प्रेम किया (He first loved me), मैं क्यों न उससे प्रेम करूँ ?" धन्यवाद के भजन और प्रार्थना (Thanks), मनाजातें (स्तुतियाँ) जहाँ सुनीं, वहीं ईश्वर ने धीरे से कान में यह ध्वनि दी—

जमाले-हमनिशीं दर मन असर कर्द।
वगरना मन हमाँ ख़ाकम कि हस्तम॥

अर्थ—सहवासी (आत्मा) के सौंदर्य ने मेरे पर प्रभाव डाला है (जिससे) कि मैं जीवित बना हूँ, अन्यथा मैं जैसा कि हूँ, वही ख़ाक (धूलि) हूँ।

यह निजानन्द-स्वरूप केवल मेरा अपना आप क्या है ? शरीर है ? नहीं, शरीर तो और वस्तुओं की भाँति इस आनंद-स्वरूप आत्मा की छाया को लेकर प्यारा बना है। यह अन्य वस्तुओं की अपेक्षा आत्मा के ज़रा अधिक निकट रहता है, इसलिये औरों की अपेक्षा अधिक प्रिय है—

सगे-हुज़ूरी बेह अज़ बरादरे-दूरी।

पास बैठनेवाला कुत्ता दूर के भाई से भी अच्छा है।

जिज्ञासु—यदि आत्मा शरीर नहीं, तो शरीर में कहाँ पर है ?

ज्ञानी—जो प्रियतम है, वही आत्मा है ; आत्मा वह मिसरी और क़ंद है, जिससे प्राप्त होकर शेष समस्त वस्तुएँ मधुर बनती हैं।

जिज्ञासु—क्या वह आत्मा पाँव है कि समस्त शरीर के भार को सहारता है ?

ज्ञानी—नहीं, पैर प्रियतम कहाँ ?

जिज्ञासु—पग नहीं, तो शरीर में और कोई अंग आत्मा होगा। लो हाथ सही।

ज्ञानी—हाथ भी नहीं हो सकता। हाथ से तो मस्तक बहुत अधिक प्रिय है। अस्पताल में इधर एक घायल हाथ कटने लगा है, रोगी वेचारा बिलबिलाता है; और उधर एक के मस्तक पर शस्त्र-क्रिया का कार्य हो रहा है। यह ग़रीब पहले रोगी से डाह करता है, हा दैव! यदि मस्तक के स्थान पर मेरे हाथ पर फोड़ा होता, तो भला चेहरे पर धब्बा तो न लगता। ऐसे अवसर पर स्पष्ट होता है कि हाथ की अपेक्षा मस्तक अधिक प्रिय है, किंतु मस्तक प्रियतर कदाचित् नहीं। नेत्र या और कोई अंग उससे भी अधिक प्रिय होगा।

जिज्ञासु—तो फिर क्या आँख या कोई और अंग प्रियतर होने के कारण आत्मा है?

ज्ञानी—नहीं, उस प्रियतर अंग से भी बढ़कर प्रिय कोई और वस्तु आपमें है, सोचो!

जिज्ञासु—हाँ-हाँ, अब समझे, बुद्धि। बुद्धि अवश्य आत्मा होगी, समझ में भी आ सकता है।

ज्ञानी—नहीं, नहीं, फिर सोचो। इससे भी अधिक प्रिय कोई और वस्तु तुममें है?

जिज्ञासु—(सोचकर) प्राण (जान)। मलका एलिज़बेथ जब मरने लगी, तो चिल्लाई कि अब जितने मिनट मुझे कोई डॉक्टर जीवित रक्खे, उतने लाख रुपया ले। इसी तरह मेरी समझ में चाहे कैसा ही बुद्धिमान्, विद्वान् और ज्ञानवान् पुरुष कोई क्यों न हो, उसे मरने के समय यदि यह मालूम हो कि आज़ाद और स्पेंसर (Spencer) की तरह बुद्धि न्योछावर करने पर जीवन का नाता लंबा हो सकता है, तो प्राण के लिये बुद्धि से सर्वथा बिछोड़ा स्वीकार कर लेगा। अतः प्राण अर्थात् जान सबसे प्रिय है, यही आत्मा है।

ज्ञानी—नहीं-नहीं, फिर जरा विचार करो।

जिज्ञासु—विचार आगे नहीं चलता, बुद्धि यहीं तक काम करती है।

ज्ञानी—क्या सच कहा। वस्तुतः इससे परे बुद्धि की दाल गलती ही नहीं। बुद्धि हारकर कह उठती है—

अगर यक सरे-मूए बरतर परम।
फ़रोग़े-तजल्ली बिसोज़द परम॥

अर्थ—यदि एक बाल के बराबर भी मैं इससे ऊपर को उड़ूँ, तो प्रकाश की अधिकता मेरे पर को जला दे।

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि। इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद्व्याचचक्षिरे। (सामवेद, केनोपनिषद्, मं० ३)

भावार्थ—न वहाँ (सत्य स्वरूप) में दृष्टि ही जाती है, न वाणी, न श्रोत्र और न मन, अर्थात् इंद्रियों की पहुँच से वह स्वरूप अतीत है। न हम यह जानते हैं और न समझते हैं कि किस तरह से उस स्वरूप का उपदेश किया जाय, क्योंकि वह ज्ञात और अज्ञात से भी परे है; ऐसा पहले उन तत्त्ववेत्ताओं से सुना गया है, जिन्होंने हमारे लिये इसका उपदेश किया है।

जिज्ञासु—अतः प्राण (जान) ही प्रियतम है, और यही मेरा आत्मा (अपना आप) है, क्योंकि आगे तो बुद्धि में कुछ आता ही नहीं।

ज्ञानी—कदापि नहीं। यदि बुद्धि वहाँ तक काम न करे, तो कोई क्षति नहीं। आत्मा बुद्धि और प्राण दोनों से परे है। और माना कि आत्म-तत्त्व विचार, अनुमान, गुमान और संकल्प से परे है, किंतु उसके अस्तित्व में कुछ भी वक्तव्य नहीं। वह सत्स्वरूप है।

जिज्ञासु—भला क्योंकर ?

ज्ञानी—लो सुनो। बहुत काल हुआ, एक विद्यार्थी को प्राण छोड़ते देखा। उसे पैरों की ओर से पीड़ा उठती थी, और ऊपर को आती थी। पहले तो पीड़ा की दौड़ केवल घुटनों तक थी, पिंडलियाँ और पाँव अपने आप तलमलाते और झिटके खाते थे। धीरे-धीरे दर्द जंघाओं तक पहुँचा, और शरीर का वहाँ तक का भाग अपने आप अधकटे मुर्ग़ की तरह तड़पने लगा। पीड़ा आगे बढ़ती गई। अंततः पीड़ा जब हृदय तक पहुँची, दुःख से छुटकारा मिला। तत्काल ही लम्बी साँस के साथ उस नवयुवक की जिह्वा से ये शब्द सुनाई दिए—"अरे, मेरे प्राण कब निकलेंगे, मेरे प्राण कब निकलेंगे ?"

ओ प्यारे! आत्मा वह प्रियतम वस्तु है, जो कहता है 'मेरे प्राण' अर्थात् प्राणों का स्वामी, जिससे छूत (स्पर्श) पाकर प्राण प्रिय बनते हैं, जिस आनंद-स्वरूप पर प्राण न्योछावर कर देना स्वीकार होता है, वह प्राणोंका प्राण आत्मा है।

यत् प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ (केन० उप० मं० ८)

भावार्थ—प्राणों कर जीवत नहीं, जो प्राणों के प्राण।
सो परमात्मदेव तू, कर निश्चय नहीं आन॥

यही आनंद का तुल्यार्थवाला (Synonymn.) तेरा वास्तविक अपना आप आत्मा है, जिसकी स्तुति में वेद यों गाता है—

आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रियन्त्यभिसंविशन्तीति॥

(यजु० तैत्ति० उ० भृ० व० अ० ६)

भावार्थ—है लहर एक आलम बहरे-सुरूर में।
है बूदोबाश सारी उसके ज़हूर में॥

मिटती है लहर जिस दम वह ही तो बहर है।
हर चारसू है शोला मत देख तूर में॥

In him we live, move and have our being.

अर्थ— उस आत्मा में हम रहते-सहते, चलते-फिरते और अस्तित्व रखते हैं।

खाँड का कुत्ता, गधा, चूहा, बला।
मुँह में डालो ज़ायक़ा है खाँड का॥

खाँड का ऊँट-सहित असबाब डंडा के नीचे तोड़ा, क्या निकला? खाँड। हाथी-सहित राजा तोड़ा, क्या मिला? खाँड। रेल सहित साहब के तोड़ी, क्या मिला? वही खाँड। क्या खाँड भी टूटी? नहीं, वह तो ज्यों-की-त्यों खाँड-की-खाँड बनी रही। टूटा क्या? केवल नाम-रूप। इसी तरह खाँड और हलाहल के पवन, पावक और पृथिवी के नाम-रूप (Qualitics) महावाक्य 'तत्त्वमसि' के हथौड़े के नीचे चकनाचूर हुए, तो क्या मिला? एक आत्मा—

आप ही आप हूँ याँ ग़ैर का कुछ काम नहीं।
ज़ाते-मुतलक़ में मेरी शक्ल नहीं नाम नहीं॥

श्रीमती महारानी भारतेश्वरी (मलिका मुअज़्ज़मा) को देश, काल, वस्तु-परिच्छेद के नीचे झाँका, तो अपने आप ही को पाया। देवी-देवताओं के मुख से द्वैतरूपी देश, काल, वस्तु (Time, space and causality) का परदा दूर किया, तो मेरा शुद्ध आत्मा था। ख़ुदा-ए-पाक (परमेश्वर) के चेहरे पर का आवरण फाड़ा, तो मेरा ही तेजोमय मुख निकला।

मनम ख़ुदा व बआँगे-बलंद मी गोयम।
हर आँकि नूर दिहद मिहरो-माह रा ओयम॥

अर्थ—उच्च स्वर से कहता हूँ कि मैं ख़ुदा हूँ, और जो तेजों

का तेजस्वरूप आत्मा इस सूर्य और चंद्र को प्रकाश दान करता है, वह मैं हूँ।

वह जो इस एकता को साक्षात्कार (अनुभव) कर चुका है, अर्थात् वाणी में नहीं, वरन् व्यवहार में ला चुका है, उसके विज्ञान और तत्त्व-ज्ञान के भंडार में कोई ताजी खबर नहीं रही। धर्म अपने शासकाभिमानी और ज्येष्ठताभिमानी सिर (हाकिमाना और बुज़ुर्गाना सिर) को उसके सम्मुख झुकाता है। चूँ और चरा, क्यों और कब आदि का उसके दरबार में प्रवेश नहीं। कामना-रूपी घुन का कीड़ा, जो राजों और रंकों को एक समान खोदा और नष्ट करता चला जाता है, ऐसे चंदन-रूपी ज्ञानवान् के पास नहीं फटक सकता।

ऐ क़ौम बहज रफ़्ता कुजायेद, कुजायेद।
माशूक़ हमींजास्त बियायेद, बियायेद॥
माशूक़े-तो हमसायाए-दीवार बदीवार।
दर बादिया सरगश्ता चरायेद, चरायेद॥

अर्थ—ऐ यात्रियो! कहाँ जाते हो, कहाँ जाते हो? प्यारा यहीं है। यहाँ आओ, यहाँ आओ। तुम्हारा प्यारा तो तुम्हारी दीवार से दीवार मिलाये हुए पड़ोसी बन रहा है (अर्थात् तुम्हारे अत्यंत निकट है)। ऐसी दशा में फिर तुम जंगल में व्याकुल क्यों फिर रहे हो?

खेद है, यदि इस अपने ही आत्मा को भूलकर कभी धूलि में, कभी रक्त-मांस में और कभी चलती हुई वायु की भाँति नाशवान् लोगों की प्रशंसा में आनंद की खोज की जाय। आप ही समस्त वस्तुओं को आनंदमय बनाना और आप ही इवन्नक (मूढ़) की तरह उनका पीछा करना।

आप ही डाल साया को उसको पकड़ने जाय क्यों?
साया जो दौड़ता चले कीजिए वाय-वाय क्यों?

ऐ मनुष्य ! आनंद यदि प्राप्त किया चाहता है, तो अपने भीतर ढूँढ़ ।

जुस्तजू कुन, जुस्तजू कुन, जुस्तजू । दर बरे-ख़ुद बीं हमाँजा हस्त ऊ ॥

अर्थ—खोज कर, खोज कर, खोज कर (अर्थात् अत्यंत अधिक खोज कर) । बग़ल में देख, वह प्यारा वहीं है ।

अथातो ब्रह्मजिज्ञासा । (वेदांतदर्शन सू० १)

जिज्ञासु – फ़िकरे-मुआश[1], ज़िकरे-बुताँ[2], यादे-रफ़्तगाँ[3] ।
दुनिया में आनकर भला क्या-क्या कोई करे ? ॥

तिस पर भी आप एक नया बोझ हम पर डाला चाहते हैं । पेट की आवश्यकताएँ (demands) बड़ी विकट हैं, इसके धंधों से छुटकारा कहाँ ? पेट की चिंता हम न करें, तो और करें क्या ? इस हेतु कि परमेश्वर की भी वही राशि (कन्या) है, जो पेट की । हम परमेश्वर को भी अत्यंत नम्रता से प्रणाम करते और झुक-झुककर दंडवत् करते हैं, (वरन् दूर ही से दंडवत् करते हैं) ।

ज्ञानी—क्यों प्यारे ! तुम्हारे भोजन को कौन शक्ति पाचन कराती है, क्या तुम्हारी चिंता वह शक्ति है ? तुम्हारी नस-नाड़ी में कौन रक्त-संचालन करता है, क्या तुम्हारा यह प्रयत्न काम करता है ? तुम्हारे शरीर और बालों को कौन बढ़ाता है, क्या तुम्हारे चिंता और परिश्रम का यह फल है ? तुम जब घूक नींद (सुषुप्ति) में अचेत पड़े पलंग पर आराम करते हो, तुम्हारे प्राणों की कौन रक्षा करता है ? भली भाँति स्मरण रक्खो, यही चेतन (शक्ति) 'राम' है, जो तुम्हारे लिये भोजन नित्य पहुँचाता है ; इसी को आपके भरण-पोषण की चिंता है । आपका शरीर और प्राण, आपके स्त्री-पुत्र, धन-संपत्ति, सबका आधार वही है । उस गँवार का अनुकरण मत करो, जो असबाब की भरी खुरजी

---

१ भोजन की चिन्ता, २ प्यारों का वर्णन, ३ मृतकों का स्मरण ।

घोड़े पर लाद और स्वयं सवार होकर कहीं जा रहा था और जिसने मार्ग में कुछ तो घोड़े पर करुणा करके और कुछ असबाब के मोह के कारण 'हाय मेरा असबाब, मेरा असबाब!' कहकर खुरजी सिर पर उठा ली, किंतु आप बराबर सवार रहा। बोझ तो पहले की भाँति घोड़े ही पर रहा, किंतु गँवार ने अपनी गरदन व्यर्थ में तोड़ ली।

जिस्मो-अयालो[1]-मालो-ज़र सबका है बार[2] 'राम' पर।
अस्प पै साथ बोझ धर सिर पर उसे उठाए क्यों?

हाय, हाय! आनंद-राशि परमात्मा से पेट की तुलना करना, समस्त ग्रह और राशियाँ जिस परमात्मा के एक भ्रू-संकेत से सत्-असत् होती हैं!

ज़ाले-जहाँ शनौ सखुन इशवा-ए-नाज़ुकी मकुन।
दिल बतो नेस्त मुब्तिला तन तलमला तला तला॥

अर्थ—ऐ विश्व की बुढ़िया, अर्थात् ऐ दुनिया! मेरी बात सुन और नखरे-टखरे मत कर। मेरा दिल तेरे साथ फँसा हुआ नहीं, तन तलमला, तला, तला (सारंगी का स्वर, जिसके साथ यह पद मस्ती की दशा में गाया जाता है)।

वस्त्र शरीर के लिये होता है, शरीर वस्त्र के लिये नहीं। उस व्यक्ति की दशा दया के योग्य है, जो सारा समय कपड़ों के बनाव-शृंगार में खर्च कर दे, पर बीमार शरीर की ज़रा खबर न ले। अधिक दया के योग्य उस व्यक्ति की अवस्था है, जो समस्त आयु को शरीर अर्थात् पेट के धंधों में बिता दे, और आत्मा को (जिसके समक्ष शरीर वस्त्र की हैसियत भी नहीं रख सकता) नष्ट हो जाने दे। प्यारे! इस मनुष्य-देह-रूपी सीप से मोती निकाल ले; फिर यह सीप चाहे टूटे, चाहे रहे, कुछ ही हो, बला से। यह मोती (आत्मज्ञान) जब मौखिक वाग्विलास से उन्नति

---

१ परिवार, २ भार।

करके अंतःकरण में घर करता है, रोम-रोम में रच जाता है, नस-नाड़ियों में प्रवेश पा जाता है, तो निम्न-लिखित अनुभावावस्था का समर्थन करता है कि इधर स्वराज्य को सँभाला, अर्थात् ईश्वरीय राज्य (Kingdom of Heaven, ब्रह्मलोक) में पग रक्खा, अथवा सत्सिंहासन पर चरण टिकाया, उधर प्रताप चाकर हुआ, देवता आज्ञाकारी बने, और कोई ज़रूरत न रहने पाई, जो अपने आप पूरी न हो गई। वह पूर्ण ज्ञानी जो इस झूठ वा असत्य को शून्य कर चुका है कि "मैं शरीर या शारीरिक हूँ," और सदा अपने स्वरूप के तेज (Glory) में दीप्तिमान् है, अपनी महिमा में मस्त पड़ा है, 'कुन' (आज्ञा) कहने नहीं पाता कि 'फ़ियाकुन' (आज्ञा-पूर्ति) हो आता है। उसी की दृष्टि सृष्टि बनती है, उसी की दृष्टि प्रत्यक्ष होती है। यह अलभ्य पदार्थ, ऐ पाठक! आपके भी निजी भाग में है, प्रत्येक के दाय (अधिकार) में है। किंतु सुना होगा कि (Esaw sold his birth right for a mess of pottage) हज़रत याक़ूब के बड़े भाई ईसा ने बादशाह और नबूवत, जो उसका जन्मजात स्वत्व (birth right) था, शोरबे की एक रकाबी के बदले में खो दिया। शोक! महाशोक! कि उसका अनुकरण करके रोटी के बदले दोनों लोक में अपने लिये काँटे बोए जायँ। ऐ प्यारे! शारीरिक इच्छाओं के कुसंग को त्याग दे, और अपने स्वरूप को पहचान (know thyself)।

रोगी पलँग पर एक कमरे में लेटा हुआ है। आओ, ज़रा उसकी बीमारी का हाल पूछते जाओ। दो मनुष्य सरहाने की ओर खड़े हैं, दो पैरों की ओर और दो-तीन इधर-उधर सेवा में उपस्थित हैं। आप जैसे प्रतापवान् पधारे। कार्ड भेजा, उत्तर मिला, भीतर जाना नहीं मिलेगा, अधिक बीमार हैं। ख़ैर, आग्रह करने पर आप भीतर गये। सारा शरीर उठाकर अभिवादन करना

तो दूर रहा, रोगी ने आँख उठाकर भी तो न देखा ! दो-तीन बेर आपने अपने आने की खबर कान में पहुँचाई (राम राम किया), तो बड़े नखरे से नाक चढ़ाकर कहते हैं 'एं', अस्तु। गद्दे चारों ओर बिछे हैं, तकिये धरे हैं, लोगबाग राम-राम करने बराबर आ रहे हैं, इत्यादि । रोग भी तो अमीरी है। पर प्यारे ! रोग सहेड़ (मढ़) कर यह बाह्य प्रताप लिया गया है। धिक्कार है इस सांसारिक इच्छा (विषम रोग) पर, जो बाह्य प्रताप की इच्छुक होती है, किंतु आत्मा को नष्ट-भ्रष्ट कर देती है।

तनिक देखना, यह आनंद के बाजे कैसे बज रहे हैं ? और गीत गाती, हर्ष मनाती ये स्त्रियाँ किधर जा रही हैं ? ये शीतला की पूजा को चली हैं। एक बच्चे को चेचक (शीतला) निकली थी, अब रोग से कुछ निवृत्ति हुई है। स्वास्थ्य पाने का धन्यवाद अर्पण कर रही हैं। जिस इमारत को बाहरी शोभा और श्रेष्ठता देखकर राजकीय कोप की भ्रांति हुई थी, वह तो कीड़ों और चूर्ण-चूर्ण अस्थियों का पुञ्ज (अर्थात् मक़बरा) निकलो । प्रियवर ! उनका अनुकरण मत करो, जो पहले संकल्प (desire, हवस) रूपी वसंत रोग में फँस जाते हैं और फिर जब तनिक सिर उठाते हैं, तो शरीर में फूले नहीं समाते और भाँति-भाँति के भोग-विलास के सामानों से केवल यह जतलाते हैं कि हम चेचक के शिकार (भोज्य) थे। A goodly apple rotten at the core (वे उस सुंदर सेब के समान हैं, जो भीतर से सड़ा हुआ हो)। अहोभाग्य उस व्यक्ति के, जो इस रोग (इच्छा) का आखेट (शिकार) ही नहीं बना, जिसने न तो कीचड़ से अपना शरीर मलिन किया, और जो न फिर धोता फिरा —

कीच पीछलो धोयकर आगे को न लगाओ।
चंदन आत्मज्ञान तज, विषय कीच मत जाओ ॥

संसार में जब किसी की एक कामना मिटती है (जैसे परीक्षा उत्तीर्ण कर लेना या विवाह होना), तो उसके सिर से कैसा बोझ हल्का हो जाता है, और उसे कितना आनंद प्राप्त होता है। अब उस विद्वान् के आनंद का क्या पूछना है, जिसके हृदय में किसी कामना को अब स्थान नहीं रह गया, जिसके समस्त भार टल गए, एक इच्छा शेष नहीं रही, समस्त संकल्प नाश हो गये। अपने आपको जानने में जिसके सब कर्त्तव्य पूर्ण हो गये—

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत् कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी॥

(गीता अ० २, श्लो० ७०)

अर्थ—जिस सज्जन ने अपनी इच्छाओं को यों समेट लिया है, जैसे जल से भरपूर समुद्र नदियों को अपने बीच में प्रविष्ट कर लेता है, वही सज्जन शान्ति प्राप्त करता है, दूसरा नहीं।

शाहंशहे-जहान है, सायल[1] हुआ है तू।
पैदा कुने-ज़मान है, डायल हुआ है तू॥
सौ बार ग़रज़ होवे तो धो-धो पियें क़दम।
क्यों चर्ख़ो[2]-मिहरो[3]-माह[4] पै मायल हुआ है तू॥
ख़ंजर[5] की क्या मजाल कि इक ज़ख़्म कर सके!
तेरा ही है ख़याल कि घायल हुआ है तू॥
क्या हर गदा[6]-ओ-शाह[7] का राज़िक़[8] है कोई और।
इफ़लासो[9]-तंगदस्ती का क़ायल हुआ है तू॥
टाइम[10] है तेरे मुजरे के मौक़े की ताक में।
क्यों डर से उसके मुफ़्त में ज़ायल[11] हुआ है तू॥

---

१ भिखारी, २ आकाश, ३ सूर्य, ४ चन्द्रमा, ५ शस्त्र (तलवार), ६ भिखारी ७ राजा, ८ अन्नदाता, ९ निर्धनता, १० काल, ११ घटना।

हमबग़ल तुझसे रहता है हर आन राम तो।
बन परदा अपनी वस्ल[1] में हायल[2] हुआ है तू॥

अथातो ब्रह्मजिज्ञासा (वेदांतदर्शन सूत्र १)

जुस्तजू कुन, जुस्तजू कुन, जुस्तजू। अन्दरूनत बीं हमाँजा हस्त ऊ॥

ज़िक्रे-बुताँ (प्रिया-वर्णन वा मृतक-स्मरण)—हर्षवान् हो, ऐ नाज़ और अदा पर मरनेवालो ! ऐ रोष और कटाक्ष पर कटनेवालो ! वह चंद्रवदन जिसकी भूल से पड़ी दृष्टि द्वारा एक रश्मि पाकर सूर्य और चंद्र प्रकाशमान हैं; फूलों के वर्ण और गंध जिसकी शक्ति से, रमणियों की मुस्किराहट जिसकी कृपा से है; वह प्रकाशों का प्रकाश, शोभा की खान और सौंदर्य का प्राण तुम्हारा ही आत्मदेव है।

बा हमा हुस्नो-ख़ूबेम, आशिक़े-रूए कीस्तम।
रस्ता ज़ि दामे-जिस्मों-जाँ बस्ता-ए-मूए कीस्तम॥
मस्त ज़ि बूए-मन जहाँ, दरपये निगहतम रवाँ।
वाला श्रो मस्त दरपये निगहतो-बूए कीस्तम॥

अर्थ—मैं स्वयं समस्त सौंदर्य और शोभा से सज्जित हूँ, फिर मैं किसके रूप का प्रेमी बनूँ ? अर्थात् किसी का भी नहीं। मैं शरीर और प्राण के बंधन से स्वतंत्र हूँ, फिर किसके केश-पाश का मैं बंदी होऊँ ? अर्थात् किसी का भी नहीं। मेरी सुगंध से संसार मस्त होकर मेरी सुगंध का पीछा कर रहा है। मैं किसकी सुगंध का मस्ताना और आसक्त बनूँ ? अर्थात् किसी की सुगंध का भी नहीं।

सितमस्त गर हवसत कशद कि बसैरे-सर्वो-समन दर आ।
तो ज़ि ग़ुंचा कम नदमीदाई दरे-दिल कुशा ब चमन दर आ॥

---

१ मिलना, दर्शन, २ रुकावट।

पये नाफ़हाए-रमीदा बू सपसंद ज़हमते-जुस्तजू ।
ब ख़याले-हल्क़ए-ज़ुल्फ़े-ऊ, गिरहे-ख़ुरद ब ख़ुतन दर आ ॥

अर्थ—यदि तुझे सरो-चमेली की सैर का लोभ खींचे, तो सितम है; क्योंकि तू कली से कम खिलनेवाला नहीं; केवल हृदय का द्वार खोल और अपनी वाटिका की सैर कर। ऐ सुगंधित नाभियों (मृगनाभि—सांसारिक भोगों) के पीछे पड़े हुए प्यारे! उनके ढूँढने के कष्ट को मत सहन कर; उस प्यारे (परमात्मदेव) की लटों (केशों) के कुंडल के खयाल की गिरह लगा और ऐसे तू ख़ुतन में आ।

यह Gospel (शुभ-संवाद) तुम्हें वेद सुनाता है—

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।
त्वं जीर्णो दंडेन वंचसि त्वं जातो भवसि विश्वतो मुखः॥
नीलः पतंगो हरितो लोहिताक्षस्तडिद्गर्भ ऋतवः समुद्रः।
अनादिमत्त्वं विभुत्वेन वर्त्तसे यतो जातानि भुवनानि विश्वा॥
(यजु० श्वेताश्वतरोपनिषद् अ० ४, मं० ३, ४)

अर्थ—स्त्री (प्रणयिनी) तुम ही हो; पुरुष, कुमार और कुमारी भी तुम ही हो; बूढ़े भी तुम ही हो, दण्डे के बल तुम ही चलते हो; तुम ही उपाधि से उत्पन्न होते ह तुम ही सर्व ओर मुखवाले हो; कृष्ण वर्ण के पक्षी तुम ह बने हो, फूल तुम हो और भौंरा तुम हो, आदि--

बाँकी अदाएँ देखो, चँद का-सा मुखड़ा पेखो॥ टेक॥
बादल में, बहते जल में, वायू में मेरी लटकें।
तारों में, नायिका में, मोरों में मेरी मटकें॥
चलना ठुमक-ठुमककर, बालक का रूप धरकर।
घूँघट अबर उलटकर हँसना यह बिजली बनकर॥
शबनम, गुल और सूरज, चाकर हैं तेरे पद के।
यह शान बान सजधज, ऐ राम! तेरे सदक़े॥

पस, ओ प्रिया-वर्णन के ध्यान में निमग्न! इसीलिये।

जुस्तजू कुन, जुस्तजू कुन, जुस्तजू। अन्दरूनत बीं कि बेरूँ नेस्त ऊ॥

अथातो ब्रह्मजिज्ञासा। (वेदांतदर्शन, प्रथम सूत्र)

मृतक जनों का स्मरण—ऐ प्रियजनों की मृत्यु पर रोने-चिल्लानेवाले! ऐ इष्ट-मित्रों की मृत्यु पर विलाप करनेवाले! इस रोनेंधोने से यदि छुटकारा पाने का तू इच्छुक है, तो आ। अपने भीतर (inner sanctuary) पवित्र अंतःकरण में निष्ठा कर। अमृतरूप बन। अपने असली धाम (सच्चिदानन्द) में निवास कर, जहाँ मृत्यु को मानों अचानक मृत्यु आ जाती है। और फिर देख कि है श्रुति का वाक्य सच कि नहीं—

अतिमुच्य धीरा प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति। (केन० उप० २)

अर्थ—धीर पुरुष विषयों से निरासक्त हुए इस संसार से मुँह मोड़कर ही अमृत होते हैं, अर्थात् विषयों के चुंगल से छुटकारा पाते ही तत्काल अपने अविनाशी स्वरूप से मिलाप (अभेदता) पा जाते हैं।

ग़मो-ग़ुस्सा-ओ-यासो[1] अंदोह[2] हिरमाँ[3]।
हवाए - मसर्रत[4] उड़ा ले गई है॥

पस इसीलिये निरर्थक कोलाहल और अन्धेरी कोठरी में दिन को रात और रात को दिन करने के स्थान पर श्रुतियों की मधुर ध्वनि के द्वारा—

जुस्तजू कुन, जुस्तजू कुन, जुस्तजू। दर बरे-ख़ुद बीं हमाँ जा हस्त ऊ।

अथातो ब्रह्मजिज्ञासा। (वेदा० सू० १)

ऐ प्यारे! संसार (Phenomenon) की वस्तुएँ वस्तुतः संतोषदायक नहीं हो सकतीं, हृदय की तृष्णा इनसे कभी नहीं बुझती।

Anthony sought happiness in love, Brutus in glory, Caesar in dominion. The first found disgrace,

---

१ निराशा, २ शोक, ३ अप्राप्ति (नाउम्मेदी), ४ प्रसन्नता

the second disgust, the last ingratitude, and each destruction. The things of the world being weighed in the balance are all found wanting. Self-realisation alone will bring peace and happiness.

अर्थ—एन्थोनी ने प्रीति (प्रणय) में, ब्रूटस ने कीर्ति में, और सीज़र (रूस के शाह) ने शासन-साम्राज्य वढ़ाने में आनंद ढूँढा। परिणाम यह निकला कि पहिलेवाले (एन्थोनी) को अपमान और अकीर्ति लाभ हुई, दूसरे (ब्रूटस) को घृणा मिली और तीसरे (सीज़र) को कृतघ्नता, एवं प्रत्येक विना आनंद के ही नष्ट हो गया अर्थात् मर गया। इस प्रकार इस असार संसार की सब वस्तुएँ जब अनुभव के तराज़ू में रखकर ख़ूब तोलीं, तो सब-की-सब निकम्मी पाईं, अर्थात् जब सांसारिक पदार्थों का भली भाँति अनुभव किया, तो सब के सब निस्सार निकले। केवल आत्मानुभव ही हृदय को आनंद देनेवाला निकला।

अतः—फ़िकरे-मआशो-ज़िकरे-बुताँ यादे-रफ़्तगाँ।
अपना ही तू फ़रेफ़्ता होवे तो सब मिटें॥

अर्थ—जीविका की चिंता, प्रणयिनी सुंदरियों का श्रवण-मनन, एवं लोगों का दुःखमय स्मरण, यदि तू अपने निज स्वरूप का ही प्रेमी होवे, तो सब मिट जायँ।

अथा तो ब्रह्मजिज्ञासा। (वेदां० सू० १)

जुस्तजू कुन, जुस्तजू कुन, जुस्तजू। दर बरे-खुद बीं कि बेरूँ नेस्त ऊ॥

जिज्ञासु—यह बहुत कठिन है, अत्यंत सूक्ष्म है, हम किस प्रकार विजय कर सकेंगे।

ज्ञानी—माना कि ब्रह्म-विद्या अति सूक्ष्म है, अत्यंत कठिन है; किंतु याद रक्खो, इस विना चैन भी कहीं नहीं मिलने का, यह औषध महँगी ही सही, किंतु अद्वितीय है। भयंकर रोग की इसके अतिरिक्त और कोई चिकित्सा भी तो हो।

नान्यः पंथा विमुक्तये। अर्थात् आत्मानुभव के सिवा और कोई मार्ग मुक्ति का नहीं है।

अतः जितना कठिन है, उतनी ही जिज्ञासा अधिक करो।

हुदी रा तेज़तर मेख्वाँ चो महमिल रा गिराँ बीनी।
नवारा तल्ख़तर मे ज़न चो शौक़े-नग़मा कमयाबी॥

अर्थ—जब तू ऊँट के भार को भारी देखे, तो हुदी (ऊँट के चलाने की आवाज़) को अधिक ज़ोर से बोल, और जब तू तान (स्वर) का शौक़ कम पावे, तो आवाज़ को ऊँचा (पंचम स्वर में) खींच।

अथा तो ब्रह्मजिज्ञासा। (वेदांत-दर्शन, सू० १)

जुस्तजू कुन, जुस्तजू कुन, जुस्तजू। दर बरे-ख़ुद वीं हमाँ जा हस्त ऊ॥

जिज्ञासु—मेरे कुछ मित्रों को एक बेर वेदांत का ख़ब्त हुआ था। उन्होंने तो कुछ दिन टक्करें मारकर अंत में इसका पीछा छोड़ दिया, उन्हें कुछ रस आया नहीं।

ज्ञानी—होगा, क्या आश्चर्य है! उस लोमड़ी (वन-विड़ाल) की बात तुमने कभी नहीं सुनी, जो अपने साहस की न्यूनता को छिपाने के लिये अंगूरों के सम्बन्ध में यों कह उठी कि "अभी कच्चे हैं, कौन दाँत खट्टे करे।"

साहस-हीनता को त्यागकर धीरता के साथ श्रवण, मनन और निदिध्यासन की मंज़िलों को पार करो—

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मंतव्यो निदिध्यासितव्यः।
(यजु० बृह०, अ० ४, ब्रा० ५, मं० ६)

अर्थ—निस्संदेह यह आत्मा देखने, सुनने, मनन करने और अनुभव करने योग्य है।

वेद की वाणी झूठी नहीं है कि तुम आनंदघन हो, चेतनघन हो, सत्घन हो। परीक्षा कर लो।

शोक है उस बंदी (क़ैदी) पर, जो कानों के बंधन के छल्ले

को कर्ण-कुंडल मान बैठा हो, और हाथ-पाँव की बेड़ियों को कंगन और पग-भूषण ठान बैठा हो, गले की संगली को विश्वविद्यालय का पटा (University hood) स्वीकार कर चुका हो। प्यारे! उठो, जागो, सांसारिक इच्छाओं की ज़ंजीरें एकदम तोड़ डालो; अज्ञान की निद्रा को झाड़ डालो (shake off); देखो तो सही, तुम्हारा तो बन्धन भी तुम्हारी मुक्ति सिद्ध करता है। सूर्य में अँधेरा कैसा ?

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ।

(यजु० कठो०, अ० १, व० २, मं० १४)

अर्थ—उठो, जागो, उत्तम ज्ञानियों के निकट जाओ, और उनसे अपने स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करो।

मिनगर बहरसू ऐ जाँ! कि तो ख़ास जाने-माई ।
मफ़रोश ख़्वेश अरज़ाँ कि तो बस गिराँबहाई ॥
बिस्ताँ ज़ि देव ख़ातिम कि तोई बजाँ सुलेमाँ ।
बिश्कन सियाह अख़्तर कि तो आफ़ताबे-राई ॥
बिगुसल ज़ि बे असीलाँ मशनौ ग़रीबे-ग़ोलाँ ।
कि तो अज़ शरीफ़े-असली कि तो अज़ बलंदे-जाई ॥

अर्थ—ऐ प्राण-प्रिय! तू हर ओर मत देख, क्योंकि तू हमारे प्राण का भी मूलतत्त्व है, अर्थात् प्राण का भी प्राण है। और अपने आपको सस्ता मत बेच, क्योंकि तू बहुमूल्यवान् है। देव (कामदेव) से तू अपनी अँगूठी ले ले, क्योंकि प्राणों की शपथ तू ही सुलेमान है। और उस दुर्भाग्य को दूर कर दे, क्योंकि तू सूर्य का प्रकाश करनेवाला है। नीचों से अपना संबंध तोड़ दे और छलावों (दुष्टों) की कल-कल मत सुन, क्योंकि तू श्रेष्ठ कुल का है और तू ही उच्च पदवाला है।

इस Superstition (पक्षपात) को त्याग कि 'मैं शरीर और शरीरत्व हूँ,' और—

जुस्तजू कुन, जुस्तजू कुन, जुस्तजू । दर बरे-खुद वीं हमाँ जा हस्त ऊ ॥

अथा तो ब्रह्मजिज्ञासा । (वेदांत-दर्शन, सू० १)

एक राजा ने दो निपुण चित्रकारों (रवी और कवी) की परीक्षा लेनी चाही । परीक्षा की सुविधा के लिये दोनों को आज्ञा हुई कि आमने-सामने की दीवारों पर अपनी-अपनी चित्रकारी की योग्यता दर्शावें ।

आज्ञानुसार परदे तन गये कि एक दूसरे के काम को देखने न पावें । प्रतिदिन दोनों आते थे और अपनी-अपनी दीवार पर काम करने के पश्चात् चले जाते थे । नियत अवधि बीतने पर राजा साहब अपने सभासदों के साथ देखने के लिये उस स्थान पर पधारे । पहिले रवी की दीवार पर से परदा उठाया गया । दर्शक लोग दंग रह गये । अहह, अहह करने लगे । मुक्त कंठ से बोल उठे । चीन के चित्र भला इससे बढ़कर क्या होंगे !

तुरा दीदा व मानी रा शुनीदा । शुनीदा कै बुवद मानिंदे-दीदा ?

अर्थ—मैंने तुझको तो देखा है और मानी का केवल नाम सुना है । भला सुना हुआ देखे हुए के तुल्य किस प्रकार हो सकता है ?

सब ओर से ये शब्द सुनाई पड़े कि "बस हद हो गई, रवी तो पूरे के पूरे अंक (full marks) ले गया । महाभारत की समस्त घटनाओं को नये सिरे से सजीव कर दिखाया । चित्र बोला ही चाहते हैं । इससे बढ़कर तो ख़्याल में नहीं आ सकता, रवी ही को पारितोषिक मिलना चाहिए । अब कुछ आवश्यकता नहीं कवी की कारीगरी देखने की । कमाल है, कमाल !" तृप्त (प्रसन्न) तो राजा साहब भी ऐसे ही हो गये थे कि जी नहीं चाहता था कि कवी की दीवार देखने का कष्ट स्वीकार करें, किंतु कवी ने स्वयं ही परदा उठा दिया । परदा उठने की देर थी कि बस कुछ न पूछिए । चारों ओर आश्चर्य से निस्तब्धता छा गई ।

राजा साहब और श्रीमंत लोग दाँतों-तले अँगुली दाबकर रह गये। कुछ पल तक तो साँस भीतर का भीतर और बाहर का बाहर रह गया। जिधर देखो, नीचे के ओंठ ऊपर के ओंठ से अलग। सब के सब विस्मित खड़े हैं। आखिर हुआ क्या? कवी ने सितम क्या कर दिया? ग़ज़ब क्या ढा दिया? अजी यह सफ़ाई! ओहो हो हो! दृष्टि फिसली जाती है। और देखो, दीवार के भीतर दो-दो गज़ घुसकर चित्र बना आया। हाय ज़ालिम! मार डाला। क्या ही ठीक निकला यह वाक्य कि "जहाँ न पहुँचे रवी, वहाँ पहुँचे कवी।"

पाठक! समझे, कवी ने किस बात पर रवी को मात कर दिया था? आमने-सामने की दोनों दीवारों का अंतर केवल दो गज़ के लगभग था। नियत अवकाश के भीतर रवी तो अपनी दीवार के ऊपर रंग और रोग़न चढ़ाता रहा; और कवी इतना समय अपनी दीवार की सफ़ाई करने में दत्तचित्त से लगा रहा, यहाँ तक कि उसने वह दीवार स्वच्छ बना दी। जो परिणाम हुआ, वह तो आपने देख ही लिया। इस झलकती-ढलकती दीवार के मुक़ाबले रवी की दीवार खुरदरी और भद्दी जान पड़ती थी। इसके अतिरिक्त रवी की सब-की-सब मिहनत एक सफ़ाई की बदौलत कवी ने मुफ़्त ख़रीद ली, और दृक्-शास्त्र (optics) के प्रसिद्ध सिद्धांत के अनुसार जितना अंतर दीवारों के मध्य में था, उतने ही अंतर पर कवी की दीवार के भीतर चित्र दिखाई देते थे।

ऐ अपरा विद्याओं के विद्यार्थियो! हृदय-पटल पर रवी की भाँति बाहरी चित्रकारी कहाँ तक पड़े करोगे? सतह-ही-सतह (पृथिवीतल) पर विविध भाँति के रूप कहाँ तक भरोगे? धँसे हुए (Crammed) विविध वर्ण दिमाग़ (मस्तिष्क)

में कब तक रंग जमायँगे ? और बिखरे हुए विचार ठूँस-ठूँसकर भरे हुए कब तक काम आयँगे ? (education) एजूकेशन (*e*, out; *duco*, to draw) के अर्थ हैं भीतर से बाहर निकालना, न कि बाहर से भीतर ठूँसना। एजूकेशन (शिक्षा) के मुख्य प्रयोजन को गड़बड़ करना कब तक ? क्यों नहीं कवी की तरह उस पवित्रता (purity) और आत्मज्ञान दिलानेवाली विद्या की ओर चित्त देते, जिसकी विशेषता है—

हरदम अज़ नाखुन ख़राशम सीना-ए-अफ़गार रा।
ता ज़ि दिल बेरूँ कुनम ग़ैरे-ख़याले-यार रा॥

अर्थ—मैं अपने घायल चित्त को हरदम नाखुनों से छीलता हूँ, ताकि यार (प्यारे) के ख़याल के अतिरिक्त प्रत्येक ख़याल को चित्त से बाहर निकाल दूँ।

कहाँ तो तत्त्व दर्शानेवाली ब्रह्म-विद्या और कहाँ नाम-रूप में फँसानेवाली सांसारिक विद्याएँ और कलाएँ, जो एक दिन भारतवर्ष में शूद्रों के लिए विशिष्ट थीं! आज हमारे नवयुवक इन (so called) नाम-मात्र की विद्याओं और कलाओं की चाह में गिरकर अधोगति में परमगत और कुएँ की तह में तारा हो रहे हैं। Dark room (अँधेरे कमरे) की विद्या यदि light (प्रकाश, ज्ञान) मानी गई, तो आज भी आँखों (हृदय-नेत्रों) को अंधा करेगी और कल भी।

जिस एक के जानने से समस्त न जानी हुई वस्तुएँ जानी जाती हैं, न सुनी हुई सुनी जाती हैं, न देखी हुई देखी जाती हैं, जिससे भाग्य के सब चिह्न हृदय-दर्पण में उतर आते हैं, जिससे सबसे बड़ा रहस्य और गुह्य भेद का साक्षात्कार हो जाता है, उस उपनिषद्विद्या (आत्मज्ञान)-रूपी सुरमे से क्यों नहीं हृदय के नेत्रों को प्रकाशित करते ?

येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातमिति।

(साम०, छां०, प्र० ६, खं० १, मं० ३)

अर्थ—जिस(आत्मज्ञान)से न सुना हुआ सुना हुआ हो जाता है, अज्ञात ज्ञात हो जाता है, और न जाना हुआ जाना हुआ हो जाता है (ऐसे स्वरूप को पहचानो)।

आत्मानं वा विजानीयादन्यां वाचं विमुंचथ।

Know this Atman, give up all other vain words and hear no other.

अर्थ—उस आत्मा को जानो और सब व्यर्थ गप्पें छोड़ो; उस तत्त्वज्ञान के सिवा और कुछ मत सुनो।

इल्म रा ओ अक़्ल राओ क़ालो-क़ील। जुम्ला रा अन्दाख़्तम् दर आवे-नील॥
इस्म रा ओ जिस्म रा दरबाख़्तम्। ता कमाले-मारफ़त दरयाफ़्तम्॥

अर्थ—विद्या और बुद्धि, चूँ और चरा (क्यों-कब) इन सबको मैंने नील नदी में फेंक दिया, और मैंने नाम-रूप को हार दिया; तब मुझको ज्ञान की परमावस्था प्राप्त हुई।

इक नुक़्ते विच गल्ल मुकदी है।

फड़ नुक़्ता छोड़ हिसावाँ नूँ, कर दूर कुफ़र दियाँ बाबाँनूँ।
दे फूक हिसाब किताबाँनूँ, कर साफ़ दिले दियाँ ख़्वाबाँनूँ।
इक अलिफ़ पढ़ो छुटकारा है, इक अलिफ़ पढ़ो छुटकारा है।
जुस्तजू कुन, जुस्तजू कुन, जुस्तजू। दर बरे-ख़ुद बीं हमाँ जा हस्त ऊ॥

अथा तो ब्रह्मजिज्ञासा। (वेदांत-दर्शन० सू० १)

एक व्यक्ति मंदिर में आकर धन्यवाद का प्रसाद बाँट रहा था और आनन्द मना रहा था। किसी ने इस असाधारण आनंद का कारण पूछा, तो उत्तर दिया कि "मैंने दोबारा जीवन प्राप्त किया है। भला बचा हूँ। चोरों के पंजे से छुटकारा पाया है। मेरा घोड़ा तो चोर ले गये हैं, किंतु हज़ार धन्यवाद है कि मैं घोड़े पर सवार न था, नहीं तो मैं भी चुराया जाता, मेरी जैसी बहुमूल्य वस्तु चोरी के माल में गिनी नहीं गई, इस बात का आनंद है।"

पाठक हँसते होंगे कि विचित्र मूर्ख था। इतना न समझा कि

यदि मैं घोड़े पर सवार होता, तो मेरा चुराया जाना तो एक तरफ़, घोड़ा भी क्यों चुराया जाता। किंतु हाय!

हर कसे नासिह बराए-दीगराँ, नासहे ख़ुद याफ़्तम् कम दर जहाँ।

अर्थ—पर-उपदेश-कुशल बहुतेरे, निज आचरहिं ते नर जग थोरे।

अपने-अपने गिरेबान में मुँह डालकर देखो, क्या हाल हो रहा है। सवार लुप्त है कि घोड़ा? वह स्वर्गोपम भारतवर्ष जिसके सघन वृक्षों के समूहों में या तो कोकिला का मधुर स्वर सुनाई देता था, या शांति बरसाती हुई वेदध्वनि; जिसकी मन्द स्पन्द पवन या तो पुष्पों की सुगन्ध को उठाए फिरती थी या पवित्र प्रणव (ओ३म्) की ध्वनि को; जिसके दर्पण की भाँति स्वच्छ, निर्मल स्रोत और नदियाँ उन महापुरुषों के अंतःकरण से अधिक निर्मल न थीं, जो वहाँ रमण करते थे; जिसके सरोवरों और तीर्थों पर इधर तो खिले हुए कमल शोभायमान थे, उधर तीर्थ-रूपी ज्ञानवानों के तेज बरसाते मुखारविंद; जिसके नगरों में तोते और मैना तक ब्रह्म-विचार करते सुनाई देते थे; आज उस ऋषियोंवाले भारतवर्ष में इस सिरे से उस सिरे तक कितने मनुष्य ऐसे मिलेंगे, जो स्वरूप में आरूढ़ हों? कितने हस्तामलक दिखाई देंगे? जिससे पूछो, सवार नदारद (नहीं है), घोड़े ही का पता देगा, अर्थात् शरीर ही का नाम और चिह्न बतायेगा। अमुक दफ़्तर में नौकर, यह वेतन, अमुक जाति, अमुक व्यक्ति का पुत्र, अमुक निवासस्थान, यह आयु, मैं सुन्दर हूँ, मैं मर्द हूँ, मैं एम० ए० हूँ, इत्यादि-इत्यादि। प्यारे! यह सब तो घोड़े (शरीर) का हुलिया है, किंतु शरीर आप नहीं हो सकते। शरीर पर सवार, शरीर के स्वामी, आप कौन हैं, बताइए? चुप, निस्तब्ध, शब्द नहीं। Lost! Lost! Lost!!! लुप्त! लुप्त!! लुप्त!!! क्या लुप्त? ह्यू ऐंड क्राई (hue & cry कोलाहल) कैसी, घोड़ा खोया गया है क्या? नहीं-नहीं, घोड़े अर्थात् शरीर का पता तो बराबर

मिल रहा है, सवार (आत्मा) लुप्त है। आश्चर्य है, क्या तमाशा है।

आँचि मा करदेम बर ख़ुद हेच नाबीना न कर्द।
दरमियाने-ख़ाना गुम करदेम साहिबे-ख़ाना रा॥

अर्थ—जो कुछ हमने अपने पर किया, वह किसी अंधे ने भी नहीं किया; क्योंकि घर के भीतर घर के मालिक को हमने गुम कर दिया है।

भारतवर्ष-निवासी ! (Know thyself) जान अपने आप को।
जुस्तजू कुन, जुस्तजू कुन, जुस्तजू। दर दरूतन बीं कि बेरूँ नेस्त ऊ॥

अथा तो ब्रह्मजिज्ञासा। (वेदांत-दर्शन, सू० १)

हस्ती-ओ-इल्म हूँ, मस्ती हूँ, नहीं नाम मेरा।
ख़ुदपरस्ती[1] व ख़ुदाई है, यह बस काम मेरा॥
चश्मे-लैला हूँ, दिले-क़ैस[2] व दस्ते-फ़रहाद।
बोसा देना हो तो दे ले, है लबे[3]-जाम[4] मेरा॥
गोशे-गुल[5] हूँ, रुख़े-यूसुफ़, दमे-ईसा, सरे-सरमद।
तेरे सीने में बसू हूँ, है वही बाम[6] मेरा॥
हल्क़े-मंसूर, तने-शम्स व इल्मे-उल्मा।
वाह वा, बहर हूँ और बुदबुदा इक राम मेरा॥

जिज्ञासु—मेरे ख़याल में तो पादरी लोग रेवरेंड स्लेटर (Revd.Slater) और डॉक्टर क्रोज़ियर (Dr. Crozier) आदि जैसे तत्त्वज्ञानी सच ही कहते हैं कि वेदांत महास्वार्थ-परायण धर्म है, अव्वल नंबर की ख़ुदग़रज़ी सिखाता है—अपने ही लाभ की बताता है।

ज्ञानी—संसार में कोई मनुष्य ही नहीं, जो आनंद का इच्छुक

---

१ अहंग्रह-उपासना। २ मजनूँ का दिल। ३ निकट, किनारा। ४ प्याला। ५ पुष्प का कान। ६ घर।

न हो, सीधे या टेढ़े मार्ग से (directly or indirectly) सब आनंद के पीछे भटकते हैं।

सुखं भूयात्, दुःखं मा भूयात्।

अर्थ—सुख हो, दुःख कदापि न हो।

अंतर केवल इतना है कि कुछ नासमझ हैं (क) जो सर्वव्यापी अपने आपको भूलकर शरीर-भाव में निमग्न हैं। एक साढ़े तीन हाथ के टापू में क़ैद रहते हैं, शेष सब सृष्टि को अपने से बिलकुल जुदा मानकर उससे तनिक नेह (प्रेम) नहीं रखते, और आनंद की खोज उन भौतिक पदार्थों में करते हैं, जहाँ आनंद है नहीं। इसलिये कि प्रकृति (Nature) के विरुद्ध आचरण करते हैं, अतः पग-पग पर ठोकरें खाते और मुसीबतें झेलते हैं। इनका नाम संसार में स्वार्थपरायण (Selfish) रक्खा गया है, इसके स्थान पर अच्छा होता, यदि झूठे या मूर्ख रक्खा जाता। कुछ ऐसे हैं (ख) कि अपने अनुभव या औरों के अनुभव के कारण यह जान चुके हैं कि आनंद केवल एक शरीर का भला चाहने में हमें नहीं मिलेगा; क्रिया और प्रतिक्रिया के नियम (Law of action and reaction) के अनुसार 'कर भला, होगा भला'। या यों कहो कि ये वे हैं, जो प्रकृति-माता (Mother Nature) से चपत खाकर इतना सीख चुके हैं कि आनंद लेने के लिये—I should love others as I love myself, अर्थात् 'मुझे औरों से ऐसा ही प्रेम करना चाहिए, जैसा कि अपने आप से।' औरों का भला करने ही में मेरा कल्याण है। मगर इतना अभी नहीं समझे कि क्यों? मशीन (यंत्र) की भाँति काम तो कुछ अंश में ठीक ही कर देते हैं, किंतु भीतर ज्ञान नहीं है। कुछ ऐसे महाशय वह हार्दिक स्वच्छता ख्याल में भी नहीं ला सकते, जिससे सिद्ध होता है—

'All are myself, why not love all as myself.'

अर्थ—समस्त शरीर मैं स्वयं हूँ, या सब मेरा अपना आप है, तो फिर मैं क्यों न अपनी ही भाँति सबसे प्रीति करूँ ?

सब शरीर मेरे हैं। केवल एक शरीर को अपना मानना झूठ बोलना है, और ब्रह्मांड के राजराजेश्वर अपने नारायण रूप आत्मा को परिच्छिन्न तथा बद्ध मान कर कलंकित करना तथा आत्महत्या करना है, और बहुत भारी पाप का भागी होना है, इसलिये स्वार्थपरता क्यों ?

(ख) संख्यक महाशय स्वार्थी (आनंद की चाहवाले) वैसे ही हैं, जैसे (क) संख्यक महाशय। हाँ अंतर यह है कि (ख) संख्या-वाले अपने स्वार्थ को पूरा करने का ढंग भी कुछ जानते हैं, और (क) संख्यावाले इस शैली से बिलकुल अनजान हैं। उनका नाम संसार में रक्खा गया है विनीत वा सभ्य, सज्जन पुरुष, सदाचारी लोग। वाह वा! धन्य हैं ऐसे लोग, धन्य हैं। इसके साथ-साथ ये लोग सत्संग की बदौलत या लोगों में कीर्तिमान् होने की इच्छा से धर्म के कोड़े खाकर, या स्वयं प्रकृति से पाठ पढ़कर इतना किसी अंश में अवश्य सीख चुके हैं कि गुणन क्योंकर करना चाहिए; (क) संख्यावाले मनुष्यों की तरह गुणा देने के स्थान पर व्यवकलन (नफ़ी) नहीं कर देते; परन्तु गुणा के नियम के सिद्धांत को तनिक नहीं समझते।

समस्त संसार के सिद्धांतों को यथार्थ जाननेवाला, सभ्यता रूप गुणा के सिद्धांत तो एक तरफ़, वरन् विकास, लोगारिथ्म (Logarithm, घाताङ्कगणन) और काटरनियनस् (Quaternions, चतुष्टयं) की तह तक पहुँचा हुआ और प्रकृति का पति है वह व्यक्ति (ग), जो जानता है, 'सर्वत्र वही आत्मा (अपना आप) प्रकाशमान है'।

Every where the same Self is manifest.

जहाँ-तहाँ, क्या फ़क़ीर, क्या अमीर, क्या छोटा, क्या बड़ा, क्या क़ैदी (बंदी), क्या राजमंत्री, सब एक ही हैं—

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्त्वा अत्यतिष्ठद्दशांगुलम् ॥ (श्वे० श्व० उप०, ३-१४)

अर्थात् सहस्रों सिरवाला, सहस्रों नेत्रवाला, सहस्रों पैरों-वाला वह पुरुष है। वह सब ओर से भूमि को व्याप्त कर दशों दिशाओं में स्थित है।

केवल यह व्यक्ति (ग) है, जो स्वार्थपरायण नहीं कहला सकता, क्योंकि उसमें न अहंकार रहता है न स्वार्थ। उस व्यक्ति को आनंद की चाह भला क्यों? वह तो स्वयं आनंद है। जिसकी चाह होती है, वह आप स्वयं है, इससे उसका नाम है स्वयंभू—खुद-आ, या खुदा।

मुतलए-दीदारे-हक़ दीदारे-मा, मंवए-गुफ़्तारे-हक़ गुफ़्तारे-मा ।

अर्थ—हमारा दर्शन परमात्म-दर्शन का सूचक है, और हमारी बातचीत ईश्वरीय वाणी का स्रोत है।

जब कि एक स्थान की वायु सूर्य की गरमी खाकर सूक्ष्म (हल्की) होकर ऊपर उड़ जाती है, तो उसका स्थान घेरने को अपने आप चारों ओर से वायु चल पड़ती है, इसी प्रकार ज्ञानवान् जो सर्वोच्च अवस्था को प्राप्त हो चुका है और संसार में आवागमन से मुक्त हुआ अपना स्थान ख़ाली कर गया है, चाहे किसी से बात करे चाहे न करे, क्या शूद्र, क्या वैश्य, क्या क्षत्री, क्या ब्राह्मण, सबका आत्मा होकर सबको एक पग आगे बढ़ा देता है। यह एक तिलस्मात का रिफ़ार्मर (अद्भुत सुधारक) है, जिसकी विद्यमानता से देश का देश तत्काल सुधर जाता है, उन्नति पाता है।

जित्थे बैठन संतजन, ओह थाँ सोहेन्दा।
आँकि पाकीज़ा दिलस्त अर बिनशीनद ख़ामोश ;

हमा अज़ सीरते-साफ़ीश नसीहत शुनवंद।

अर्थ—जो स्वच्छ-चित्त और निर्मल-अंतःकरण है, यदि वह चुप भी बैठ जाय, तो सब उसके पवित्र स्वभाव से उपदेश सुनते हैं।

ऐसे महात्मा की तो बोल-चाल, गति और दर्शन ही जीवित उपदेश हैं, जिनकी बदौलत—

धन्य भूमी धन्य देश-काल हो, धन-धन लोचन करिहं दरस जो।

Archimedes (हकीम अर्शमीदश गणिताचार्य) कहा करता था कि "I shall move the world if I get a standpoint, अर्थात् तुलादण्ड के सिद्धान्त (Principle of the lever) के अनुसार यदि मुझे एक टेक वा अवलम्बन (फलक्रम fulcrum) मिल जाय, तो मैं जो छोटा-सा मालूम होता हूँ, सारे संसार को हिला दूँ।" वह अवलम्बन (टेक) हकीम अर्शमीदश बेचारे को न मिल सका। वेदांत बताता है, वह टेक क्या है? वह तेरा ही अपना आप (आत्मा) है, जो स्वतः स्थित, सबका अधिष्ठान (आधार और आश्रय) और सत् है, जिसको साक्षात्कार करने से समस्त सृष्टि हिलाई जाती है। अतः अपना ही सुधार करने से संसार का सुधार होता है।

Physician, heal thyself, अर्थात् ऐ वैद्य! पहले तू अपनी चिकित्सा आप कर। जब तक तुम्हें चोर दिखाई पड़ता है, तुम्हारे भीतर चोर अवश्य होगा; जब तक और लोग ब्रह्म से भिन्न (अयोग्य, ख़राब, सुधारने-योग्य) दिखाई देते हैं, ऐ सुधार का बीड़ा उठानेवाले! अपनी चिकित्सा कर, अपनी पतित अवस्था पर आठ-आठ आँसू रो; और यदि कोई रक्त-बिंदु तेरे हृदय-तल में है, तो उसे आँसू बनाकर आँख के रास्ते निकाल डाल, यहाँ तक कि तेरे हृदय की वाटिका सींचते-सींचते एक दिन इस ज्ञान (आनन्द) से प्रफुल्लित हो जाय कि—

अहं चाहमिदं जगच्च सकलं चिन्मात्रविस्तारितम् ।
सर्वं चैतदविद्यया त्रिगुणयाऽशेषं मया कल्पितम् ॥

अर्थ—मैं और यह चिन्मात्र (तुच्छ) फैला हुआ समस्त संसार ब्रह्म ही है, और यह सारे का सारा समस्त जगत् तीन गुणोंवाली अविद्या के कारण मुझसे कल्पित है।

ऐ योरप-निवासियो! तुम वेदांत को कहते हो स्वार्थी, जिस वेदांत का आदर्श (Ideal) है संन्यास; जिसमें बड़ाई का परिमाण (तराज़ू) है त्याग (renunciation); बड़ा देखना हो, तो यह नहीं पूछा जाता कि इसके पास रुपया कितना है, वरन् यह कि इसकी चित्त-विशालता (उदारता) कितनी है।

मही रम्या शय्या विपुलमुपधानं भुजलता ;
वितानं चाकाशं व्यजनमनुकूलोऽयमनिलः ।
स्फुरद्दीपश्चंद्रो विरतिवनितासंगमुदितः ;
सुखं शांतः शेते मुनिरतनभूमिर्नृप इव ॥

(भर्तृहरि, वैराग्यशतक श्लो० ६४)

अर्थ—जिसके हाँ भूमि ही सुन्दर शय्या, भुजा ही सरहाना (तकिया), आकाश ही छत (मण्डप), अनुकूल वायु ही पंखा और प्रकाशमान चन्द्र ही दीपक है, और जो उक्त सामग्रियों से विरक्तता रूपी स्त्री के संग आनन्दमय व प्रसन्न है, ऐसा विरक्त मुनि बड़े-बड़े ऐश्वर्यवान् राजाओं के समान सुख से शयन करता है।

ख़िश्त ज़ेरे-सरो बर तारके-हफ़्त अख़्तर पाए।
दस्ते-क़ुदरत निगरो मन्सबे साहिब जाही ॥

अर्थ—सिर के नीचे तो ईंट है और पैर सातों नक्षत्रों के ऊपर, तू इस रुतबेवाले की सामर्थ्य का प्रभाव और पद देख।

सात गाँठ कौपीन में साध न माने संग।
राम अमल माता फिरे गिने इन्द्र को रंक ॥

जिस वेदांत की पवित्र चौखट पर पग रखने के लिये ही

आवश्यक है "इहामुत्रफलभोगविरागः" अर्थात् "न, केवल स्वर्ग की अप्सराओं पर आँख न डालना, वरन् इन्द्र-ब्रह्मा आदि के उत्तम ऐश्वर्यों पर लात मार देना", फिर क्या बिसात कि इस संसार की नाशवान्, अस्थिर क्षणभंगुर वस्तुओं के लोभ में मारे-मारे फिरना और धूलि उड़ाना—

हूर पर आँख न डाले कभी शैदा तेरा।
सबसे बेगाना है ऐ दोस्त शिनासाँ तेरा॥

हाँ, एक दृष्टि से वेदांत एक अव्वल दरजे की स्वार्थपर (खुद-ग़रज़) विद्या है। कुछ तत्त्वज्ञानियों का कथन है कि जब कोई सज्जन किसी विपद्ग्रस्त पर कृपालु होकर उस पर कृपा करता है, तो वह निहोरा (अनुग्रह) उस व्यक्ति पर कुछ नहीं होता, वरन् अपने ही पर होता है। कारण यह कि जैसे कुछ मनुष्यों के स्वभाव कोमल होते हैं, तो वह औरों के श्लेष्मा को शीघ्र स्वीकार कर लेते हैं, निकट का मनुष्य जम्हाई (yawning) लेता है, उनको जम्हाई आ जाती है, अन्य रोगों से तत्काल ग्रसित होने का तो कहना ही क्या है; वैसे ही कोमल चित्तवाला मनुष्य अपने पड़ोसियों की विपत्ति को सांसर्गिक रोग (मर्ज़े-मुतअद्दी) की भाँति झट अपनी ही अङ्गीकार कर लेता है, और फिर उस अङ्गीकृत शोक-संताप को मिथ्या करने के लिये ग़रीब पड़ोसी पर कृपा और दया करता है। यह कृपा और दया अपने ही लिये होती है, अन्य के लिये तनिक भी नहीं। जिसे दया और कृपा माने बैठे हो, यह भी तो एक प्रकार की स्वार्थपरता ही है। परंतु वेदांत की स्वार्थपरता इससे भी गई-गुज़री है, परले पार जाती है। यहाँ तो ऐ वेदांत को कुदृष्टि से देखनेवाले महाशय! ज्ञानवान् का 'स्व' (अपना आप) इतना विस्तार पकड़ लेता है, इतना देश घेर लेता है, ऐसा विश्वाधिकार करता है कि प्रशंसा में वाणी की गति मंद और मन की कल्पना अस्पंद हो जाती है।

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह । (तै० उ०, २-४-१)

जहाँ से वाणी लौट आती है और जो मन के द्वारा भी अप्राप्य है।

जिस प्रकार आपको एक शरीर विशेष के संबंध में यह ख़याल है कि 'यह मेरा है,' ठीक उसी वेग के साथ ज्ञानवान् समस्त सृष्टि को 'मेरा' कह सकता है।

मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव । (गी० ७-७)

अर्थ—मुझमें यह सब जगत् ऐसे ओत-प्रोत है, जैसे माला के दाने सूत्र में।

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥ (ई० उ०, ६)

अर्थ—जो सब पदार्थों को अपने आत्मा में और अपने आपको समस्त पदार्थों में देखता है, वह फिर किसी से घृणा नहीं करता, अर्थात् उसको सब अपना आप ही दिखाई देते हैं, इसलिये उससे सबके साथ ऐसी ही प्रीति उमड़ती है, जैसी कि उसको अपने आपके साथ।

एक अवस्था ज्ञानवान् पर यह आती है कि—

पत्ती को फूल की लगा सदमा नसीम का।
शबनम का क़तरा आँख से उसकी टपक पड़ा॥

गुलाब की पंखड़ी पर तो कोमल पवन से ज़रा सी चोट आई, किंतु हाय, यह अभेदता! कि ज्ञानवान् के नेत्र सजल हो गये।

ख़ूँ रगे-मजनूँ से निकला फ़स्द लैला की जो ली।
इश्क़ में तासीर है पर जज़्बे-कामिल चाहिये॥

One with Nature and the God of Nature.

अर्थ—वह (ज्ञानवान्) प्रकृति और प्रकृति के स्वामी से अभेद हुआ होता है, या प्रकृति से अभेद और प्रकृति का स्वामी हुआ होता है।

इस ज्ञानवान् के अनुभव को गेटे (Goethe) ने यों लिखा है—

I tell you, what's man's supreme vocation
Before me was no world, 'tis my creation.
'Twas I who raised the sun from out the sea,
The moon began her changeful course with me.

अर्थ—मनुष्य का जो सबसे उत्तम व्यवहार है, उसको खुल्लम खुल्ला मैं तुम्हें बतलाता हूँ। वह यह है कि संसार मुझसे पहले न था, और यह मेरा ही बनाया हुआ है, और यह मैं था, जिसने सूर्य को सिंधु से उदय किया और जिसके कारण चंद्रमा ने अपना परिवर्त्तनशील भ्रमण मेरे साथ आरंभ किया।

हाय स्वार्थपरता !

बतलाऊँ अपने कुफ़ की गर रमज़ शैख़ को।
बेइख़्तियार कह उठे इसलाम कुछ नहीं॥

यहीं पर वेदांत कब अलम् करता है, प्यारे डॉक्टर क्रोज़ियर (Dr. Crozier)! वेदांत की विचित्र अनीति व अन्याय और देखो—

इब्तिदाए-इश्क़ है, रोता है क्या ?
आगे-आगे देखिए होता है क्या !

वह रासायनिक दृष्टि ज्ञानवान् की जहाँ पड़ी, ईश्वर ही ईश्वर बना दिया, कोई नीचता रही न उच्चता, बुद्धिभ्रंश (दीवानगी) रही न बुद्धिचातुरी (होशमन्दी)।

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥

(गी० ५—१८)

अर्थ—विद्वान् और विनयशील ब्राह्मण में, गाय, हाथी, कुत्ते और चांडाल में पंडित (ज्ञानवान्) पुरुष समदर्शी होते हैं।

उस प्रकाश की आँधी के आगे घर-बार, प्यादा और सवार

अर्थ—मैं ही स्वयं कहता हूँ और मैं ही सुनता हूँ, मेरे सिवाय दोनों लोकों में कोई नहीं है।

मैं तो नितांत एकांत में हूँ, अन्य कोई है ही नहीं, प्रकट करना-कराना क्या अर्थ रखता है।

तन्हास्तम, तन्हास्तम, दर बहरो बर यक्तास्तम।
जुज़ मन न बाशद हेच शै, मन ज़ास्तम मन मास्तम॥

अर्थ—मैं अकेला हूँ, मैं अकेला हूँ और जल-थल में अद्वितीय हूँ; मेरे सिवाय कोई वस्तु अस्तित्व नहीं रखती, मैं स्वयं भूमि हूँ, और मैं ही स्वयं जल हूँ।

धन्य है विरक्तता! जिस पर सहस्रों विश्वास बलिदान। धन्य है मस्ती! जिस पर लाख न्यूटन और कैल्विन न्योछावर!

दर्दे-मारा बे शुमा, दिरमाँ मुबादा बे शुमा।
मर्ग बादा बे शुमा, जाने-मुबादा बे शुमा॥
बिश्नो अज़ ईमाँ कि मी गोयद ब आवाज़े-बलंद।
बा दो ज़ुल्फ़े-काफ़िरत क ईमाँ मुबादा बे शुमा॥

अर्थ—ऐ प्यारे! तेरे विना हमको पीड़ा हो, पर तेरे सिवाय इस पीड़ा की चिकित्सा न हो। विना तेरे हमारी मृत्यु हो, पर विना तेरे हमारे में जान मत हो। निश्चय से सुन, जो कुछ कवि उच्च स्वर से कहता है (अथवा जो कुछ कवि निश्चय के साथ उच्च स्वर से कहता है, उसे तू सुन) कि तेरी दो काफ़िर ज़ुल्फ़ों के साथ मेरा यह विश्वास विना तेरे मत हो।

ऐ सांसारिक दृष्टि! ऐ हाड़-चाम देखनेवाली दृष्टि!

मर क्यों न जाय तू कटारी पेट खाय के?

सद शुक्र गोयम हर ज़माँ, हम चंग रा हम जाम रा।
कई हर दो बुरदन्द अज़ मियाँ, हम नंग रा हम नाम रा॥ १॥
दिल तंगम अज़ फ़रज़ानगी दारम सरे - दीवानगी।
कज़ खुद दिहम बेगानगी, हम ख़ास रा हम आम रा॥ २॥

चूँ मुर्ग परद अज़ क़फ़स, दीगर नयंदेशद ज़ि कस।
बीनद मुबारक पेशो पस, हम दाना रा हम दाम रा ॥ ३ ॥
ऐ जाँ! तो गर हिम्मत कुनी, दिल अज़ दो आलम बरकनी।
यक बारा अज़ हम बिशकनी, हम पुख़्ता रा हम ख़ाम रा ॥ ४ ॥
सिजदा गरदानम किरा ऐ ज़ाहिदा।
ख़ुद ख़ुदायम, ख़ुद ख़ुदायम, ख़ुद ख़ुदा ॥ ५ ॥

अर्थ—(१) मैं चंग और प्याले को धन्यवाद देता हूँ, क्योंकि इन दोनों ने लाज-शरम को मेरे हृदय से बिलकुल उठा दिया।

(२) मेरा चित्त इस बुद्धि से व्याकुल हो गया है, क्योंकि मेरे मस्तिष्क में उन्मत्तता और पागलपन समाया हुआ है, तथा विशेष और सामान्य को मैं अपने से अन्य समझता है।

(३) जब पत्ती जाल से उड़ जाता है, तो फिर वह किसी से नहीं डरता है, तब वह जाल और दाने को आगे-पीछे मुबारक समझता है।

(४) ऐ जान! यदि तू साहस करे, तो मेरे चित्त को दोनों लोक से उठा दे और एक बार कच्चे-पक्के को बिलकुल तोड़ डाले, अर्थात् अच्छी-बुरी इच्छाओं वा फल को नाश कर दे।

(५) जब मैं स्वयं ही ख़ुदा हूँ, मैं ही ख़ुदा हूँ, तो ऐ कर्मकांडी (उपासक)! बता, मैं सिजदा (नमस्कार) किसके आगे करूँ।

——:०:——

जीवित कौन है ?*

(रिसाला अलिफ नं० २)
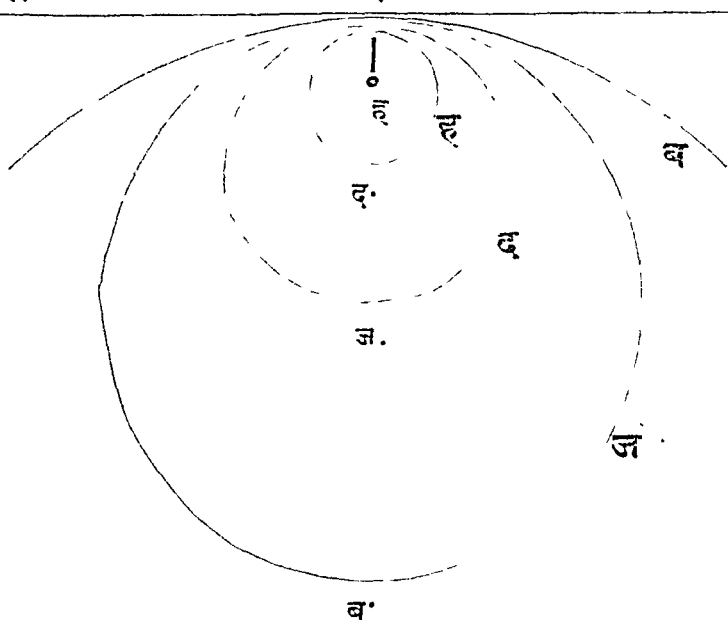
आपत्तिकारक—ये भूलभुलैयाँ क्यों बना रक्खी हैं ? ये एच-पेचवाले घेरे किसको फँसाने के लिये हैं ? विचित्र चक्करों में डाला चाहते हो ?

* यद्यपि इस लेख का विषय वही है, जिस पर स्वामी राम का अमरीका में आत्मविकास (Expansion of Self) के नाम से व्याख्यान हुआ था, और जो राम के लेखोपदेश के प्रथम भाग में दूसरे नम्बर पर प्रकाशित भी हो चुका है, तथापि लेखनी और वक्तृता की शैली में बहुत भेद है, जिससे लेखनी का भी शब्दशः अनुवाद दे देना पाठकों के लिये आवश्यक समझा गया।

राम—प्यारे! चक्करों से छुटकारा दिलाने को ये वृत्त प्रकट किये गये हैं—तुम्हारी दशा दिखाने को ये दर्पण उपस्थित किये गये हैं।

कबूतर को जब बिल्ली पकड़ने आती है, तो वह बेचारा भोला कबूतर अपनी आँखें बंद कर लिया करता है। मानो ऐसा करने से बिल्ली की दृष्टि से ओझल हो गया है। पर ओझल कहाँ? कबूतर को यद्यपि बिल्ली दिखाई न दे, बिल्ली की आँखें बराबर खुली हैं, चट शिकार कर लेगी। वैसे ही, भई, अपनी शोचनीय दशा को तुम यदि बिसार दोगे, तो क्या विपत्ति रूप सर्प के चक्कर से छुटकारा हो जायगा? विरुद्ध इसके सुना होगा कि जंगल में यदि सिंह, चीता आदि से सामना पड़ जाय, तो वह व्यक्ति बच निकलता है, जो सिंह आदि से नेत्र-युद्ध (टकटकी लगाकर घूरने) में न हारे। इसी तरह संसार में बहुधा अपनी त्रुटियों और अपराधों पर विचार-पूर्वक दृष्टि टिकाने (retrospection) में झट उनसे छुटकारे की विधि निकल आती है। पाठक! आज अपनी-अपनी दशा पर विचार करना होगा।

आपत्तिकारक—अजी! इस पेचीदा निबंध को पढ़कर कौन मस्तिष्क चक्कर में डाले? आप ही इसे लिखो और आप ही पढ़ो; दूसरे को इससे क्या सरोकार? इस तरह आपका अद्वैत ख़ूब सिद्ध होगा (ठीक उतरेगा)।

राम—निस्संदेह "रहनुमा अज़ पेचो तावस्त ईं रहे-पेचीदा रा" (इस पेचीले मार्ग का मार्गदर्शक ही स्वयं पेच और ताब में है)। पर भई! आप ही लिखने और आप ही पढ़ने की तो एक ही कही—

खुद कूज़ा ओ खुद कूज़ागरो खुद गिले-कूज़ा।

अर्थ—आप ही बरतन, आप ही बरतन बनानेवाला और आप ही बरतन की मिट्टी।

शागिर्द हैं तो हम हैं, उस्ताद हैं तो हम हैं।

हमारे स्वरूप की एकता में कभी अंतर नहीं आ सकता। स्पष्टतः यद्यपि सहस्रों और लाखों मनुष्य इस निबन्ध के पढ़नेवाले हों, फिर भी एक राम ही सबमें रहनेवाला है, सबसे समवाय-संबंध रखनेवाला है, स्वयं लिखता है, स्वयं पढ़ता है, और स्वयं निबंध (मजमून) बनता है, और पढ़कर स्वयं ही आनंदित होता है।

हा ३ वु हा ३ वु हा ३ वु। अहमन्नमहमन्नमहमन्नम्। अहमन्नादो ३ ऽहमन्नादो ३ ऽहमन्नादः। अहंश्लोककृदहंश्लोककृदहंश्लोककृत्।

(तैत्तिरीय उप०, भृ० व०, अ० १०, मं० ५, ६.)

अर्थ— आहा ! आहा ! आहा ! मैं अन्न (ज्ञेय-object) हूँ, मैं अन्न हूँ, मैं अन्न हूँ। मैं अन्न खानेवाला (ज्ञाता-subject) हूँ, मैं खानेवाला हूँ, मैं खानेवाला हूँ। मैं कवि (अन्न और भोक्ता को मिलानेवाला) हूँ, मैं कवि हूँ, मैं कवि हूँ। अर्थात् ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय मैं ही हूँ।

अलिफ के अर्थ हैं 'हजार', तिस पर भी अलिफ (ا) एक ही है। सागर में लाखों तरंगें होने दो, सागर की एकता में अंतर नहीं आ सकता। मेरे अपना आप आपत्तिकारक महाशय! यदि इन गोल चक्करों से बचने के लिये इस निबंध से उपेक्षा करना चाहते हो, तो बताओ तो सही कि पहले इस संसार-चक्र के चक्करों से रक्षा का कोई उपाय निश्चित कर चुके हो? पहले तो आपका नेत्र ही गोल है, चक्कर है, फिर आकाश की ओर दृष्टि डालो, तो वह गोल चक्कर है। सूर्य, चद्रमा और तारे सब गोल (चक्ररूप) हैं। सीधी रेखा (straight line) जिसे कहते हैं, वह आधुनिक काल के गणितज्ञों के अनुसंधान की दृष्टि से एक अति विस्तृत वृत्त है, बहुत ही चौड़ा चक्कर है, जिसका केंद्र अनंत दूरी पर है। सेंट आगस्टन के कथनानुसार

God is like a circle whose centre is everywhere but circumference nowhere.

अर्थ—ईश्वर एक वृत्त है, जिसका केंद्र तो है सर्वत्र, किंतु वृत्तरेखा कहीं नहीं।

ऋतु-वायु (monsoon) और व्यापारिक वायु (trade wind) विषुवत्‌रेखा (equator) की ओर चलती हैं, हल्की वनकर ऊपर उड़कर ऐंटी-मानसून (anti-monsoon) और ऐंटी-ट्रेड-विंड (anti-trade wind) नामवाली होकर लौट जाती हैं, फिर सर्दी से नीचे उतर विषुवत्‌रेखा की ओर सुख करती हैं। यों हर समय चक्कर में लगी हैं, चक्कर प्रकट करती फिरती हैं। समुद्र के ज्वार-भाटा की गति का यही हाल है, जैसा कि गल्फ़ स्ट्रीम (Gulf Stream) और ऐंटी-गल्फ़स्ट्रीम (anti Gulf Stream) के नाम ही स्पष्ट करते हैं। नदियाँ वेचारी रहट के टिंडों की तरह चक्कर में लगी हैं, पहाड़ों से उतरती हैं, वड़े परिश्रम से भूतल-वृत्तखंड (क़ौसे-नज़ूली) पार करके समुद्र तक पहुँचती हैं, वहाँ से वाष्प के स्वरूप में ऊपर आकाशी वृत्तखंड (क़ौसे-सऊदी) पार करके पहाड़ों तक लौट जाती और पूरा चक्कर बनाती हैं। घड़ी की सुइयाँ XII (वारह) से चलती हैं, और I (एक) II (दो) आदि सब निवेश स्थान पार करके फिर XII (वारह) पर आ जाती हैं। उनके भाग्य में दिन-रात इसी चक्कर की क़ैद रक्खी है। इसी साइक्लिक ऑर्डर (cyclic order) काल-चक्र में पड़ी चक्कर खाती हैं।

इसी प्रकार 'सवेरा, दोपहर, शाम और रात' काल-चक्र के पेच में लुढ़क रहे हैं। वसंत, ग्रीष्म, पतझड़ और शीत उसी टाइम के फ़्लाई ह्वील (flywheel) या चक्र पर धावमान हैं। सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग अस्तित्व (existence) के सर्कस (circus, क्रीड़ा-चक्र) में उचकते-फाँदते (घुड़दौड़

मचाते) संसाररूपी धूलि उड़ाते चक्कर लगा रहे हैं। भूमि स्वयं परिक्रमा में है। चंद्रमा इस घूमने के कारण पीला हो रहा है। सब नक्षत्र किसान की घुमानी की तरह घुमाए जा रहे हैं। ध्रुव तारा प्रकृति माता के चक्र (Spinning wheel) में तकले का सिरा बन अपने आपमें चक्कर खा रहा है। समुद्र इस गति के कारण कोलाहल मचा रहा है। वायु इस चक्र में ठंडी साँसें खींच रहा है। विपत्तिग्रस्तों के घरों में जो द्यौ (आकाश) उपद्रवी कहलाता है, वह द्यौ इस काल-चक्र की आँखें देखकर तारारूपी शोक-भरी दृष्टि चारों ओर डाल रहा है।

हवा नहीं है, ये नेचर की सर्द आहें हैं ।
सितारे कब हैं ? ये हसरत-भरी निगाहें हैं ॥

निदान, कहाँ तक इस चक्कर के अत्याचार लिखें ? जीवन स्वयं भी तो अस्तित्व-सागर में एक भँवर (चक्कर) है। कुछ-काल जीवन-धारा (अधिष्ठान, Noumenon) के तल पर जीवन का भँवर प्रकट हो आता है, फिर मिट जाता है।

यदि जन्म-मरण की चक्की से मुक्ति चाहते हो, तो इस वृत्तवाले निबंध को ध्यान और धैर्य से पढ़ो। धीरज के साथ चुपके-चुपके हमसे बातें करते हुए पहले कुछ टेढ़ी खीर-वाले पृष्ठों की यात्रा पार कर जाओ, फिर सीधी पगडंडी दृग्गोचर होगी, सत्य मार्ग दिखाई पड़ेगा। देखना ! कहीं इन छोटे-छोटे घेरों के फंदे में ही फँसे न रह जाना।

वृत्त के घेरे (phenomena, नाम-रूप) पर जब तक दौड़ धूप (परिभ्रमण) रहेगा, विरोध और झगड़े-बखेड़े कदापि शांति (peace) का रूप नहीं पकड़ेंगे। यदि चित्त के विक्षेप (distractions, खेंचातानी) और चिंताओं से छुटकारा पाना स्वीकार है, तो केंद्र अर्थात् (noumenon, निजस्वरूप) की ओर मुख करो, उपनिषद् विद्या पढ़ो, जहाँ सब

भेद मिट जाते हैं, भिन्नता भाग जाती है। बाहरी (अपरा) विद्याएँ लालटैन (Lantern) के प्रकाश के सदृश हैं। यह प्रकाश आस-पास की वस्तुओं को किसी अंश में जगमगा अवश्य देता है, किंतु उसका वृत्त सदैव अँधेरे के वृहद् वृत्त से घिरा होता है। प्रकाश जितना बढ़ेगा, अंधकार का वृत्त भी उतना ही वृद्धि कर जायगा। यूनानी लोग पानी को तत्त्व (element) स्वीकार करते थे। आजकल के विज्ञान ने पानी को कई तत्त्वों से युक्त बताकर उसकी जगह ऑक्सीजन और हाइड्रोजन को तत्त्व सिद्ध कर दिखाया। जहाँ पहले एक (पानी) अज्ञात (विज्ञातव्य) था, अब दो (ऑक्सीजन और हाइड्रोजन) अज्ञात निकल पड़े। विद्या अवश्य बढ़ी, किंतु साथ ही उसके अज्ञान का वृत्त भी विस्तीर्ण हुआ। बाहरी विद्याओं से इधर न्यूटन के ज्ञात तत्त्वों की प्राप्ति होगी, उधर अविज्ञात वस्तुओं का सागर ऐसा तरंगाकुल हो जायगा कि उन ज्ञात तत्त्वों को केवल किनारे के कंकड़-सीप आदि से तुलना करनी पड़ेगी।

Empirical Science (रूप-गुण-विज्ञान) का दुःशासन प्रपंच रूपी द्रौपदी के आवरण (चीर) उतारा चाहता है, एक तह उतरने नहीं पाती कि दूसरी उपस्थित हो जाती है, वह उतरते ही तीसरी उपस्थित हो जाती है—इत्यादि; और दुःशासन बेचारा घबराकर कह उठता है—"नारी में सारी है कि सारी में नारी ?"

> Veil after veil will be left and there
> will be veil upon veil behind.

सर आइज़क न्यूटन ने एक बेर अपने घर में पंखा लगाया। एक अद्भुत लक्ष्य से तुलादंड (Lever) और चक्र आदि को तरतीब देकर, पंखाक़ुली पालतू चूहों को नियत किया। वह यों कि दाँतोंवाले एक पहिए (toothed wheel) के सिरे के

निकट थोड़े से गेहूँ इस विधि से रक्खे कि पहिए के चलने-फिरने से गेहूँ न हिलने पावें। चूहा गेहूँ को लेने की कामना से जब एक दाँत से उछल कर दूसरे दाँत की ओर जाता, तो पहिया फिर जाता, पंखा हिल जाता, किंतु ग़रीब मज़दूर (चूहा) फिर अपनी पुरानी जगह पर नीचे गिर जाता और गेहूँ से उतने ही अंतर पर रहता जितने पर पहले था। वह भोंदू (dupe) फिर उछलता, पंखा हिला देता, किंतु आप कुछ न पाता, इत्यादि। हाँ, यह विचार उसे प्रतिक्षण रहता कि "लो, यह गेहूँ मिला, वह मिला, अब मिला कि मिला, एक बेर और उछलने की देर है, तत्काल पा लूँगा।" इसी प्रकार संसार की चाह अथवा सांसारिक विद्याओं की चाह भोले चूहे के समान कभी अपने मनोरथ को नहीं पा सकती, कभी शांत नहीं हो सकती, वास्तविक तत्त्व (Truth) को कभी छू नहीं सकती। यद्यपि इतना अवश्य है कि इसकी कृपा से ठाठी ईश्वर भगवान् का पंखा हिलता जाता है।

सूर्य के प्रकाश के स्पेक्ट्रम (Spectrum, सप्तरंजन व रश्मिवर्ण) में काली लकीरें (dark lines) हुआ करती हैं, किंतु सूर्य-ग्रहण के अवसर पर स्पेक्ट्रम को देखें, तो ये लकीरें श्वेत दृष्टिगोचर होंगी। ठीक उसी तरह प्यारे पाठक! ये रेलें, तोपें और बैलूनें जो अविद्या रूपी ग्रहण के समय सफ़ेद तारे (प्रकाशमान) मालूम देती हैं, ग्रहण हटने पर देखी जायँ, तो काली धारियाँ बन जायँगी।

बक़ूद-मयफ़रोशानश ब जामे बर न मे गीरंद।
ज़हे सज्जादहे-तक़वा कि यक साग़र न मे अरज़द॥
कुलाहे-ताजे-सुलतानी कि बीमे-जाँ दरो दरजस्त।
कुलाहे-दिलकशस्त अम्मा ब दर्दे-सर न मे अरज़द॥

अर्थ—यह अद्भुत संयम (तप) का उपासनासन है कि

(प्रेम के) एक प्याला के बदले भी नहीं बिकता, क्योंकि मद्य-विक्रेताओं (ज्ञानियों या तत्त्वविदों) की गली में उस (सांसारिक व्रत, नियम वा संयम) को एक प्याले के बदले भी नहीं लेते हैं, अर्थात् सत्पुरुषों के समक्ष बाह्य संयम या सांसारिक उन्नति कुछ सम्मान नहीं रखती। बादशाही ताज की टोपी, जिसमें प्राण का भय है, यद्यपि चित्ताकर्षक है, किंतु सिर-पीड़ा के बदले भी नहीं बिक सकती, अर्थात् इस बहुमूल्य ताज से सिर-पीड़ा (बेचैनी) भी दूर नहीं हो सकती।

What shall it profit a man if he shall gain
the whole world but lose his own soul!

अर्थ—यदि आत्मा को बेचकर किसी ने समस्त संसार को प्राप्त कर लिया, तो क्या लाभ!

इसमें कुछ संशय नहीं कि सांसारिक विद्याओं के ज्ञाता सांसारिक ख्याति के आकाश पर तारा होकर चमकने के योग्य हैं, और अँधेरी रात में कई भूले-भटकों को पथ-भ्रष्ट होने से बचाते हैं, और अपने प्रकाश से यात्रियों को कीचड़ में फँस जाने या गढ़े में गिर जाने से हटाते हैं। यह सब कुछ तो ठीक, किंतु ज्ञान का सूर्य उदय होने पर तारे-वारे सब लुप्त हो जाते हैं, उनकी कुछ भी शक्ति नहीं रहती।

दुनिया व आक़बत बना, वाह वा जो जहल ने किया।
तारों सा मिहरे-राम ने दम में उड़ा दिया कि यों॥

ऐ भारतवासियो! अँधेरे कमरों में घुसकर अँधेरी रात की उपयुक्त आतिशबाज़ियों और कृत्रिम झाड़-फ़ानूसों के द्वारा सजावट-बनावट करना तो तुम विदेशियों से सीख ही रहे हो, किंतु हाय! अपने देश के दिवाकर (ब्रह्मविद्या) को मुँह दिखाने से भी परहेज़ किया जाता है।

वृत्त—आओ, अब तनिक इन वृत्तों के तत्त्व पर विचार

करें। इस अवसर पर उचित मालूम होता है कि वे पारिभाषिक शब्द जो बेर-बेर इस प्रबंध (मज़मून) में आवेंगे, उनकी भी कुछ व्याख्या की जाय।

परिभाषा—वृत्त (circle-दायरा) उस गोलाकार को कहते हैं,
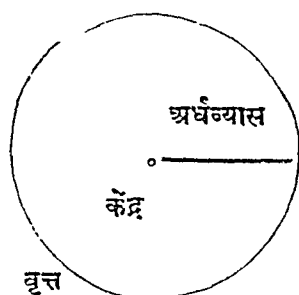
जो एक रेखा (गोल लकीर), जिसको परिधि (circumfercnce) कहते हैं, से घिरा हुआ हो, और जिसके बीच में एक ऐसा विंदु (केंद्र, centre) हो, जिससे चाहे कितनी ही रेखायें (लकीरें) परिधि तक खींची जाएँ, सब परस्पर समान हों। इन परस्पर समान लकीरों में प्रत्येक को अर्धव्यास (त्रिज्या, radius) कहते हैं।

वृत्त यदि अत्यंत छोटा हो, अर्थात् उसका अर्धव्यास यदि अत्यन्त दर्जे तक सूक्ष्म हो, तो इस दशा में वृत्त केवल एक बड़ा विंदु (point-नुक़्ता) सा बन जायगा, जैसे इस निबन्ध के पहले पृष्ठ पर की शकल में सबसे छोटे वृत्त का केंद्र 'ह' य के बहुत निकट है; अर्थात् अर्धव्यास 'ह य' बहुत छोटा है, इसीलिये ह वृत्त शून्य वरन् विंदु सा बना हुआ है। फिर ज्यों-ज्यों य से केंद्र की दूरी बढ़ती जायगी, अर्धव्यास लंबा और वृत्त चौड़ा होता जायगा। पहले पृष्ठ की शकल में दूसरे वृत्त का केंद्र 'द' अधिक अंतर पर गया, तो वह वृत्त द भी बढ़ा। इस वृत्त में ह जैसे कई वृत्त आ जाते हैं। तीसरे वृत्त का केंद्र 'ज' और भी दूर गया, तो साथ ही उस वृत्त ज का राज्य भी फैल गया, यहाँ तक कि इसमें द जैसे कई वृत्त समा सकते हैं।

इसी धारणानुसार ब वृत्त (जिसके केंद्र 'ब' ने पग और भी

आगे बढ़ाया) इस उन्नति को पहुँचा कि उसमें ज और क और ह जैसे कई वृत्तों के खप जाने की गुंजाइश हो गई।

परिणाम—परकार का केंद्र-बिंदु ज्यों-ज्यों दूर रक्खा जायगा, वृत्त का विस्तार बढ़ता जायगा।

यहाँ पर एक और बात पर भी दृष्टिपात करना उचित होगा। इन वृत्तों पर एक विचार की दृष्टि डालियेगा। 'य' स्थान सब वृत्तों के लिये साझा है; और अ य आ सब वृत्तों की स्पर्श-रेखा (tangent) है। ह वृत्त सबसे छोटा है। क वृत्त उससे बड़ा। इसीलिये छोटा वृत्त ह बड़े वृत्त क के भीतर विद्यमान है।

या यों कहो कि बिंदु य के निकट वृत्त क की परिधि सीधी रेखा 'अ य' के और वृत्त ह के बीच में विद्यमान है।

इसी बात को अन्य शब्दों में यों कह सकते हैं कि वृत्त क (जो ह वृत्त से बड़ा है) सीधी रेखा 'अ य' की ओर वृत्त ह की अपेक्षा अधिक झुके हुए है।

या वृत्त ह की अपेक्षा बड़े वृत्त क का लगाव सीधी लकीर 'अ य' की ओर अधिक है।

और छोटे वृत्त की अपेक्षा बड़े वृत्त का सीधी रेखा से टेढ़ापन (वक्रता) कम है।

अर्थात् (दूसरे शब्दों में) वृत्त क जो बड़ा है, उसकी वक्रता (खम, टेढ़ापन, curvature) छोटे वृत्त ह की वक्रता की अपेक्षा कम है, और 'य' बिंदु के निकट बड़ा वृत्त छोटे की अपेक्षा सीधी रेखा से अधिक अनुरूप है। इसी प्रकार ज वृत्त की वक्रता (curvature) क वृत्त की वक्रता से भी कम है, और ज वृत्त क वृत्त से भी अधिक सीधी रेखा की सदृशता रखता है। इसी प्रकार सीधी रेखा की सदृशता में वृत्त ब वृत्त ज को भी मात कर गया है।

परिणाम—स्थान 'य' पर एक गुणा आलिंगन के लिये अपने बाहुओं को दाएँ-बाएँ फैला, प्रेम का वृत्त ज्यों-ज्यों बढ़ेगा, त्यों-

त्यों उसकी परिधि सीधी रेखा से अधिक अनुरूप होती जायगी।

इन दोनों परिणामों को मिलाने से यह उपलब्ध होता है कि ज्यों-ज्यों केन्द्र आगे को उन्नति करेगा, वृत्त का विस्तार अधिक होता जायगा और सीधी लकीर (सीधा मार्ग वा सन्मार्ग) से उसकी तदाकारता (एकता) बढ़ती जायगी।

अंततः केंद्र जब अनंत (infinite) दूरी पर पहुँचा, तो वृत्त के विस्तार की नाप-जोंख करना मानवीय शक्ति से परे हुआ। और 'य' के निकटस्थ परिधि के हाल-चाल की सुध ली, तो काया पल्टी हुई पाई। सीधा अलिफ़ (ا) का स्वरूप दृग्गोचर हुआ, कुबड़ी पीठ अर्थात् वक्रता को लुप्त पाया, और वृत्त ने लम्बा क़द बनकर ऊँचे सरो समान प्रिया का सौंदर्य दिखाया, अर्थात् केंद्र के अत्यंत दूरी पर चले जाने से वृत्त सीधी रेखा बना।

उदाहरण—नारंगी गोल होती है। उसके केंद्र में से होता हुआ एक खंड काट लिया जाय, तो सदैव गोल वृत्त होगा। खरबूज़े को भी (केंद्र से समधरातल में) चीरा जाय, तो वृत्त ही लब्ध होगा। चूँकि खरबूज़ा साधारणतया नारंगी से बड़ा होता है, अतः यह वृत्त नारंगीवाले वृत्त से बड़ा होगा। एक बड़े हिन्दवाने (तरबूज़) को लो। उसको काटने का कष्ट तो क्या स्वीकार करोगे, उसके ऊपर चाक़ू को इस प्रकार टिकाओ कि चाक़ू की नोक सदैव हिन्दवाने के केन्द्र की ओर रहे, और फिर उस नोक से हिन्दवाने पर लकीर खींचते जाओ। यह लकीर भी एक वृत्त की परिधि होगी, किंतु खरबूज़ावाले वृत्त से यह वृत्त बड़ा होगा, क्योंकि हिंदवाना स्वयं खरबूज़े से बड़ा होता है।

अब पृथिवी भी तो नारंगी, खरबूज़ा या तरबूज़ की तरह गोल ही मानी गई है। अंतर है तो इतना कि पृथिवी इनकी अपेक्षा बहुत ही बड़ी है, इसलिये किसी ऊपर के ऊर्ध्वाधार धरातल (vertical plane) में चलते-चलते तरबूज़ की तरह

धरती पर भी एक लंबी रेखा खींचते जायँ, तो गणितशास्त्र के मत से यह रेखा सीधी रेखा न होना चाहिए, वरन् एक वृत्त का खंड या धनुष होना चाहिए। और जिस प्रकार हिंदवाने आदि पर खिंची हुई कोई भी रेखा सीधी रेखा नहीं होती, गोल ही होती है; इसी प्रकार भूमि पर चाहे किसी भी प्रकार से रेखा खींची जाय, बिलकुल सीधी कभी नहीं होना चाहिए, गोल ही होगी।

आपत्तिकारक—क्या अच्छी कही, ऐसा क्यों न होगा? यह तो बच्चा भी बता देगा कि भूमि पर सीधी लकीरें खिंच सकती हैं, बताने का तो क्या चर्चा है, अभी खींचकर दिखा देगा, और सब लोगों का अनुभव इस बात का साक्षी है कि सड़कें और बाजार सीधे हुआ करते हैं; यह विचित्र बुद्धि का अजीर्ण है, जो आप आदेश करते हैं कि "बाजार धन्वाकार हैं, सबकी सब सड़कें वृत्तों के खंड हैं"। बचपन में सुना करते थे यह कहावत कि "अरबा ज्यों का त्यों कुनबा डूबा क्यों?" *

* किसी को जाड़े की ऋतु में परिवार-सहित नदी पार उतरना था। पहले तो उसने स्वयं अकेले ही लाठी हाथ में ली और नदी की गहराई को स्थान-स्थान मे जाकर मापा। फिर बहुत समय खर्च करके त्रैराशिक (Rule of three, अरबा) आदि गणित के नियमों की सहायता से गहराई का मध्यमान (औसत) ज्ञात किया। तदनंतर अपनी उँचाई को और अपने स्त्री-पुत्रों की उँचाई को मापा। और समस्त कुटुंब के लिये उँचाई के मध्यमान (औसत) को अनुमानतः निकाला। यह उँचाई का मध्यमान नदी की गहराई के मध्यमान से अधिक पाया गया, और इसी उँचाई की अधिकता के भरोसे बाल-बच्चों को लेकर बेधड़क नदी में उतर पड़ा। अब यद्यपि गहराई का मध्यमान तो उन सबके शरीरों की लंबाई के मध्यमान से कम था, किंतु नदी के किन्हीं-किन्हीं स्थानों पर पानी बहुत गहरा था; वहाँ तक पहुँचे, तो बच्चे बेचारे लगे डूबने।

उस समय हमारे सनकी गणितशास्त्रज्ञ महाशय को बच्चों के डूबने-मरने का तो कुछ शोक हुआ या नहीं, नहीं कह सकते, पर हाँ, अपने हिसाब के उत्तर पर उसे अत्यंत विस्मय हुआ कि अहो आश्चर्य "अरबा ज्यों का त्यों, कुनबा डूबा क्यों?"

यहाँ पर वही कहावत ठीक फबती देख ली। पढ़-पढ़कर भी तो मस्तिष्क कैसे प्रकीर्ण (परिभ्रष्ट) हो जाते हैं! ठीक है, इसी मस्तिष्क-विकृति (परेशानिये-दिमाग़) के कारण तो ये लोग अच्छे-भले प्रत्यक्ष दिखाई देते संसार को मिथ्या निश्चित कर दिया करते हैं, और सब ब्रह्म ही ब्रह्म बताया करते हैं, और ऐसे निरर्थक वाक्य बोला करते हैं।

बसकि दर चश्मो दिलम हर लहज़ा ऐ यारम तुई।
हरचे आयद दर नज़र अज़ दूर पिंदारम तुई॥

अर्थ—मेरे नेत्रों और हृदय में हर समय ऐ यार! तू ऐसा बसा हुआ है कि जो कुछ मुझे दूर से दिखाई देता है, मैं ख़याल करता हूँ कि तू ही है।

बेगाना गर नज़र पड़े तू आशना को देख।
बंदा गर आए सामने, तो भी ख़ुदा को देख॥

राम—प्यारे! पहले हमारी पूरी बात तो सुन ली होती, फिर आप रोष भी प्रकट कर लेते। तेज़ी (तीव्रता) तनिक न करो, इस तीव्रता के कारण बुद्धि के पैर अवश्य फिसलेंगे। हम जानते हैं, आज इन साधारण गणित के प्रश्नों से आँखें घिसाते-घिसाते आप थक से गए हैं, और इसीलिये भवें चढ़ाए हुए हैं, किंतु आपको यह एक बेर स्मरण दिलाया जाता है कि आप उस देश के रहनेवाले हैं, जहाँ से गणित का सूर्य उदय हुआ, आप उन ऋषियों की संतान हैं, जिनके लिये तत्त्व-विचार, तत्त्व-चिन्तन (high thinking) ही भोजन-पान (meat and drink) था। और पूर्ण आशा की जाती है कि भविष्य में अत्यंत सूक्ष्म और जटिल प्रश्नों का सामना करते भी आप घबराएँगे नहीं। लो सुनो, भूमि पर जो रेखाएँ और लकीरें खींची जाती हैं, वस्तुतः वे धनुष और वृत्त के खंड ही होते हैं; मगर चूँकि

समस्त पृथिवी एक अति बृहत् गोला है, इसलिये भूमि पर की ये रेखाएँ बहुत बड़े वृत्त के खंड होती हैं, और इसी कारण ये रेखाएँ सीधी लकीरों के सदृश दिखाई देती हैं।

पृथिवी-तल पर मनुष्य का चलना-फिरना ऐसा है, जैसे मिट्टी के किसी भांडे (गोल बरतन अर्थात् ठिलिया या घड़ा) के तल पर चींटी का रेंगना। भूमि के जिन वृत्तों के खंडों पर मनुष्य चलता-फिरता है, उन वृत्तों का केंद्र लगभग चार हज़ार मील की दूरी पर होता है। फिर वह वृत्त-खंड सीधी रेखाओं के रूप में क्यों न दृग्गोचर हो ? यह बात इस सिद्धांत का व्यावहारिक प्रमाण है कि जिस वृत्त का केंद्र अत्यंत दूरी पर जायगा, वह सीधी रेखा बन जायगा।

ऐ प्यारे ! वृत्त का सीधी रेखा बन जाना जिस प्रकार गणितज्ञ लोग निश्चित करा देते हैं, उसी तरह तनिक धैर्य और शांति से काम लिया, तो आपको बेगाना (अजनबी, पराया) का आशना (मित्र, सखा, अपना) बनना और बंदे (जीव) का ख़ुदा (ईश्वर) बन जाना भी अवश्य निश्चित हो जायगा।

जिस प्रकार संसार के नाशवान् बखेड़ों में हिम्मत (साहस) नहीं हारते, इधर (भीतर की ओर) भी यदि कटिबद्ध होकर ध्यान दिया, तो अक्षय जीवन मिलेगा, नित्यानंद पाओगे।

क़तरा बिगरीस्त कि अज़ बहर जुदायेम हमा।
बहर बर क़तरा बख़ंदीद कि मायेम हमा॥
बहक़ीक़त दिगरे नेस्त ख़ुदायेम हमा।
लैक अज़ गरदिशे-यक नुक़्ता जुदायेम हमा॥

अर्थ—बिंदु रोया कि हम सब समुद्र से भिन्न हैं, और समुद्र बिंदु पर हँसा कि हम सब पानी हैं। वास्तव में कोई दूसरा नहीं, हम सब ख़ुदा हैं, किंतु एक बिंदु के एर-फेर से हम सब (خدا) से जुदा (جدا) हो गए हैं।

जीवन—की सामान्य पहचान (characteristic) है गति (चेतनता, energy) ।

जीवित मनुष्य (बाहु-बल से) सब कुछ कर सकता है, कोठे पर चढ़ता है, गड्ढों में उतरता है, उछलता है, कूदता है, दौड़ता है, वरन् अपने बल से निकटस्थ वस्तुओं को गतिशील करता है। मृत मनुष्य का न हाथ हिल सकता है, न पैर न आँख-कान और न कोई अन्य अंग; उसकी नाड़ी गति नहीं करती, उसकी साँस गति नहीं करती। और चूँकि मृतक से किसी प्रकार की गति प्रकट नहीं हो सकती, उसमें जीवन का नाम और चिह्न भी नहीं होता।

जीवित पशु आप चलता है। बग्घी, रथ आदि को चलाता है, किसान का पुर (रहट) चलाकर खेतों को सिंचित करता है, अरब के मरुस्थल में इतना काम आता है कि "जंगल का जहाज" नाम पाता है। बंगाल के कुछ वनों में जब उच्च स्वर से गरजता है, तो वन के समस्त पशुओं को चहुँ ओर दौड़ा देता है, तीक्ष्ण गति में डाल देता है। मृत पशु बेचारा स्वयं गति करना या औरों में गति डालना तो एक ओर रहा, कुत्ते, चीलों, तनिक-तनिक से (जीवित) कीड़ों की खुराक (आहार) बन जाता है।

जीवित वनस्पतियाँ बढ़ती हैं, फैलती हैं, शाखाएँ छोड़ती हैं और बीज उत्पन्न करती हैं, जिनकी बदौलत अपने जातिवाले वृक्षों से भूमि को मालामाल बनाती हैं, तात्पर्य यह कि गति करती हैं और गति से अभिवृद्धि पाती हैं। मृत वनस्पति (काटे हुए वृक्ष आदि) क्या बढ़ेंगे ? क्या उन्नति करेंगे ? उनमें गति प्रकट होती, तो मृत क्यों होते ? 'गति' (energy) का प्रकाश (आविर्भाव) विविध प्राणियों में विविध प्रकार का है। थोड़ा विचार करने से ज्ञात होगा कि सृष्टि में खनिजवर्ग, वनस्पति-वर्ग, प्राणिवर्ग और मनुष्यवर्ग में ऊँचे-नीचे पद गति के

तराज़ू में तोलकर नियत किए गए हैं। जीवन की (उच्च-नीच) श्रेणियाँ सब गति ही की माप से परखी जाकर निश्चित हुई हैं, और गति ही की कसौटी में मनुष्य को समस्त जीवधारियों में श्रेष्ठ ठहराया है।

जड़ सृष्टि (खनिजवर्ग) सामान्य विचार के अनुसार मनुष्य, पशु या वनस्पति की तरह अपने आप कोई गति नहीं कर सकती; न बढ़ती है न संतति उत्पन्न करती है, न चलती-फिरती है, न उछलती-कूदती है, बल्कि बिलकुल जड़ (inert) है। यदि बाह्य शक्तियों के वशीभूत होकर जड़ वस्तुएँ (पाषाण आदि) एक बेर स्थिर हो जायँ, तो सदैव स्थिर रहेंगी। और यदि बाह्य शक्तियों की बदौलत गति में आ जायँ, तो गति में रहेंगी (न्यूटन के पहले गति-नियम के अनुसार)। पाषाण आदि में अपने आप दशा बदलने या किसी प्रकार का गति-प्रकाशन करने की कुछ भी सामर्थ्य नहीं होती। अतः बिलकुल निर्जीव (inorganic) कहलाते हैं, और जीवन की निसेनी (अथवा श्रेणी) में सबसे निचले पत्थर का दर्जा पाते हैं।

कुछ मनुष्यों का कथन है कि पृथिवीवर्ग अर्थात् पहाड़, खानें आदि या अन्य मुख्य-मुख्य पदार्थ अपने आप अपनी दशा बदलने की सामर्थ्य रखते हैं, किंतु इतनी कम कि शताब्दियाँ बीत जाने पर जो परिवर्तन इनमें हो, वह सैकड़ों कठिनाइयों से मनुष्य को अनुभव हो सके। इस कथन को सत्य मानकर खनिजवर्ग को विशेषतः यदि हम "जीवनवाले" (जीवित) कह भी दें, तो उनकी भीतरी गति के भावानुसार उनको अधमतम श्रेणी के जीवनवाले मानना पड़ेगा। हाँ! जीवन के परिषद् (दरबार) में वनस्पतियों का तटासीन (जीवन श्रेणी में प्रविष्ट) होना प्रायः सब कोई स्वीकार कर लेते हैं। खनिजवर्ग से वनस्पतिवर्ग की महत्ता (श्रेष्ठता) का कारण जानना चाहो, तो ज्ञात

होगा कि उनकी भीतरी गति खनिजवर्ग की अपेक्षा अधिक प्रभाव (उत्तम स्वभाव) की है। वनस्पति फलते हैं, फूलते हैं, हरे-भरे होते हैं, छाया देते हैं, भीनी-भीनी सुगंध देते हैं, सुस्वादु मेवा देते हैं, इत्यादि। खनिजवर्ग में इनमें से एक बात भी कहाँ ?

जीवन की श्रेणी में पशुओं का दर्जा वनस्पति से ऊपर है। उसका कारण स्पष्ट ही है कि पशुओं की भीतरी गति उत्तमतर स्वभाव (प्रभाव) की है; पशुगण न केवल वनस्पति की तरह दिन-प्रतिदिन बढ़ते हैं और मोटे होते हैं, वरन् एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा सकते हैं, समुद्र के तल की खबर लाते हैं, आकाश की सैर करते हैं, चहचहाते हैं, गाते हैं। ये बातें वनस्पति को भला कहाँ प्राप्त हैं ?

मनुष्य पशुओं पर भी श्रेष्ठता रखता है। इससे संभवतः किसी मनुष्य को इनकार नहीं होगा, चाहे कारण प्रत्येक व्यक्ति को ज्ञात न हो, जो यह है कि मनुष्य में श्रेष्ठतम स्वभाव (प्रभाव) वाली (भीतरी) संकल्प-शक्ति प्रकट होती है। बाहरी शक्ति से पत्थर आदि खनिजवर्ग के अनुसार मनुष्य का शरीर उछाला जा सकता है, और गिराया या फेंका जाना संभव है। वनस्पति के अनुसार मनुष्य का डील-डौल बड़ा होता है, शरीर मोटा होता है। पशुओं के समान मनुष्य एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा सकता है, दौड़ सकता है, गा सकता है। किंतु इसी पर बस नहीं है, मनुष्य की महत्ता उसकी श्रेष्ठतम भीतरी गति (चेतनता) पर निर्भर है, जो सृष्टि में और कहीं नहीं पाई जाती, जिसके कारण मनुष्य रेल को यह शीघ्रता प्रदान करता है कि महीनों की मंज़िलें घंटों में वह पार कर जाती है, जिसकी बदौलत शीघ्रगामी बिजली को चपरासी बना हज़ारों कोसों पर बैठे हुए मित्रों के समाचार सिकंडों में मँगा सकता है, और द्रुतगामी वायुयान (विमान, Balloon) तैयार करके वायु की पीठ पर

एक प्रकार से ज़ीन-पलान जमा सकता है, जिसकी बदौलत एक स्थान पर बैठे-बिठाए महाकाश की सैर कर आता है, और चंद्रमा, सूर्य, बुध, बृहस्पति, शुक्र आदि आकाश के नक्षत्रों की दशा को पहुँच जाता है। निदान, मानवीय जीवन को श्रेष्ठता देनेवाला मनुष्य के भीतर चेतनता का स्रोत है। देवतागण अपने भक्तों के विचारानुसार इस प्रकार के जीवनवाले हैं कि जहाँ चाहें तत्काल उपस्थित हो जाते हैं, अभी आकाश पर थे, अभी किसी के स्मरण करने से भूमि पर आ उपस्थित हुए। भूत, भविष्य और वर्तमान के regions (प्रदेश वा मंडलों) में बिना रोक-टोक प्रवेश कर सकते हैं। मन से भी अधिक गतिवाले हैं। उनकी गति श्रेष्ठतम होने के कारण वे मनुष्य से भी श्रेष्ठतम जीवनवाले हैं।

परिणाम—जीवन का प्रमाण 'आंतरिक गति का प्रकाश' है, और इस गति के उत्तम या अधम प्रकार पर जीवन का उत्तम या अधम होना निर्भर है।

मानवीय रूप में वनिज—डॉक्टरों ने सिद्ध किया है कि जब मनुष्य माँ के पेट में होता है, उसका शरीर श्रेणी-क्रम से कई छोटे-छोटे पशुओं का रूप धारण करता है। सबसे अंत में मनुष्य का रूप धारण करता है। अतः कैलग (Kellogg) साहब-जैसे सुप्रसिद्ध डॉक्टर का कथन है—

During the period of pregnancy, the ovum undergoes a most remarkable series of changes, passing through various stages of development, in some of which it resembles in the most wonderful degree various lower forms of animal life. At one period, the developing human being, technically called a foetus, resembles not very remotely a partially developed chick from an egg which has been incubated for a few

days. At another period the resemblance of the foetus to that of a dog of different age is so great that any but an experienced physiologist might readily be deceived. At one time, the extremities of the foetus resemble very closely the stunted flippers of a seal or walrus. At a certain period, its body is entirely covered with hair, like its near relative in the animal kingdom, the ape.

अर्थ—गर्भ के दिनों में मानवीय भ्रूण में लगातार अत्यंत अद्भुत परिवर्तन होते हैं, और वह विकास (संवर्धन) की विभिन्न श्रेणियों में से गुजरता है। कुछ श्रेणियों में तो वह अत्यंत विस्मयकारक सीमा तक पशु-जीवन के तुच्छ जीवों के सदृश होता है। यह क्रमशः विकास को पानेवाला (अभिवृद्धि करनेवाला) मनुष्य, जो परिभाषा में फीटस कहलाता है, एक समय ऐसे अधूरे मुर्गी के बच्चे से, जो कुछ दिन ही से सिहा गया हो, बहुत कुछ मिलता-जुलता होता है; दूसरे काल में उसकी सदृशता विभिन्न आयुवाले कुत्तों से इतनी अधिक होती है कि सिवाय अनुभवी डॉक्टर के और सब उसकी पहचान करने में धोका खा सकते हैं; एक और काल में उस भ्रूण के सब सिरे सील या वालरस (Seal or Walrus) मछली के ठिठरे हुए परों से बहुत ही ज्यादा मिलते-जुलते हैं; एक विशेष काल में उसका शरीर बालों से बिलकुल ढका हुआ होता है, जैसा कि पशुओं में उसके निकट के संबंधी बंदर का।

कुछ कोमल-स्वभाव महाशयों को तो डॉक्टर कैलग साहब का यह लेख भी अप्रिय प्रतीत हुआ होगा। क्योंकि इस लेख से उनके पवित्र मानवीय चोले का पाशवीय चोले के साथ बहुत बड़ी समता रखना सिद्ध होता है। किंतु हाय! बड़े दुःख से

कहना पड़ता है कि उत्तम मनुष्य-देह के भीतर खनिज के जीवनवाले, वनस्पति के जीवनवाले और पशु जीवनवाले बहुलता से विद्यमान हैं, अधिकता से पाये जाते हैं। हाँ, यह हर्ष की बात है कि मनुष्य-तन में मनुष्य भी अवश्य होते हैं, किंतु बहुत कम; और इसमें भी कुछ सन्देह नहीं कि मानवीय चोले में देवता भी मिला करते हैं, यद्यपि दुर्लभ।

पहले उल्लेख हो चुका है कि पत्थर, ठीकरी आदि (खनिज-वर्ग) का स्वभाव जड़ता (inertia) है। अपने आप अपनी दशा वे तनिक नहीं बदल सकते। उनकी स्थिति-गमन का कारण बाह्य शक्तियाँ हुआ करती हैं। इन बिलकुल निर्जीव खनिज पदार्थों में मोती, लाल, चाँदी, सोना, हीरा आदि भी सम्मिलित हैं, जिनको अत्यंत मूल्यवान् माना जाता है। तीर, तलवार, बंदूक़ और तोप के गोले भी जड़, निर्जीव और गति-हीन खनिजवर्ग में सम्मिलित होते हैं; यद्यपि दूसरों से चलाए जाकर ये शस्त्र बड़े-बड़े बलवान् वीरों को निर्जीव कर देने की शक्ति रखते हैं, किंतु निर्जीव खनिजवर्ग को न तो हीरे, मोती के रूप में कमाल (पूर्णपद) प्राप्त होता है, न ताज और तोप के रूप में, वरन् पवित्र नर-स्वरूप में। इस देव-दुर्लभ मानव-रूप में खनिज (जड़) स्वभाव प्रकट होकर राजदरबार के चाटुकार (ख़ुशामदी) और सतबचनिये बन अपने पिठलगों (सम्बन्धियों) को उस टिकिया की तरह गोल-गोल श्वेत-श्वेत वस्तु (रुपया) से भी अधिक प्रिय होते हैं, और अन्य शक्तियों से तीर व तोप को तरह चलाय जाकर बेचारे घायल भारतवर्ष को और भी अधिक घायल करते हैं। निस्संदेह वे महाशय जो केवल आभूषणों (mere ornaments) का काम देते हैं, किंतु भीतरी (वस्तुतः) जान नहीं रखते (जिसकी बदौलत बाहरी प्रभावों का सामना किया जाता है, बाह्य वस्तुओं से काम लिया जाता है, और जिसकी बदौलत

वास्तविक उन्नति की जाती है), वे यदि खनिज स्वभाव के जीवनवाले नहीं हैं, तो और क्या हैं ? इनमें नाम को भी faith in self (अपने ऊपर विश्वास या सूरमापन) नहीं होता, और न उनका कोई विशेप उद्देश्य या लक्ष्य ही जीवन में होता है, जिधर की वायु आई, उधर उड़ा ले गई।

आपत्तिकारक—बड़े-बड़े प्रतिष्ठित और महान् पुरुषों को गाली देते हो ? तुम पर मान-हानि का दावा किया जायगा।

राम—निर्जीव पत्थर चाहे कैसे ही बहुमूल्य हों, नालिश-वालिश नहीं कर सकते। और नालिश करेगा कौन ? आतिशी शीशे में मुँह देखते-देखते लक़वा दूर हो जाया करता है, वैसे ही इस अलिफ़ (।) को पढ़ते-पढ़ते तो उनकी दशा बदल जाती है, उनमें जान आ जाती है, जड़ता दूर हो जाती है, सतवचनियापन उड़ जाता है। कचेहरी तक पहुँचते-पहुँचते वादी से प्रतिवादी बन जायँगे, फिर नालिश कैसी ?

जड़ सृष्टि का स्वभाव रखनेवाले मनुष्यरूप विशेष व्यक्तियों को यदि सजीवन मान भी लिया जाय, तो खनिजवत् उनके जीवन को उस न्यूनतम गति (चेतनता) वाला मानना पड़ेगा, जिस गति का होना न होना एक समान है, जिस गति से स्पष्ट कुछ भी उन्नति नहीं होती, जो गति खिलाड़ी बच्चे के घूमते हुए लट्टू में हुआ करती है, जिस dead motion (मृत गति) का centre (केंद्र) छोटे से शरीर के बाहर नहीं होता। इस चेतनतावाले जड़ मनुष्यों के जीवन-चक्र को हम (पहले पृष्ठ पर के छोटे से छोटे) ह वृत्त से निरूपण (represent) कर सकते हैं, अर्थात् उस वृत्त से जतला सकते हैं, जो इतना अल्प है कि मानो शून्य ही हो गया है। ये वे महाशय हैं जिनका centre of force (चेतनता का केंद्र) उनके छोटे से तन में ही है। अर्थात् जो अपने प्यारे पेट ही के चहुँ ओर घूमते

हैं; जो कुछ करते हैं, सब अपने material self (भौतिक शरीर) ही के लिये करते हैं। जिनकी चेष्टा अपने उदर ही के अर्पण होती है (शिश्नोदरपरायणः), जिनका परमेश्वर उनका पेट ही है, धर्म और विश्वास (religion) स्वार्थपरता है; जिनके यहाँ Temple of God (ईश्वर के मंदिर, शरीर) में कामदेव (शैतान) बेखटके राज्य करता है; जिनके अंधकार से भरे मन-मंदिर को तंग (संकुचित) और अंधकार-पूर्ण बिल समझकर उसमें काम-क्रोध-रूपी नाग (सर्प) रात-दिन फुफकारें मारते हैं, और हलाहल (विष) घोलते रहते हैं। इनको 'पेट-पालू' या 'उदरपरायण' नाम देना उचित है।

आपत्तिकारक—किसी युग का कोई इतिहास या किसी देश का कोई भूगोल 'स्वार्थपरता' को धर्म (religion) नाम नहीं देता, किसी धर्मशास्त्र से यह अनोखी बात प्रकट नहीं होती, तुम भी विचित्र मनगढ़ंत (कपोल-कल्पित) लटके (शगूफ़े) उड़ाते हो।

राम—वाह प्यारे ! हाँ-हाँ ! इसी पर क्या 'इति' थोड़ी ही है ? "।" (अलिफ़) को पढ़ते रहे, तो देखोगे कि समस्त संसार (मैं, तू, यह, वह, सब) राम की मनगढ़ंत ही है।

न नक़्शे-दुई दिल से मिटा दूँ, तो सही।
मख़लूक़ को ख़ालिक़ न बना दूँ, तो सही॥
क़तरा न अनलबहर कहे, तो कहना।
आबिद से न माबूद बना दूँ, तो सही॥

'धर्म' से मुराद हमारी वह जाति या सम्प्रदाय नहीं है, जो मुक़द्दमाबाज़ी के समय लोग Law Courts (न्यायालयों, अदालतों) में अरज़ीदावा पर लिखवाया करते हैं, वरन् 'धर्म' से हमारा अभिप्राय है वह विश्वास, जो लोगों के हृदय-पटल पर अधिष्ठित होकर रक्त के साथ उनके नस-नाड़ियों में उबला

करता है, और छाप बनकर उनके समस्त कर्मों और विचारों पर छपता है। वह जीवित शक्ति वा विश्वास (living force) किसी मनुष्य का असली धर्म होता है, जिसके प्रकाश में वह शेष सर्व काम करता है।

The thing a man does practically believe (and this is often enough without asserting it even to himself, much less to others), the thing a man does practically lay to heart and know for certain, that is in all cases the primary thing for him, and creatively determines all the rest. That is his religion.
(Carlyle.)

अर्थ—किसी व्यक्ति का जो कुछ व्यावहारिक निश्चय होता है (और यह निश्चय बहुधा करके अपने आपको भी बिना बताए या प्रकट किए के होता है, औरों की तो भला क्या चर्चा) और जिस विश्वास (निश्चय) को मनुष्य व्यवहार रूप में अपने हृदयंगम करता है और दृढ़ निश्चय से जानता है, वह व्यावहारिक विश्वास ही समस्त दशाओं में उसके लिये प्रारम्भिक बात होती है, और शेष सब चेष्टाओं और कर्मों को उत्पन्न करता है। ऐसा व्यावहारिक निश्चय ही उस (मनुष्य) का religion (धर्म या ईमान) होता है।

क्या वह परान्न-भोजी भोंदू (मूढ़) हिंदू या ब्राह्मण या वैष्णव या आर्य या वेदांती आदि कहलाने-योग्य है, जो "चल मेरी लकड़ी रंग बदल जा" की उक्ति का लक्ष्य है और किसी अँगरेज़ बहादुर या किसी अन्य मत के प्रभावशाली वा तेजस्वी (influential) व्यक्ति के सम्मुख झट अपने (नाममात्र के) निश्चय से इनकार कर जाता है। भला, इतनी सदाचारिक शक्ति (moral courage) तो कहाँ कि अपने विश्वास का शुद्ध

शब्दों में इक़रार करते न शरमाये ? कितनी अधिक संख्या ऐसे हिंदू-मुसलमान और ईसाइयों की है, जो जिह्वा से ईश्वर को सर्वत्र विद्यमान व साक्षी माननेवाले हैं, सर्वव्यापी वर्णन करते हैं; मंदिरों में, प्रार्थनालयों में, लेक्चरों के समय और वाइज़ (उपदेश वा कथा) के समय अपना तन-मन-धन परमेश्वर के अर्पण कर देते हैं; किंतु जब ज़रा स्त्री का, हवेली का, रुपया का या सुस्वादु भोजन-पान का मुँह देखा, तो हाय ! उस शुद्ध पवित्र (pure) परमेश्वर की आँखों में नमक डालकर तन भी उससे छीन लिया, मन भी छीन लिया, कंचन पर, भूमि पर अपने भाइयों से लड़ाइयाँ और मुक़द्दमे आरंभ कर दिए। किसी स्त्री के साथ आँखें चार हुईं, तो सर्वव्यापक एकमेवाद्वितीयम् परमेश्वर धरा ही रह गया। किसी डिप्टी कमिश्नर साहब या उच्च अधिकारी (शासक) की हाज़िरी में यदि होते, तो दीन-हीन बने रहते, मानो मुँह में जिह्वा ही नहीं। किंतु सर्वत्र विद्यमान, सर्वदर्शी, शासकों के शासक ईश्वर भगवान् (जिसको न केवल भारतेश्वर, चीन-सम्राट् या ज़ार रूस का स्वामी मानते हैं, वरन् समस्त भूमि, तारे, नक्षत्र, सूर्य और चंद्र का सम्राट् वर्णन करते हैं), उस सर्वशक्तिमान् (Omnipotent, क़ादरे-मुतलक़) महान् की उपस्थिति में अकर्तव्य और अवक्तव्य बातों के अपराधी होने का साहस पड़ गया। हाय ! इस दंभ और पाखंड से भरे हुए हिंदूपन और मुसलमानपन, ईसाईपन या और किसी पन पर तीन हरफ़ (ध. क. र = धिक्कार) !

वाइज़ाँ काईं जलवा बर महराबो मिम्बर मेकुनंद।
चूँ ब ख़िलवत मे रवंद आँ कारे-दीगर मे कुनंद॥

अर्थ—ये उपदेशक लोग, जो कि मिम्बर (प्लेटफ़ार्म) पर विराजमान होते हैं, जब एकांत में जाते हैं, तो और और काम करते हैं, अर्थात् बाहर कुछ कहते हैं और भीतर कुछ करते हैं।

किसी एकांत स्थान में, या रात को सोने से प्रथम, या रात के स्वप्नों में जो वासनाएँ या ख़यालात (cravings) हृदय में वेग के साथ प्रकट होते हैं, उनसे मनुष्य के असली धर्म का पता मिलता है कि आया उसका धर्म या उपास्यदेव रुपया है, स्त्री है, विद्या है, या सचमुच ईश्वर है।

धन्य हैं वे, जिनका असली धर्म वही है, जो वे ऊपर से प्रकट करते हैं।

सद जाँ फ़िदाए आँ कि ज़ुबानो दिलश यकेस्त।

अर्थ—जिनका मन और वाणी एक है, उन पर मैं सौ जान से फ़िदा हूँ।

हिंदी-भाषा के महाकवि भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र ने रसखान, ख़ानख़ाना आदि सच्चे मुसलमान भक्तों के विषय में क्या ही अच्छा कहा है—

"इन दो-चार मुसलान पर कोटों हिंदू वारिये।"

वह व्यक्ति, जो सच्चे हृदयवाला (sincere heart) है, वह राम का अत्यंत अधिक निकटस्थ है, उस व्यक्ति की अपेक्षा कि जो राम के विचारों से तो बिलकुल सहमत है, किंतु उन विचारों को व्यवहार में नहीं लाता।

मन नमेगोयम अनलहक़, यार मेगोयद, बिगो।
चूँ न गोयम ? बर सरे-बाज़ार मेगोयद, बिगो॥

अर्थ—मैं अनलहक़ नहीं कहता हूँ, यार (सत्यरूप) ख़ुद कहता है कि तुम कहो। मैं फिर क्यों न कहूँ, वह सरे-बाज़ार कहता है कि कहो।

कब लिबासे-दुनयवी में छिपते हैं रौशन ज़मीर।
जामए-फ़ानूस में भी शोला उरयाँ ही रहा॥

वह पुरुष, ऊपर से चाहे हिंदू हो या मुसलमान या ईसाई आदि, 'स्वार्थपरता' रूप धर्म का अनुयायी है, जो केवल इंद्रियों

के विलास के लिये कटिबद्ध है; जिसे न घर की परवा है न घाट की; स्त्री, बाल-बच्चे मरें, चाहे जियें; नंगे रहें, भूखे रहें, प्यासे रहें, उसकी बला से; किसी की शिक्षा की चिंता है न किसी के सुधार की चर्चा है; संतान तो फ़ाक़ामस्ती में दिन काटे और आप यारों में बैठकर भंग-बूटी उड़ाएँ, गाँजा और सुलफ़े के दम लगाएँ, चिमन बीवी (अफ़यून) से सोहबत गरमाएँ।

भंगा पीवन सोवन बागीं। धर दे जीवन अपनी भागीं॥

व वीं आँ बे हमीयत रा कि हरगिज़। न ख़्वाहिद दीद रूए-नेकबख़्ती॥
तन आसानी गुज़ीनद ख़्वेश तन रा। ज़नो फ़रज़ंद बिगुज़ारद बसख़्ती॥

अर्थ—उस निर्लज्ज मनुष्य को देख, वह कभी नेकबख़्ती का मुँह न देखेगा, क्योंकि वह केवल अपने लिए आराम पसंद करता है, और स्त्री-पुत्रों को विपत्ति में छोड़ता है।

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन॥ (गीता १४-१३)

अर्थ—हे अर्जुन! तमोगुण के बढ़ने पर मूर्खता, अकर्मण्यता, आलस्य और मोह ये सब छा जाते हैं।

यदि मानवीय स्वरूप स्वीकार करने पर भी जड़ सृष्टि के गुणों में जकड़े रहना था, तो कवि की उक्ति के अनुसार हजरुलयहूद अथवा कोई बहुमूल्य पत्थर होना हज़ारगुना अच्छा था।

किसी रंजकश को देते तो कुछ उसको सूद होता।
दिले-सख़्त काश पत्थर हजरुलयहूद होता॥

इस स्वार्थपरता धर्म का अनुयायी, इंद्रियों का दास, यदि ऊपर से धनवान् वरन् राजराजेश्वर भी हो जाय, तो हृदयवान् (विशालचित्त) पुरुषों की दृष्टि में शूद्र ही गिना जाता है, जड़ सृष्टि की श्रेणी में गिना जाता है।

रोम (Rome) के सौभाग्य का सूर्य जब पूर्ण उन्नति पर

था, जब वह नगर लगभग संसार-भर का (जितना कि तब ज्ञात था) राजसिंहासन था, वहाँ के उन दिनोंवाले महाप्रतापी महाराजों की तालिका में ये नाम भी पाये जाते हैं—

क्लाडियस (Claudius), कैलीगोला (Caligula), टाईबेरियस (Tiberius), डोमीशियन (Domition), वाईटेलियस (Vitellius), नीरो (Nero)।

ये वे नाम हैं, जिनको सुनते ही इतिहासज्ञों के सम्मुख वह समस्त अकथनीय अत्याचार और पाप मूर्तिमान् होकर दृष्टि-गोचर हो जाते हैं कि जो संसार में लुच्चे-से-लुच्चा, महागुंडा मनुष्य भी विचार में नहीं ला सकता है, जिनको वर्णन करते लेखनी का हिया फटता है, जिनमें से एक को भी लिखने का ख़याल ही करने से रोंगटे खड़े हो जाते हैं। पाठको ! यदि उपरि-लिखित सम्राटों का प्रभुत्व इस शर्त पर प्राप्त होता हो कि उन लोगों-जैसी प्रकृति और स्वभाव भी अवश्य लेना पड़े, तो थूक दो इस साम्राज्य पर, धूलि डालो इस शाहंशाही पर।

गर फ़रेदूँ शवद व नेमतो-मुल्क। बे हुनर रा बहेचकस मशुमार।
परनियां व नसेज बर ना अहल। लाजवर्दो तिलास्त बर दीवार॥

अर्थ—निर्गुणी मनुष्य यदि ऐश्वर्य और वसुधा में फ़रेदूँ जैसा बन जाय, तो भी उसको सामान्य मनुष्य के बराबर भी तू मत गिन। अशिष्ट मनुष्य के शरीर पर रेशमी वस्त्र ऐसे हैं, जैसे दीवार पर लाजवर्द और सोना, अर्थात् दीवार पर चित्रकारी।

ओ भारत-निवासी ! स्मरण रख, आदि से तू वह है, जिसके यहाँ रुपयेवाले की तो महिमा और मान नहीं, वरन् सद्गुण (virtue) वाले की। जिसके यहाँ अब तक भी रुपये को न छूने-वाला संन्यासी अपने ज्ञान के कारण नारायण-स्वरूप माना जाता है। और जिसके यहाँ एक कुटिया में रहनेवाला नग्न

शरीर, फल-फूल पर निर्वाह करनेवाला गरीब ब्राह्मण अपने ज्ञान और सद्गुण के कारण देवताओं के समान पूजा जाता था; न केवल (सांसारिक ऐश्वर्य के स्वामी) वैश्य लोगों से, वरन् (शारीरिक शक्तिवाले सुंदर शोभायमान वस्त्रों से सुशोभित, रत्नाभूषणों से समलंकृत) राजाओं, महाराजाओं से।

बाहरी वैभव, ऐश्वर्य, सांसारिक ठाट-बाट और अल्पकालिक (क्षणिक) तेज-प्रताप के बदले वास्तविक आनंद (Peace), अक्षय प्रसन्नता (शांति) को हाथ से मत दो। बुझी हुई क़लई (चूने) का छोटा सा गोला देख उसकी सफ़ेदी पर मोहित होकर उसके बदले अपने हाथवाला ताज़ा मक्खन का पेड़ा मत बदल लो। पछताओगे, यह चूना खाया हुआ कलेजा फाड़ देगा, हृदय रक्त कर देगा, मार डालेगा। प्यारे! जिस चाह से सांसारिक संपत्ति को एकत्र करने में दिन-रात मिहनत करते हो और कुछ हाथ भी नहीं आता, उसी परिश्रम से आत्मिक उन्नति के लिये कुछ भी समय व्यय करो, तो अमृत जीवन प्राप्त हो जाय।

शशि सूर पावक को करे, परकाश सो निज धाम वे।
इस चाम से तजि नेह तू, उस धाम कर विश्राम वे॥
इक दमक तेरी पाय के, सब चमकदा संसार वे।
टुक चीन ब्रह्मानंद को, जग नीर ते होय पार वे॥
मंसूर ने सूली सही, पर बोलता वही बैन वे।
बंदा न पायो ख़ल्क़ में, जब देखियो निज नैन वे॥
आशिक़ लखावें सैन जो, लख सैन को कर चैन वे।
तू आप मालिक ख़ुद ख़ुदा, क्यों भटकदा दिन-रैन वे॥

मनुष्य-स्वरूप में वनस्पतिवर्ग—वनस्पतियाँ यद्यपि कई प्रकार की होती हैं (नारियल, सरो, सेब, अंगूर, पीपल, आक, ढाक, सुंबल आदि), जिनके विस्तृत विवरण में वनस्पति-विद्या

(Botany) के बड़े-बड़े ग्रंथ मौजूद हैं, किंतु सामान्य रीति से वनस्पतिवर्ग का स्वभाव यह है कि एक ही स्थान पर बढ़ना, फलना-फूलना, अपने वंश (species, कुल) को स्थिर रखना, पत्ते-टहनियाँ आदि पर्याप्त हों, तो पथिकों को छाया भी देना, अतिथि के आगे या स्वामी की सेवा में मीठे या कड़ुवे फल (जैसे मौजूद हों) उपस्थित कर देना; परंतु एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने की सामर्थ्य न रखना और प्रायः पशुओं या मनुष्यों के अत्याचारी हाथों से नष्ट हो जाना, काटे जाना। जैसे विश्व (ब्रह्मांड, macrocosm) में वनस्पतिवर्ग की आवश्यकता है (आवश्यकता न होती, तो मौजूद ही क्यों होते), वैसे ही मानवीय चोला (microcosm, अंड, सूक्ष्म सृष्टि) में भी वनस्पतिवर्ग की प्रकृति और गुणवालों की आवश्यकता है, परन्तु कवि के कथनानुसार—

गरचे कस बे अजल न ख़्वाहद मुर्द।
तो मरौ दर दहाने - अयदरहा ॥
ख़ंदाँ रू बूदन बिह अज़ गंजे गुहर बख़्शीदन अस्त।
ता तवानी बर्क़ बूदन अब्रे-नेसानी मुबाश ॥

अर्थ—यद्यपि कोई मनुष्य बिना मृत्यु के नहीं मरेगा, तो भी तू जान-बूझकर सर्प के मुँह में न जा।

हँसमुख रहना मोतियों का कोष दे देने से भी अच्छा है, जब कि तू बिजली बनकर रह सकता है, अर्थात् प्रसन्न-चित्त रह सकता है, तो वर्षा का बादल, अर्थात् रोनी सूरत, मत बन।

यदि मानवीय चोले में आकर भी वनस्पतिवर्ग (जड़) बने रहे, और उस स्वतंत्रता को प्राप्त न किया, जो इस चोले में मिल सकती है, और टैंटेलस (Tantalus) की तरह मीठे जल में खड़े होने पर भी प्यासे और चारो ओर सुस्वादु मेवों के बीच में रहकर भी भूखे रहे, तो शोक, महाशोक है !

हीरे-जैसा जन्म तुम्हारा कौड़ी बदले बेच दिया।

पाठक जान गए होंगे कि मनुष्यों में वनस्पति कौन हैं। ये हैं 'कुटुंव-पालक', 'परिवार-उपासक', 'साधारण गृहस्थ लोग', जिनके जीवन को वैश्य-जीवन की उपमा दी जा सकती है, जिनके जीवन का वृत्त ह से वड़े अन्य वृत्त द से वर्णित हो सकता है, जिनके जीवन की गति की तुलना कोल्हू के बैल की गति से है, जिनका असली धर्म दुकानदारी है, जिनका मुक्ति के लिये सिफ़ारिश करनेवाला (अवतार वा पैग़म्बर) रुपया है, जिनका गुरुदेव स्त्री है, और जिनके लिये यथार्थ पूज्य (इष्टदेव) देह-दिखावा (vanity, पाखंड, शेखी) है। इन लोगों के जीवन का वृत्त पेट-पालकों के वृत्त से बहुत अधिक विस्तृत होता है। 'पेट-पालू' तो केवल अपना ही पेट पालता है, कुटुंबवाला समस्त कुटुंब की पालना करता है, आप भूखा रहकर, दुःख झेलकर कुटुंब की सेवा करता है। पेट-पालू की प्रीति के बाहु इतने छोटे होते हैं कि वेचारा लुंजा जव छाती के सामने आलिंगन के लिये प्रेम के वाहु फैला एक हाथ से दूसरे हाथ को छूता है, तो (और किसी को अपने प्रीति के घेरे में ले आना तो एक ओर रहा) महा मुश्किल से अपनी छाती की चौड़ाई को नापता है। कुटुंबवाला यत्किंचित् विशालबाहु होता है, पुत्र-पुत्रियों को अपने अंक (गोद) में ले सकता है। जैसे कोल्हू के बैलवाले वृत्त में लट्टूवाले वृत्त अधिक संख्या में समा सकते हैं, वैसे ही 'कुटुंब-पालक' की उदारता का क्षेत्र कई अशक्तों को शरण देता है। लट्टू की अपेक्षा बैल अति अधिक मूल्य का होता है, वैसे ही 'पेट-पालू' की अपेक्षा 'परिवार-पालू' का होना धन्य है। वनस्पतिवर्ग की चर्चा में किसी ने कहा है—

हे नर ! ऐसी प्रीति कर, जैसी वृक्ष करे ;
धूप सहे सिर आपनों, औरों छाँव करे।

मानवीय वनस्पतिवर्ग भी बहुत कुछ इस प्रशंसा के योग्य है, और देश की शोभा-सौंदर्य को बढ़ाता है।

आजकल भारतवर्ष में इस वैश्य (गृहस्थी) समुदाय का बोलबाला है, क्षत्रिय हैं, तो सारे देश को अपना घर समझने के स्थान पर एक छोटे से घर को अपना देश समझते हैं, ब्राह्मण हैं, तो ब्रह्म (ईश्वर) के स्मरण में घर-बार को भुला देने के स्थान पर स्त्री-बच्चों की चिंता में ब्रह्म (ईश्वर) को डुबो रहे हैं, और वैश्यों को रुपये का विहित त्याग सिखाने के स्थान पर उनसे अविहित और अनुचित ग्रहण सीख रहे हैं। जो है, सो व्यावहारिक रूप से वैश्य-धर्म का दम भरता है। ले वैश्य-धर्म ! तेरे पौ बारह हैं। राज-जाति (अँगरेज़) भी तो सौदागर ही हैं, अर्थात् वैश्य हैं।

'अतीक़ के अहदनामे' में लिखा है कि हज़रत लूत, उसकी लड़कियाँ और उसकी स्त्री सोदोम (Sodom) नगर से इकट्ठे बाहर जा रहे थे; शेष सबका मुख तो नगर के बाहर की ओर था, किंतु लूत की स्त्री का ध्यान पीछे नगर की ओर था। परिणाम यह हुआ कि शेष सबको मुक्ति मिली, किंतु लूत की स्त्री बेचारी वहीं लवण का स्तंभ बन गई। प्यारे पाठको ! यह कहानी मनुष्य से संबंध रखनेवाले एक प्राकृतिक नियम को प्रकट करती है, जो लॉर्ड बायरन (Lord Byron) के शब्दों में इस प्रकार वर्णित हो सकता है—

"'Tis his nature either to grow or to decay ;
He stands not still, but decays or grows."

अर्थ—मनुष्य का स्वभाव यह है कि या तो वह उन्नति करे या अवनति; वह कभी थिर नहीं रहता, अपितु अवनति करता है या उन्नति। जैसे मनुष्य का शरीर बचपन से लेकर बराबर बढ़ता जाता है, वैसे ही मनुष्य की आत्मिक अवस्था के लिये भी लगातार उन्नति करते जाना आवश्यक है।

From well to better daily Self-surpassed.

(Wordsworth)

अर्थ—नित्यप्रति उन्नति करना और पहले दिन की अपेक्षा दूसरे दिन और उत्तम हो जाना मानवीय स्वभाव है।

जब अपने वृत्तों को बढ़ाना, प्रतिदिन पग आगे चलाना रोक दिया जायगा, तो प्रकृति-नियम के चक्कर में कुचले जाना होगा। पतन आरंभ हो जायगा, मृत्यु का सामना होगा।

'Advance or Perish' is the grim watchword of Nature.

अर्थ—आगे बढ़ो या नष्ट हो जाओ, प्रकृति की यह उग्र चेतावनी है।

ख़ंजर न चले, तो मोर्चा खाय। पानी न बहे, तो उसमें बू आय॥

(लूत-पत्नी की तरह) जिस समय अपनी पहली अवस्था (सोदोम नगर) से निकलने को बुरा माना और बड़े वृत्त fresh fields and pastures new (हरित खेतों, मैदानों और नये-नये लता-कुंजों) की ओर जाने से इनकार किया, बस वहीं लवण का खंभा बनना पड़ा। जिस समय बैल ने ज़रा आगे चलने से सुस्ती की, तड़ से किसान का चाबुक खाया। जब कोई व्यक्ति या जाति अथवा देश एक ही अवस्था में गलना (Stagnate निश्चल रहकर सड़ना) चाहता है, तो प्रकृति-नियम (Divine Providence, नेचर, ईश्वर या कर्म) का झट डंडा खाता है; अर्थात् भाँति-भाँति की विपत्तियों के चंगुल में फँसता है, मृतक की तरह कीड़ों का आहार बनता है, दासता के फंदे (बंधन) में फँसता है। बी० ए० की श्रेणी अत्यंत श्रेष्ठ ही सही, किंतु यदि कोई मनुष्य उस श्रेणी में घर कर बैठे और फ़ेल ही होने पर कटिबद्ध हो जाय, मल्लाह की तरह सहपाठी विद्यार्थियों के एक खेवे को परीक्षा-रूप नदी पार करा आये, और फिर उसी नौका में दूसरे खेवे को उत्तीर्ण कराने

आ जाय, और इसी तरह फिर तीसरे-चौथे खेवे को, इत्यादि, तो वह व्यक्ति अयोग्यों की पंक्ति में गिना जायगा, उसे निराशा और अपमान सहना पड़ेगा। वैसे ही वैश्य बुद्धिवाला मनुष्य (कुटुंब का ग़ुलाम) यदि घर की चहारदीवारी में अपनी मनः-संपत्ति गाड़ दे, और प्रेम का क्षेत्र विस्तीर्ण न करे, तो अपमान उठायगा, और दुःख पायगा।

देवृत्त की ओर ध्यान करके देख लो। थोड़े से क्षेत्र को घेरे हुए अवश्य है, किंतु शेष सब काग़ज़ पृष्ट की ओर पीठ फेरे हुए है। थोड़े से तल (क्षेत्र) को include (सम्मिलित) करता है, तो शेष सारे संसार को exclude (पृथक्) करता है। यही हाल (आगे उन्नति न करनेवाले) गृहस्थी के चक्र में फँसे हुए व्यक्ति का है। बाल-बच्चों का पालन-पोषण अवश्य करता है, किंतु महकमा कमसरियेट में, महकमा बंदोबस्त में, महकमा इंजीनियरिंग में, डॉक्टर के वेष या वकील के रूप में, या जिस ऑफ़िस में हो, अपने सजातियों के रक्त में हाथ रँगने को हर समय तैयार रहता है, जिनसे काम पड़ जाय, उनके गले काटने को भली भाँति तत्पर रहता है। यदि शेष सब घर उजड़ते हैं, तो बला से, यह घूस ले-लेकर अपने घर को किसी धनिक की समाधि (क़ब्र) के बराबर ऊँचा अवश्य बनायगा। जिन लोगों को इससे पाला पड़ जाय, उनकी स्त्रियों के मुख शोक से मुरझाते हैं, तो क्या डर है, यह उनके आभूषणों को बिकवाकर अपनी स्त्री के मुखड़े को सोने से अवश्य सज्जित करेगा, उसे पीत-वर्ण बनायगा। अपनी आत्मा पस्त (शिथिल वा निर्बल) होती जाय और बराबर सिकुड़ती जाय, तो क्या परवाह है, यह अपनी स्थावर संपत्ति को अवश्य ही बढ़ायेगा, घर को ऊँचा बनायेगा। शोक! सहस्र शोक!!

वरीं अक़्लो दानिश बवायद गिरीस्त ।

अर्थ—ऐसी बुद्धि और समझ पर रोना चाहिए ।

इस बंदी-घर में अधिक काल बंद रहने से चोरी, ठगी, डाकूपन के रोगों में फँस जाता है, धनी लोगों का ख़ून करना भी इसी स्कूल में सीखता है । क्यों न हो—

कि बू फ़साद की आती है बंद पानी में ॥

कठिन परिश्रम करने पर भी वहाँ का वहीं रहने और उन्नति न करने में कोल्हू का बैल प्रसिद्ध है । बैल पर यह पंजाबी कहावत चरितार्थ होती है—"भौं चौं के उग्गों दे चक ।" (घूमघाम के वहीं अपने को पाना) । ठीक यही हाल संसारी (स्त्री-पुत्रों में ग्रस्त) व्यक्ति का है । बेचारा बैल की तरह श्रम करता है, रात-दिन दफ़्तरों या दुकानों में ज्ञान-दृष्टि पर आवरण डाले कोल्हू चलाये जाता है । यह कुछ पता नहीं कि इस कोल्हू चलाने से क्या प्राप्त होगा, कहाँ जा रहा हूँ, क्या बना रहा हूँ, इत्यादि । हाँ, जब आँखों पर से मृत्यु-समय परदा ज़रा उठेगा, तो देखेगा कि हाय-हाय ! रात-दिन परिश्रम करते-करते सर मिटे, समझते थे बहुत यात्रा तय कर चुके होंगे, किंतु अपने आपको वहाँ का वहीं पाया, कुछ न उन्नति की । हाय री तृष्णा ! वाह री तृष्णा ! कुछ न कर सके ! कुछ न बना सके ! उस समय रोना और दाँत पीसना होगा, प्राण भी संकट ही में निकलेंगे ।

जाँ ब जानाँ दिह वगरना अज़ तो बिस्तानद अजल ।

ख़ुद तो मुंसिफ़ बाश, ऐ दिल ! ईं निको या आँ निको ॥

अर्थ—प्राण अपने प्यारे (प्रिय) को दे, नहीं तो मृत्यु तुझसे इसे अवश्य ले लेगी । ऐ दिल ! तू स्वयं न्याय कर कि यह अच्छा है, या वह अच्छा है ।

ओ कुटुंब के फंदे में फँसे हुए ! आराम की नहीं है यह 'जा' (जगह), हाँ बढ़े चलो, हाँ बढ़े चलो । आलिंगनार्थ फैलनेवाले

बाहुओं को विशाल करो, अपने प्रेम (fellow-feeling) के वृत्त को विस्तृत करो; बढ़ो, यहाँ तक कि जीवन को निरूपण करनेवाला चारों ओर से परिमित वृत्त फैलते-फैलते अपरिमित विस्तार को स्वीकार करे और सीधी रेखा बन जाय, और तुम्हारा जीवन भूलभुलैयों से निकलकर सबको सीधा-मार्ग दिखाय। आगे बढ़ो, आगे बढ़ो, यहाँ तक कि मिथ्या जगत् का 'आगा-पीछा' बिलकुल अर्थ-हीन हो जाय।

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्तात् ब्रह्म पश्चात् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ॥ ११ ॥
(अथर्व० मुंडको० अ० २, खं० २)

अर्थ—ब्रह्म ही यह अमृत-रूपी सामने है, ब्रह्म ही पीछे है, ब्रह्म ही दायें और ब्रह्म ही बायें है। यह नीचे और ऊपर फैला हुआ है, ब्रह्म ही यह सब कुछ है, वह सबसे श्रेष्ठ है।

अंदरूँ व बिरूँ तुई ऐ दोस्त ! दर चपो-रास्त ज़ेरो-बालाई।

अर्थ—भीतर-बाहर, दायें-बायें और ऊपर-नीचे, ऐ मित्र ! तू ही है।

आगे चलो, आगे चलो, यहाँ तक कि 'चलना-फिरना' निरर्थक हो जाय।

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वदंतिके।
तदंतरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥ (ईश०, ५)

अर्थ—हम चल हैं, हम चल हैं नाहीं, हम नेड़े, हम दूर।
हम ही सबके अंदर चानन, हम ही बाहर नूर ॥

मस्तम कुनाँ चुनाँ कि न दानम ज़ि बे ख़ुदी।
दर अरसए-ख़याल कि आमद कुदाम रफ़्त ॥

अर्थ—मुझको ऐसा मस्त कर दे कि मैं बेख़ुदी से इस बात को न जान सकूँ कि विचार के मैदान में कौन आया और कौन गया ? अर्थात् उस प्रियतम के ख़याल में बेहोश और निमग्न हो जाऊँ।

आगे चलो, आगे चलो, यहाँ तक कि चक्कर में व्याकुल और त्रस्त करनेवाले वृत्तों से बचकर सन्मार्ग में चलनेवाले सूर्य का जीवन पा लो, प्रकाश ही प्रकाश बन जाओ, और यह अवस्था आ जाय।

क्वात्मा क्व चानात्मा क्व शुभं क्वाशुभं तथा ;
क्व चिंता क्व वा चिंता स्वमहिम्नि स्थितस्य मे ॥

अर्थ—है कहाँ ज़ात और कहाँ है ग़ैर ज़ात ?
क्या बुराई ? कौन सी ख़ूबी की बात ?
फ़िक्र कैसी मुझको ? बेफ़िकरी कहाँ ?
मस्त अपने नूर में हूँ मह्व-ज़ात ।

प्यारे पाठक ! एक झूठी, काल्पनिक, नाशवान् धर्मशाला (सराय) से यह प्रीति कि तू अपने असली घर को बिलकुल भूल बैठा ! यह भोलापन छोड़ो, असली घर (निजधाम) को मुँह मोड़ो, असली स्वदेश-प्रीति को मत खो दो ।

तायरानेम कज़ क़ज़ा व क़दर । ओफ़्तादा जुदा ज़ गुलज़ारेम ॥
मुर्गे-शाख़े-दरख़्ते-लाहूतेम । गौहरे-गंजे-दुरजे-असरारेम ॥
या दुर्रे अज़ मुहीते-तौहीदेम । गौहरे या ज़कानें-इरफ़ानेम ॥

अर्थ—हम वह पक्षी हैं, जो भाग्य-वश अपने बाग़ से अलग गिर गये हैं (या जुदा हो गये हैं)। हम ब्रह्मलोक के वृक्ष की शाखा के पक्षी हैं, और रहस्यों के डब्बे के कोष के मोती हैं, या अद्वैत-रूपी वृक्ष के एक मोती हैं, या ईश्वरपरायणता की खानि के एक मोती हैं।

बराए नाम भी अपना न कुछ बाक़ी निशाँ रखना ।
न तन रखना, न दिल रखना, न जी रखना, न जाँ रखना ॥
ताल्लुक़ तोड़ देना, छोड़ देना, उसकी पाबंदी ।
ख़बरदार अपनी गर्दन पर न यह बारे-गिराँ रखना ।

मिलेगी क्या मदद तुझको मददगाराने-दुनिया से।
उमेदे-यावरी उनसे न याँ रखना न वाँ रखना॥
बहुत मज़बूत घर है आक़बत का दारे-दुनिया से।
उठा लेना यहाँ से अपनी दौलत और वहाँ रखना॥
उठा देना तसव्वर ग़ैर की सूरत का आँखों से।
फ़क़त सीने के आईने में नक़्शे-दिलसिताँ रखना॥
किसी घर में न घर कर बैठना इस दारे-फ़ानी में।
ठिकाना बे ठिकाना और मकाँ बर लामकाँ रखना॥

मनुष्य-रूप में प्राणिवर्ग— अब ज वृत्त पर दृष्टि डालिएगा। द वृत्त से यह बहुत बड़ा है, यद्यपि टेढ़ापन (वक्रता) दूर नहीं हुआ। यह वृत्त उन लोगों के जीवन-चक्र को निरूपण करता है, जो अपनी जाति (caste) भर के साथ उतनी प्रीति रखते हैं, जितनी पेट-पालू अपने शरीर के साथ रखता है, या कुटुम्ब-पालक अपने बाल-बच्चों के साथ। और जो समस्त जाति की भलाई के लिये उतने ही उद्यम के साथ परिश्रम करते हैं, जितना कुटुम्ब-पालक अपने कुटुम्ब के लिये करता है। पेट-पालू का प्रीति-केन्द्र (लट्टू की तरह) अपने ही शरीर में था, कुटुम्ब-पालू का गति-केन्द्र (centre of force) बैल की भाँति शरीर से ज़रा दूरी पर था, जाति-पालक को घुमानेवाली शक्ति (जाति-प्रीति) उसके शरीर से और भी दूरी पर क्रिया करती है। उसके जीवन-चक्र का गति-केंद्र देह-अध्यास (य बिंदु) से अपेक्षाकृत बहुत दूर है। इसीलिये उसका जीवन-चक्र भी बहुत विस्तृत है। जाति-पालक की जीवन-गति को घुड़दौड़ के घोड़े (race-horse) की गति से तुलना दी जाती है। यह घोड़ा अपनी गति से बैल आदि की अपेक्षा बहुत बड़ा वृत्त बनाता है। मेलों में या और अवसरों पर इस पशु के चमत्कार देखने को नगरों के प्रत्येक गली-कूचों के कौतुक-प्रिय लोग दौड़े

जाते हैं। अत्यंत मूल्यवान् होता है। बहुत प्रशंसा के योग्य है। स्वजाति-प्रतिपालक को भी यह सब प्रशंसा शोभा देती है। सृष्टि के भीतर जीवन के Evolution (विकास) की दृष्टि से इसी quality (श्रेणी) की गति का प्रकाश (खनिजवर्ग और वनस्पतिवर्ग की अपेक्षा) पशुवर्ग में होता है, और मानवीय वेष के भीतर आध्यात्मिक जीवन के Evolution (विकास) के विचार से इसी श्रेणी की चेतनता जाति-पालक के जीवन को विविक्त करती है। अर्थात् प्राणिवर्ग (पशुओं) का शारीरिक जीवन और जाति-पालक का आध्यात्मिक जीवन एक ही श्रेणी का होता है, और वे एक ही वृत्त से निरूपित हो सकते हैं (उस वृत्त से, जिसमें घुड़दौड़ का घोड़ा चक्कर लगाता है)। और जो चेतनता (energy) का प्रकाश प्राणिवर्ग में होता है; जाति-प्रतिपालक मनुष्य में भी उसके अनुकूल और समतुल्य चेतनता का प्रकाश होता है। ऐसे महाशय की बदौलत कई परिवार तृप्ति और सुख पाते हैं, कई दोषों और कुरीतियों का जुआ उसके सजातियों की गर्दन पर से उतरता है। किसी जाति या समाज या सभा के लिये ऐसी उत्तम अभिलाषावाले का अस्तित्व सौभाग्य का चिह्न है। किंतु पाठको ! लूत की बीबी-वाले दृष्टांत को भूल न जाना, और न विज्ञान की इस बात को विस्मरण कर देना कि चेतनता का होना या न होना गतिशील शरीर के स्थान पर निर्भर नहीं होता, बल्कि गति के सुख (रुख़) पर अवलंबित होता है। और यह भी स्मरण रखना चाहिए कि शारीरिक जीवन के स्वास्थ्य का अनुमान जानदार के डील-डौल से लगाना बिलकुल अयुक्त है। किसी बच्चे आदि का डील छोटा देखकर बोल उठना कि उसका स्वास्थ्य ख़राब है (रोग-ग्रस्त है), और किसी बिछौने पर चित लेटे रोगी को देखकर कह देना कि इसका स्वास्थ्य अत्यंत उत्तम है, उचित

नहीं। बल्कि शरीर चाहे छोटा हो, चाहे मोटा (या लंबा), यदि अवनति की ओर धावमान है, तो जानदार का स्वास्थ्य अवश्य ख़राब है, और यदि उन्नति की ओर धावमान है, तो स्वास्थ्य अच्छा ही है। ठीक यही हाल आध्यात्मिक जीवन का है।

यदि कोई व्यक्ति ह वृत्त में जीवन यापन (व्यतीत) करता दृष्टिगोचर होता है, हर प्रकार के पापों में प्रवृत्त है, किंतु आज तोबा (पश्चात्ताप) करके अपना वृत्त विस्तृत करने को है, प्रेम के बाहु फैलाने में यत्नशील हो रहा है, तो वह व्यक्ति साक्षात् (Positive) गति प्रकट कर रहा है। उसके जीवन का मुख (दिशा) ठीक है, उसका आध्यात्मिक स्वास्थ्य उत्तम है। और यदि कोई महाशय, जिनका जीवन-वृत्त ज या ब से निरूपित हो सकता है, अर्थात् जो जाति-प्रतिपालक या देश-सेवक नाम पाते हैं, अपने sphere (वृत्त) में बराबर भ्रमण करते रहने पर इति कर रहे हैं, किंतु साथ-ही-साथ उस वृत्त को विस्तार नहीं दे रहे हैं [दूसरे शब्दों में उनकी पहली गति (velocity) में वर्धमानता (acceleration) नहीं बढ़ रही है], वे महाशय आध्यात्मिक रोगी हैं, अवनति-परायण हैं, उनकी जीवन-गति शीघ्र अभाव-रूप (negative) हो जायगी, गिरेंगे, अपने जीर्ण रोग से जाति की जाति को और देश-के-देश को हानि पहुँचाएँगे, और घोर पतन का कारण होंगे। वह जाति का नेता, जिसके मन में अपनी जाति ही समा रही है, अपनी जाति को जिस तरह होसके, उन्नति दिया चाहता है, जाति के कल्याण और भलाई के यत्न में तन-मन से संलग्न है, पर अन्य जातियों की कुछ परवा नहीं करता, वरन् अन्य जाति को अपनी जाति के अधीन बनाया चाहता है (स्वयं ब्राह्मण-सभा का होकर यह चाहता है कि ब्राह्मणों का तो अभ्युदय हो, शेष सब जातियाँ जायँ जहन्नुम को ; और स्वयं यदि कायस्थ-कान्फ्रेंस या आरोड़-वंश-सभा का है, तो कायस्थों

या अरोड़ों का राज्य लाने का इच्छुक है, शेष सब जातियों को पद-दलित करने पर तुला है; स्वयं आर्य-समाजी है, तो सनातन-धर्मियों और ब्रह्मसमाजियों के रक्त का प्यासा है, या सनातनधर्मी होकर आर्यसमाज आदि के नाम का कट्टर शत्रु है—इत्यादि-इत्यादि), ऐसा जाति-पालक, पेट-पालू और परिवारोपासक (दोनों) से डील-डौल में तो बढ़ा हुआ है, उनका बड़ा भाई है; किंतु है आध्यात्मिक रोगी। उसकी गति अभाव रूप होनेवाली है, अवनति की ओर धावमान है, उसका जीवन-वृत्त दिन बदिन संकीर्ण (तंग) होता जायगा, क्योंकि जो Sectarian (जाति-वादी या पन्थाई) अन्य जातियों से संग्राम करके अपनी जाति वा पन्थ को उन्नति दिलाना चाहता है, केवल इस सिद्धांत पर कि यह जाति 'अपनी है,' 'मेरी है,' वह आत्महत्यारा [आत्महत्यारा, क्योंकि व्यावहारिक रीति पर 'मैं' और 'स्वयं' अर्थात् आत्मा को (जो वस्तुतः शुद्ध, सर्वव्यापक और आनंदघन है) शरीर मानता है, जो मलिन और परिच्छिन्न है] जब अपनी जातिवालों में बैठेगा, तो अपने आप अपने सिद्धांत के अनुसार उस जाति में अपने कुटुंबवालों को प्रतिष्ठा दिलाने का प्रयत्न करेगा। मन में यह कहकर कि 'मेरा समीपी है', यह कुटुंब 'अपना है', 'मेरा है' और दूसरे कुटुंबों की शक्तियाँ छीनकर अपने कुटुंब का गौरव बढ़ाने में संकोच न करेगा। ऐसे महाशय का वृत्त ज से गिरकर द वृत्त में पड़ जाना कुछ कठिन बात नहीं है। और जो व्यक्ति अपने कुटुंब से केवल इस खयाल से प्रेम करता है कि यह कुटुंब 'मेरा है, अपना है', अर्थात् जो केवल शारीरिक संबंध को भान वा महसूस कर सकता है, उत्तम संबंध से बिलकुल अनजान है, वह अपने कुटुंब को शेष कुटुंबों पर गौरवान्वित करने में चाहे उद्यत हो, किंतु भय है कि जब अवसर पायगा, अपने भाइयों का स्वत्व छीनकर पेट-पालू के वृत्त में गिर जायगा।

कभी-कभी एक संस्था या संप्रदाय किसी सच्चे हृदयवाले (उन्नतिशील) महाशय की कृपा से कडुवी वेल की तरह बढ़ती है, फैलती है, किंतु शीघ्र उसमें फूट पड़ जाती है, उसके टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। इस पतन का प्रधान कारण प्रायः यही होता है कि उस मत के अनुयायी जो आरंभ में छोटे वृत्तों से उन्नति करते-करते उस वड़े वृत्त में प्रविष्ट हुए थे, वे आगे को उन्नति करने से विमुख रह जाते हैं, अपना स्वास्थ्य विगाड़ लेते हैं। इसमें उनका अपना अपराध समझ लो या उस मत के ideal (आदर्श) के छोटा होने का। इस नाशवान् संसार में एक अवस्था में स्थिर हो वैठने का अर्थ है मृत्यु। (भई ! जमकर वैठने-योग्य तो एक तेरा अपना सच्चा धाम-रूप सिंहासन ही है)। वह energy (उत्साह, शक्ति, आवेश) जो उन मतवादियों के जीवन-वृत्त को विशाल करने के लिये उन्हें दी गई थी, अपने समुचित कर्म में व्यय नहीं होती, परन्तु शक्ति-स्थिति (Conservation of energy) के सिद्धांत के अनुसार नष्ट भी भला कव होने की है ? तत्काल ईर्ष्या, डाह, क्रोध में परिवर्तित हो जाती है, और फूट का कारण होती है (जहाँ गाली-गलौज, कीना और फ़साद की दुर्गंध आ रही हो, समझ जाओ कि किसी आध्यात्मिक मृतक की दुर्गंध है)। बहुत वेर तो वात यहाँ तक विस्तार पकड़ती है और पक्षपात इस सीमा तक नेत्र वंद कर देता है कि धर्म की आड़ में शरीर-भाव शासन करता है, और एक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदाय की मूलोच्छेद करने को तत्पर हो जाता है, केवल इस विचार से कि 'यह मेरा नहीं है'; और यह दूसरा सम्प्रदाय पहले की मूल उखाड़ने को तुल जाता है, केवल इस कारण से कि यह अन्य का मत है। पर हाय री आत्महत्या ! हाय री ख़ुदकुशी ! दोनों भूल वैठे हैं कि उनका अपना आप तो Divine Truth Itself (केवल सत्य स्वरूप) है, उनका

अपना आप तो शत्रु का भी अपना आप है, शत्रु कहाँ ?

प्यारे भारतवासियो ! शत्रु को घायल किया चाहो, तो करो यह अभ्यास, पकाओ यह पाठ, याद करो यह संथा, realise (अनुभव) करो यह सच्चाई कि शत्रु तुमसे भिन्न (जुदा) नहीं है। जिस प्रकार से अपने आपको शरीर में हिप्नोटाइज़्ड (hypnotised, सम्मोहित) कर चुके हो (भ्रांति के वेग से अपने आपको गंदा देह बनाये बैठे हो), उसी तरह अपने शुद्ध स्वरूप में निष्ठा करो और देखो कि भयानक शत्रु के शरीर में मैं ही स्थित हूँ कि नहीं।

आत्मैव ह्यात्मनो बंधुरात्मैव रिपुरात्मना। (गीता ६—५)

अर्थ—अपना आप ही अपने आपका मित्र (बंधु या संबंधी) है; और अपना आप ही अपने आपका शत्रु है।

I appear as the enemy, I am the enemy, I am the enemy,

मैं ही शत्रु दृष्टिगोचर होता हूँ, मैं ही शत्रु हूँ, मैं ही शत्रु हूँ। शत्रु उड़ गए, शत्रु उड़ गए। ज्ञान के गोलों ने शत्रु उड़ा दिए। मैं ही मैं हूँ। एकमेवाद्वितीयम् हूँ। शुद्ध स्वरूप हूँ।

बेरंग कभू हो के दिखा दूँ तुझको।
तू गुल है, तो बू हो के दिखा दूँ तुझको॥
मैं आपसे जो अपने से फ़ुर्सत पाऊँ।
क्या और तो ? तू हो के दिखा दूँ तुझको॥

I am the monarch of all I Survey
My right there is none to dispute.

अर्थ—जहाँ तक दृष्टि जाती है, मैं सबका बादशाह हूँ, और मेरे स्वत्व पर कोई झगड़नेवाला नहीं।

ख़ुद ख़ुदा हूँ, शाहे-शाह हूँ, एक दिन और रात है।
सो रहे हैं हो के बेग़म, लात ऊपर लात है॥

कर·
अपने

सब शाहों का शाह मैं, मेरा शाह न कोय ।
सब देवों का देव मैं, मेरा देव न होय ॥
डंडा कुल पर है मिरा, क्या सुलतान अमीर ।
पत्ता मुझ बिन ना हिले, आँधी मेरी अलीर ॥
(س) सीन सुखी स्वरूप नूँ जान होय ।
सिरों लाह सुट्टे तीनों तापड़े जी ॥
तिनके तोड़ चौरासी दे चार कीते ।
जन्म मरण दे चुक्के सियापड़े जी ॥
दोषी दूसरा ग़ैर काफ़ूर होया ।
गोशे वस गए चुप चुपातड़े जी ॥
आठो याम हर हाल में मस्त फिरदे ।
जमदूताँ दे मारके मापड़े जी ॥

मनुष्य-रूप में मनुष्य-स्वभाव—अब व वृत्त की बारी आई। यह ज वृत्त से भी बड़ा है। ज जैसे कई वृत्त इसमें सम्मिलित हैं। इसकी वक्रता (Curvature) बहुत कम है, मार्ग सीधा-सा है, किंतु अभी कुछ टेढ़ापन शेष है, वक्रता अभी बिलकुल दूर नहीं हुई। यह वृत्त उन भाग्यशाली व्यक्तियों के जीवन-चक्र को निरूपण करता है, जो देश-भर के साथ वही स्नेह और प्रीति रखते हैं, जो पेट-पालू अपने पेट के साथ, कुटुंब-पालू एक कुटुंब के साथ, और जाति-पालक एक जाति के साथ रखता है; जिन्होंने अपने समस्त समय और ध्यान को देश की भलाई के लिये अर्पित कर दिया है; जिनको अपने देश की धूलि तक प्यारी है; और जो caste, colour or creed (जाति, वर्ण और मत) की अपेक्षा के बिना ही अपने देश के प्रत्येक व्यक्ति को अपने सगे भाई के समान प्रिय समझते हैं। इस वृत्त में गतिशील मनुष्य का गति-केन्द्र बिंदु 'य' (शरीर) से बहुत अधिक दूरी पर होता है, और उसका जीवन-वृत्त अत्यंत विस्तृत होता

है। देश-सेवक की जीवन-गति को वृत्त-विस्तार के विचार से हम चंद्रमा की गति से तुलना दे सकते हैं। देश-सेवक वह है, जो भूखों मरते (दरिद्र) देशवासियों के लिये चंद्रमा की तरह ईद (उत्सव-तिथि) हो, या जो देश की दारिद्र्य-निशा में चारों ओर प्रकाश का जल बरसा दे, यद्यपि उसकी उदारता का यह प्रभाव न हो सके कि रात्रि मिट जाय (दिन आ जाय)। और जिस तरह उजियाली की बदौलत पौदों में रस भरता है, वैसे ही देश-सेवक की बदौलत गृहस्थ लोगों को अमन-चैन और प्रसन्नता प्राप्त होती है। आध्यात्मिक जीवन के विकास (Evolution) में देश-हितैषी वा देश-सेवक (आध्यात्मिक वनस्पतिवर्ग आदि की अपेक्षा) असल मनुष्य की श्रेणीवाला है, भीतर-बाहर मनुष्य है। उसका काम मनुष्य का है और नाम मनुष्य का है।

मरना भला है उसका, जो अपने लिये जिये।
जीता है वह, जो मर चुका इनसान के लिये॥

"Breathes there a man with heart so dead
Who never to himself hath said
'Tis my own, my native land. (scott)"

अर्थ—क्या कोई मनुष्य ऐसा मृत-चित्त है, जिसने अपने मन में कभी ऐसा न कहा हो कि यह स्वदेश मेरा अपना है।

ऐ भारत! तेरे शिवाजी, गुरु गोविंदसिंहजी और राना प्रतापजी कहाँ तक सोते रहेंगे? यदि स्वदेश-प्रीति (the spirit of patriotism) का पाठ भी और वस्तुओं की तरह अँगरेज़ों ही से लेना स्वीकार है, तो क्यों नहीं उस डॉक्टर के वृत्तान्त को हृदय-दर्पण पर अंकित बना रखते, जिसकी स्वदेश-प्रीति की बदौलत भारत-साम्राज्य में अँगरेज़-जाति के पैर दृढ़ रूप से आ जमे। यद्यपि पाठकों ने इतिहास में कई बेर यह उल्लेख पढ़ छोड़ा होगा, किंतु निज जीवन में बरत कर भविष्य इतिहास के

पृष्ठों पर स्वदेश-प्रीति की स्मृति स्वयं छोड़ने का संकल्प नहीं कर लिया, तो मानों इस वृत्तांत को स्वप्न में भी नहीं पढ़ा। एकांत में अध्ययन करने और पढ़कर अपनी नस-नाड़ियों में प्रविष्ट करने के लिये मौलाना आज़ाद की कविता में से यह भाग पाठकों की भेंट किया जाता है—

फ़र्रुख़सियर था हिंद में फ़रमा रवाए-मुल्क।
और रश्के-नसीमो सबा थी हवाए-मुल्क॥
पर हिंद पर था हादसा-ए-ग़म अजब पड़ा।
यानी कि बादशाह था ख़ुद जाँ बलब पड़ा॥
इस तरह का फ़ितूर पड़ा था मिज़ाज में।
था मुब्तिला वह इक मरज़े-लाइलाज में॥
सब अहले-अक़्लो होशो हवास अपने खो चुके।
सारे तबीब हाथ इलाजों से धो चुके॥
पर इस मसीह-दम ने जो आकर किया इलाज।
ऐसा बहस्ब-तबा मुआफ़िक़ पड़ा इलाज॥
गोया दवा बकारे-दुआ हो गई उसे।
और तीन-चार दिन में शिफ़ा हो गई उसे॥
नौबत ख़ुशी की बज गई सारे जहान में।
और जान ताज़ा आ गई इक-इक की जान में॥
फ़र्रुख़सियर कि शाहे-सख़ावत म्आब था।
बहरे-करम का जिसके झकोला सहाब था॥
इक जश्ने-आम उसने किया धूम-धाम से।
और शोर तहनियत का उठा ख़ासो आम से॥
हाज़िर हुए अमीरो वज़ीर आ के सामने।
और उस तबीब को कहा बुलवा के सामने॥
ला दामने-उम्मेद कि भर दें अभी उसे।
ता उम्र-भर न पाए तू ख़ाली कभी उसे॥

दरियादिली तबीब की देखो मगर ज़रा।
डाली न उसने लालो गुहर पर नज़र ज़रा॥
हुब्बुलवतन के जोश से बेताब हो गया।
दिल आब होके सीने में सीमाब हो गया॥
की अर्ज़ हाथ जोड़ के खिदमत में शाह की।
बंदा को आरज़ू नहीं कुछ इज़्ज़ो जाह की॥
ज़र की हवस न माल की है जुस्तजू मुझे।
पर आरज़ू जो है, तो यही आरज़ू मुझे॥
कुछ ऐसा मेरे वास्ते इनआमे-आम हो।
जिससे मेरा तमाम वतन शाद-काम हो॥
बोला यह शाह इसका भी तुझ पर मदार है।
जो माँगना है माँग, तुझे इख़्तियार है॥
तब अर्ज़ की तबीब ने यूँ बादशाह से।
रोशन जलाले-शाह व हो खुरशेदो-माह से॥
थोड़ी ज़मीन नवाहिये[1]-दरिया-किनार में।
मुझको अता हो ममलिकते-शहरयार में॥
ता इस तरफ़ जो मेरे वतन के जहाज़ आयें।
और उनमें ताजरान ज़ुले इम्तयाज़[2] आयँ॥
कुछ उनपै होवे राह न बीमे-ज़वाल को।
आराम से उतारें यहाँ अपने माल को॥
और जिन्स जो कि लाएँ वह नज़दीको दूर से।
महसूल सब मुआफ़ हो उसका हुज़ूर से॥
दम उस मसीह-दम का बहुत कारगर पड़ा।
यह नुस्ख़ा बल्कि सबसे सिवा पुर-असर पड़ा॥
हरचंद उसे न फ़ायदए-सीमो[3] ज़र हुआ।
पर नफ़ा बहरे-अहले वतन किस क़दर हुआ॥

१ नदी तट के समीप। २ प्रसिद्ध। ३ सोना-चाँदी।

दामन में इक अताए खुदादाद पड़ गई।
और सल्तनत की हिंद में बुनियाद पड़ गई ॥
ऐ आफ़ताबे-हुब्बे-वतन ! तू किधर है आज ?
तू है किधर कि कुछ नहीं आता नज़र है आज ॥
ठंडे हैं क्यों दिलों में तेरे जोश हो गए ?
क्यों सब तेरे चिराग़ हैं खामोश हो गए ?
हुब्बे-वतन की जिन्स का है क़हतसाल क्यों ?
हैराँ हूँ आजकल है पड़ा इसका काल क्यों ?
कुछ हो गया ज़माने का उल्टा चलन यहाँ।
हुब्बुलवतन के बदले है बुग़्ज़लवतन यहाँ ॥
बिन तेरे मुल्के-हिंद के घर बेचिराग़ हैं।
जलते इबज़ चिराग़ों के सीने में दाग़ हैं ॥
कब तक शबे-सियाह में आलम तबाह हो।
ऐ आफ़ताब ! इधर भी करम की निगाह हो ॥
आलम से ताकि तीरादिली दूर हो तमाम।
पंजाब तेरे नूर से मामूर हो तमाम ॥

(अज़ मजमूआ-ए-नज़्मे-आज़ाद)

परंतु पाठक ! माना कि स्वदेश-रक्षक का जीवन अत्यंत उच्च कोटि का है, और उसका जीवन-वृत्त भी अत्यंत विस्तृत होता है, परंतु यह वृत्त अभी और भी विस्तृत होने की योग्यता रखता है। सीधी रेखा नहीं बना। यद्यपि क्षेत्र बहुत घेरे हुए है, परंतु उस क्षेत्र के सिवा शेष समस्त धरातल से मुँह फेरे हुए है। देश-संरक्षक (John Bull) अपने इँगलैंड के अधिकार में अगर चंद्रमा है, तो फ्रांस और स्पेन आदि के लिये राहु (ग्रहण) से कम नहीं। और इस वृत्त में निवास करनेवाला देश-गौरव-स्वरूप (फ़ख़रे-मुल्क) पूर्वोक्त समस्त वृत्तों में गतिशील आढ्यों से ज्येष्ठतम तो अवश्य है, किंतु रोगी हो जाने पर (अर्थात्

अपने वृत्त को अधिक विस्तार देने की योग्यता खो बैठने पर) समस्त देश की सत्यानासी का कारण होता है। पेटपालू से तो प्रायः एक कुटुंब के मनुष्य दुःख पाते हैं, कुटुंबोपासक बिगड़ बैठे, तो एक कुटुंब को दूसरे परिवार से भिड़ाएँगे, जाति-प्रति-पालक ख़राब हो जायँ, तो एक समाज वा जाति को दूसरी समाज, जाति या सभा से लड़ाएँगे, और सैकड़ों या सहस्रों स्त्री-पुरुषों के मनों में ईर्षा-द्वेष की अग्नि प्रज्वलित करेंगे; परन्तु सोकाल्ड (नाम-मात्र) देश-संरक्षक (देश-भक्त) जो कृपा-दृष्टि के बड़े-बड़े कणों (बूँदों) की भाँति देश को सींचते आ रहे थे, यदि अपनी अवस्था में जम जायँ, तो मानों भारी पत्थर बनकर देश पर ओले बरसाएँगे, हिम-वृष्टि (Snowfall) नहीं, बल्कि शिला-वृष्टि (hail-storm) से देश-निवासियों के धुएँ उड़ाएँगे, सहस्रों बल्कि लक्षों भगवान् के जीवों (बंदों) के सिर कटवाएँगे, एक देश को दूसरे देश के अधीन करने के लिये रक्त की नदियाँ बहाएँगे, स्वयं इंद्रियों की दासता करने के लिये दूसरे देशवालों की स्वतंत्रता का नाम मिटाएँगे। हाय शोक !

प्यारे ! स्वतंत्रता के इच्छुक हो, तो संसार रूप कारागार में उसे मत ढूँढ़ो। देश के स्वामी बन जाने पर भी स्वतंत्रता नहीं प्राप्त होने की। अपने स्वरूप को समझो, स्वतंत्रता मिलेगी ; किसी प्रकार की क़ैद पल्ला न पकड़ेगी ; अपने आपको वही परम स्वतंत्र पाओगे कि जिसके साधारण भ्रू-विक्षेप (भौं के हिलने) से राव-रंक, अस्ति-नास्ति (व्यक्त-अव्यक्त) होते हैं, जिसके अक्षि-संकेत व कटाक्ष (wink and gesture) पर देश, काल और वस्तु (Time, Space and Causality) का अस्तित्व अवलंबित है। तुम्हारी ही पलक मारने (चश्म ज़दन) में सृष्टि का उद्भव, स्थिति और संहार है। धन्य है जगत्-आदरणीय दृष्टि ! धन्य है जादू-भरे नेत्र-कमल !

अमी-हलाहल-मद-भरे श्वेत, श्याम, रतनार ;
जियत, मरत, झुकि-झुकि परत, जे चितवत इक बार ।

प्यारे, ज़रा जाग तो सही ! अपनी महिमा (glory) रूपी घोड़े बेचकर अविद्या रूपी वेश्या से आलिंगन कर कब तक तू सोया रहेगा ? श्रुति भगवती तेरे सिरहाने बैठ तुझे मोह-निद्रा से जगाने के लिये ऊँचे स्वरों में तेरी महिमा के गीत गा रही है ; पर हाय ! तेरे कान पर जूँ तक नहीं रेंगती ।

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳशुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ (ई० ८)

है मुहीत[1]-मनज़्ज़ा[2] व बे ग्रयदाँ[3] ।
रगो[4] पे है कहाँ ? हमा बीं[5] हमाँ दाँ[6] ॥
वह बरी[7] है गुनाहों[8] से रिंदे ज़माँ[9] ।
बदो नेक[10] का उसमें नहीं है निशाँ ॥
वह बुज़ुर्ग-बुज़ुर्गों[11] है राहते-जाँ[12] ।
वह है बाला से बाला[13] व नूरे-जहाँ[14] ॥
वही ख़ुद है जिनाँ[15] व मूँ ज़ बेयाँ[16] ।
दिये उसने अज़ल[17] में हैं रंगतो शाँ[18] ॥
यही राम है दीदों[19] में सबके निहाँ[20] ।
यही राम है बहरो[21] बेबर[22] में अयाँ[23] ॥

मृतकों से बाज़ी बदकर सोने का खेल अब बंद करो। एक बेर इंद्र (सब देवताओं का राजा) स्वप्न में शूकर बनकर खुजली आदि तरह-तरह के रोगों में फँस गया। शेष देवताओं ने अपने स्वामी

---

१ व्यापक, २ शुद्ध, पवित्र, ३ देह-रहित, ४ अंगर-हित, ५ त्रिकालदर्शी, ६ सर्वज्ञ, ७ मुक्त, ८ पाप, ९ मस्त, १० पाप-पुण्य, ११ महान् से महान्, १२ सुख-दायक, १३ सर्वोत्तम, १४ संसार की ज्योति, १५ स्वर्ग, १६ अकथनीय, १७ कल्प के आदि में, १८ भाँति-भाँति के रूप, १९ नेत्र, २० गुप्त, २१ समुद्र, २२ पृथिवी, २३ प्रकट ।

की जब यह गति देखी, तो लज्जित हुए और घबराए। अंततः इंद्र की स्वप्नावस्था में आ उपस्थित हुए, और एक ने निकट आकर कहा—"महाराज, यह क्या? आप अप्सराओं को भूल गए!" दूसरे ने कान में कहा—"चन्द्रलोकपति! देवराज! यह क्या? आप अमृत-रस को बिसार बैठे!" तीसरा बोला—"शरणागतवत्सल! यह क्या? आप अपनी इंद्र-पदवीवाले जटित सिंहासन को स्मृति से खो बैठे!" इत्यादि। इंद्र ने इन सबके उत्तर में सिर हिलाया और अपने शूकरवाले मुख और वाणी के स्वर में कहा—"हुवाँ! हुवाँ!" मानों अपनी वाणी से प्रत्यक्ष यह जतलाया कि "शूकरनी, विष्ठा और कीचड़ जो इस समय मुझे आनंदित कर रहे हैं, इनसे उत्तम अप्सरा, अमृत और सिंहासन भला क्या होंगे! हे देवतागण! अपने सिंहासन-विंहासन को तुम अपने घर रक्खो, हमें तो कीचड़ में लिथड़ना (निमग्न होना) फूलों के बिछौने पर लोटने से अधिक भाता है।" वाह! मेरे प्यारे! तेरा अपना आप तो इंद्र का भी इंद्र है। तू सांसारिक स्वप्न में फँसकर मृत्यु को चिकित्सक (वैद्य) और रोग को अपनी दवा क्यों समझ रहा है?

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत। (क०, उप० १—३—१४)

अर्थ—उठो, जागो, ज्ञानियों के पास जाओ और आत्मज्ञान प्राप्त करो।

सर बिनह बर कफ़ बया ऐ ग़ाज़िया!
ख़्वाब रा बिगुज़ारो ख़ुद रा कुन रिहा॥

अर्थ—ऐ ग़ाज़ी (शूरवीर)! सिर हथेली पर रखकर आ। मूर्खता की निद्रा छोड़, और अपने आपको स्वतंत्र कर।

उठ जाग घुराड़े मार नहीं।
एह सौन तेरे दरकार नहीं॥

सबका संक्षेप

वृत्त	गति	जीवन	काम या नाम
ह	लट्टू	खनिजवर्ग	पेट-पालू
द	कोल्हू का बैल	वनस्पतिवर्ग	कटुंब-पालक
ज	घुड़दौड़ का घोड़ा	प्राणि (पशुवर्ग)	जाति-प्रतिपालक
व	चंद्रमा	मनुष्य	देश-भक्त (नेता)
अ	सूर्य (زندہ جاوید) वक्रता नितान्त दूर	परमात्मा	ज्ञानवान्, आत्मदर्शी

अमर पुरुष—ऐ प्रकृति ! अपने पुरुप के दर्शन कर ले। ऐ तारागण के भूषण ! तुम इस सूर्यों के सूर्य पर न्योछावर हो जाओ। अंधकार ! भाग। ओ आशा-पुष्पोद्यान (गुंचहाये-चमने-उम्मेद) ! आँखें खोलो, विश्वप्राण की महिमा देखो। मूर्खता के बिछौने पर अँगड़ाइयाँ लेनेवालो ! तुम्हारे नेत्र-कमल क्यों नहीं खुलते ? अपनी ही आँखों के प्रकाश को बाहर देख लो। स्वप्नावस्था में संकल्पों के अढ़ाई चावल कहाँ तक पकाओगे ? रात तो हो चुकी। संसार-वाटिका के विहंगो ! आनंद-भरे सोहले (गीत) गाए जाओ, दुल्हा (सूर्य-रूप ज्ञानवान्) का जलूस (उपगमन वा सिंहासनारोहण) का समय आ रहा है। ऐ धरती और आकाश ! दुल्हा के लिये गुलाल (उबटना) तैयार करो। बासंती समीर (बादे-बहारी) ! रंगरलियाँ मनाए जाओ। कृपा-वृष्टि के मेघ ! सड़क पर पानी छिड़क। हरितपटावृत्ता दुलहिन (वृक्षों) ! बन-ठन अपने कानों (फूलों) में मोती (ओस-कण) सजा, निखरकर (प्रतीक्षा में) पंक्तिविन्यस्त हो जाओ। joy ! joy !! joy !!! (आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!)

नरगिस बचमन राहे कि मेदीद ख़ुदा।
गोशे-गुल आमदनी हाय कि असग़ा मे कर्द ॥

अर्थ—ऐ ख़ुदा ! नरगिस (नेत्र) बाग़ में किसकी प्रतीक्षा कर रही है, और फूल (कर्ण) किसके आने की राह में झुके हुए (ध्यान लगाये हुए) हैं ?

किसका आगत-स्वागत है ? उसका, जो पहले ही सर्वत्र विद्यमान है, सूर्य के जीवनवाला ज्ञानवान् ।

आफ़ताब अस्त आफ़ताब अस्त आफ़ताब ।
ज़र्रहा दारंद अज़ ओ रंगो ताब ॥
मुत्तिला-ए-दीदारे-हक़ दीदारे-ओ ।
मस्त्रए-गुफ़्तारे-हक़ गुफ़्तारे-ओ ॥

अर्थ—वह सूर्य है, वह वस्तुतः सूर्य है, और उसके कारण से समस्त परमाणुओं में वर्ण और प्रकाश है । उसका दर्शन सत्य के दर्शन का उदयाचल है, और उसकी वार्तालाप सत्य की वार्तालाप का स्रोत है ।

यही सूर्य रूप ज्ञानवान् (ब्रह्मनिष्ठ) है, जो पहाड़ और नदी में लाल और मोती बनाता है, पत्ते-पत्ते को प्रफुल्लता प्रदान करता है, प्राणियों (जीवधारियों) में प्राण डालता है, मनुष्य में जीवन की श्वास फूँकता है, भूमि इसी वास्तविक सूर्य से निकला हुआ एक स्फुलिंग है, नक्षत्र सब इसी के आकर्षण से गतिमान् हैं ।

सूरज को सोना चाँद को चाँदी तो दे चुके ।
फिर भी तवायफ़ करते हैं, देखूँ जिधर को मैं ॥
तारे झमक-झमकके बुलाते हैं राम को ।
आँखों में उनकी रहता हूँ, जाऊँ किधर को मैं ॥

यह अमर पुरुष (चिद्घन, the Source of all energy) जिस देश में चमकता है, उस देश का आध्यात्मिक जीवन स्थिर रहेगा । सूर्य की तरह यह विज्ञान रूप महापुरुष प्रत्यक्ष में कुछ न करता हुआ भी क्या पेट-पालू, क्या कुटुंबपालू, जाति-प्रतिपालक

या देश-भक्त, सबको जीवन पहुँचानेवाला होता है; प्रत्येक की छाती में, प्रत्येक के मस्तिष्क में, प्रत्येक की आँखों में इसका वास है; क्या अमीर के और क्या फक़ीर के नाम-रूप और नस-नाड़ी की विद्यमानता इसी के सहारे है; शरीरों की कोठरियों के भीतर भले या बुरे विचार कणों की भाँति इसी प्रकाशों के प्रकाश की stray beams (प्रविष्ट रश्मियों) में निवास वा स्थिति रखते हैं।

नहनों अक़रबो अलहमिन हबलुलवरीद । (अल्लाह शाह रग थीं नज़दीक)

नाचूँ मैं, नटराज रे—नाचूँ मैं महाराज !

सूरज नाचूँ, तारे नाचूँ, नाचूँ बन महताब रे—नाचूँ मैं०
तन तेरे में मन हो नाचूँ, नाचूँ नाड़ी-नाड़ रे—नाचूँ मैं०
बादर नाचूँ, बायू नाचूँ, नाचूँ नदी अरनाव रे—नाचूँ मैं०
ज़र्रा नाचूँ, समुद्र नाचूँ, नाचूँ मोघर काज रे—नाचूँ मैं०
मधुवा लय बदमस्तीवाला, नाचूँ पी-पी आज रे—नाचूँ मैं०
वर लागो रँग, रँग वर लागो, नाचूँ पा-पा दाज रे—नाचूँ मैं०
राग गीत सब होवत हरदम, नाचूँ पूरा साज रे—नाचूँ मैं०
राम ही नाचत राम ही बाजत, नाचूँ हो निर्लाज रे—नाचूँ मैं०

नज़र ब हर कि कुनम, सूए-ख़ुद हमे बीनम।
बहर कि मे निगरम रूए-ख़ुद हमे बीनम॥
ब जुज़ व कुल हमा मामूरम अज़ ज़मीनो-ज़माँ।
ब जानबे कि रवम कूए-ख़ुद हमे बीनम॥

अर्थ—जिस ओर मैं दृष्टि डालता हूँ, अपना ही मुख देखता हूँ, और जिस किसी को देखता हूँ, मैं अपना ही चेहरा देखता हूँ। देश और काल से मैं समस्त व्यष्टि और समष्टि में भरपूर हूँ, और जिस ओर मैं जाता हूँ, अपनी ही गली (निवास-स्थान) पाता हूँ।

सम्पूर्णं जगदेव नन्दनवनं सर्वेऽपि कल्पद्रुमाः ।
गाङ्गं वारि समस्तवारिनिवहाः पुण्याः समस्ताः क्रियाः ।
वाचः प्राकृतसंस्कृताः श्रुतिशिरो वाराणसी मेदिनी ।
सर्वावस्थितिरस्य वस्तुविषया दृष्टे परे ब्रह्मणि ॥

अर्थ—परब्रह्म का साक्षात्कार होने पर समस्त जगत् उसके लिये इंद्र का वन है, सब वृक्ष कल्पद्रुम, सब जल उसके लिये गंगाजल हैं, सब कर्म पुण्य देनेवाले, सब बोलियाँ (वाणियाँ) उसके लिये संस्कृत हैं, महावाक्य काशी है, सब जड़ पृथिवी उसके भोगने की वस्तु है ।

अहाहाहा !

कहूँ क्या हाल इस दिल का कि शादी मौज मारे है ।
है इक उमड़ा हुआ दरिया, अहाहाहा ! अहाहाहा !!
शबे-महताबो बादे-खुश, लबे-दरिया सनम दर बर ।
चसाँ दानंद हाले - मा ग़रीक़ाने - तमव्वजहा ॥

अर्थ—उजाली रात है, ठंढी वायु है, नदी का तट है, और प्यारा पार्श्व में है । ऐसी दशा में संसार-चिंता की तरंगों में निमग्न मनुष्य हमारी दशा का क्या अनुमान कर सकते हैं ।

The World of spirits no clouds conceal ;
Man's eye is dim, it can not see.
Man's heart is dead, it can not feel.
Thou, who wouldst know the things that be,
The heart of Earth in the Sunrise red.
Bathe, till its stains of Earth are fled.

(Goethe)

अर्थ—अध्यात्म-जगत् (ब्रह्मलोक) को बादल (सांसारिक लज्जादि का आवरण) नहीं छिपा सकते ; केवल मनुष्य की दृष्टि पर धुंध छाया हुआ है, इसलिये वह नहीं (इस जगत् को) देख

सकती। मनुष्य का मन मुर्दा है, इसलिये वह इस (लोक वा ब्रह्मानन्द की अवस्था को) अनुभव नहीं कर सकता। ऐ मनुष्य! यदि तू इन होनेवाली अवस्थाओं (या वस्तुओं) को जानना चाहता है, तो संसार के हृदय (पृथ्वी के खयाल मात्र) को सूर्योदय (ज्ञान के सूर्य) में खूब धो, और यहाँ तक धो कि संसार का चिह्न-मात्र भी अपने चित्त से उतर जाय (या भाग जाय)।

वह है राजमार्ग पर चलनेवाला नारायण रूप ब्रह्मज्ञानी, जिसका अपना आप, पिता, माता, पुत्र, घर-बार और समस्त सम्पत्ति-वैभव, सब कुछ ब्रह्म ही ब्रह्म है।

तुरा गोयम तुरा दानम तुरा बीनम तुरा ख्वानम।
मन तो शुदम तो मन शुदी मन जाँ शुदम तो तन शुदी।
ता कस न गोयद बाद अज़ीं, मन दीगरम तो दीगरी॥

अर्थ—तुझे ही कहता हूँ, तुझे ही जानता हूँ, तुझे ही देखता हूँ, और तुझे ही पढ़ता हूँ। मैं तू हुआ, तू मैं हुआ, मैं प्राण हुआ, तू शरीर हुआ, मैं और तू ऐसे अभेद हुए कि उसके बाद कोई यह न कह सके कि मैं और हूँ, तू और है।

आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः।
(मुंडकोपनिषद् अ० १-मं० २)

अर्थ—जो मनुष्य आत्मा (अपने स्वरूप) में ही खेलता हुआ, आत्मा (अपने आप) ही में आनंद लेता हुआ समस्त कार्यों को संपादन करता है, वह सब ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी है।

सुबाहे-ईद कि मरदम ब कारो-बार रवंद।
बलाकशाने-मुहब्बत ब कूए-यार रवंद॥

अर्थ—सवेरे जबकि और मनुष्य संसार के काम-काज में प्रवृत्त होने के लिये जाते हैं, तो प्रेम का कष्ट सहन करनेवाले अपने यार (प्यारे) की गली में जाते हैं।

क्या प्यारे शब्दों में सुखमनी साहब में अमर पुरुष का चित्र दिखाया है—

ब्रह्मज्ञानी का भोजन ज्ञान। नानक ब्रह्मज्ञानी का ब्रह्म ध्यान॥
ब्रह्मज्ञानी सदा निर्लेप। जैसे जल में कमल अलेप॥
ब्रह्मज्ञानी सदा निर्दोप। जैसे सूर सर्व को सोख॥
ब्रह्मज्ञानी निर्मल ते निर्मला। जैसे मैल न लागे जला॥
ब्रह्मज्ञानी सदा समदर्शी। ब्रह्मज्ञानी की दृष्टि अमृतवर्षी॥
ब्रह्मज्ञानी संग सकल उद्धार। नानक ब्रह्मज्ञानी को जपे सकल संसार॥
ब्रह्मज्ञानी सदा सद जागत। ब्रह्मज्ञानी अहंबुद्धि त्यागत॥
ब्रह्मज्ञानी के मन परम आनंद। ब्रह्मज्ञानी के घर सदा आनंद॥
ब्रह्मज्ञानी का दर्शन बड़भागी पाइये। ब्रह्मज्ञानी को बल बल जाइये॥
ब्रह्मज्ञानी को खोजे महेश्वर। नानक ब्रह्मज्ञानी आप परमेश्वर॥
ब्रह्मज्ञानी का कथ्या न जाय अधाखर। ब्रह्मज्ञानी सर्व का ठाकर॥
ब्रह्मज्ञानी की मत कौन बखाने। ब्रह्मज्ञानी की गत ब्रह्मज्ञानी जाने॥
ब्रह्मज्ञानी का अंत न पार। नानक ब्रह्मज्ञानी को सदा नमस्कार॥
ब्रह्मज्ञानी सब सृष्टि का कर्त्ता। ब्रह्मज्ञानी सद जीवे नहीं मरता॥
ब्रह्मज्ञानी मुक्त जुगत जी का दाता। ब्रह्मज्ञानी पूरन पुरुष विधाता॥
ब्रह्मज्ञानी अनाथ का नाथ। ब्रह्मज्ञानी का सब ऊपर हाथ॥
ब्रह्मज्ञानी का सकल आकार। ब्रह्मज्ञानी आप निरंकार॥

प्रश्न—ज्ञानवान् तो हमारी तुम्हारी तरह अपवित्र शरीरवाला परिच्छिन्न होता है, वह इस उत्तम प्रशंसा का पात्र क्योंकर हो सकता है?

उत्तर—नारायण! ज्ञानवान् एक शरीर में बद्ध नहीं होता।

वह मौजूद रहता है हर रंग में।
कभी आब में और कभी संग में॥

इस भेद को वही जानता है, जिसके ऊपर बीती हो।

भई रे मीराँ प्रेम दिवानी, मेरा मर्म न जाने कोय।
सूली ऊपर सेज पिया दी, कित विध मिलना होय॥

तुम्हारी दृष्टि में एक विशेष शरीर उसका है और दूसरा शरीर किसी और का; किंतु उसके यहाँ तो एक ही मामला है। यह शरीर उसका अधिक अपना नहीं है, और वह उसका कम सगा नहीं है, उसकी दृष्टि में तो शरीर-बरीर हैं ही कहाँ; बुरा कह दो, भला कह दो; काट दो बदन को, टुकड़े कर दो यदि बल हो, तो उसका क्या बिगड़ता है।

यह जिस्म अपना न ऐ बदगो ! तसव्वर महज़ है तेरा।
हमारा बिगड़ता है क्या ? अहाहाहा ! अहाहाहा !!

लोग समझते होंगे कि मंसूर को सूली पर चढ़ाया, शम्स की खाल उतारी; और ऐसा करने से उनको मार डाला, पर हाय कहाँ ?

सूली सलीब शहर दे मुक्के,
कदे न मुकदा जो, फ़क़ीरा आपे अल्लह हो।
दार पर चढ़कर कहा मंसूर ने। आज अपना बोलबाला हो गया॥
मरे न टरे न जरे, हरे तम, परम आनंद सो पायो।
मंगल मोद भरयो घट भीतर, गुरु श्रुति ब्रह्म त्वमेव बतायो॥
न मे मृत्युशंका न मे जातिभेदः पिता नैव मे नैव माता न जन्म।
न बन्धुर्न मित्रं गुरुर्नैव शिष्यश्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्॥
(श्रीशंकराचार्यकृत स्तोत्र)

अर्थ—न मुझे मृत्यु का भय है, न कोई सांसारिक जाति-पाँति का भेद (अन्तर) है; न मेरा कोई पिता ही है और न माता ही है, और न जन्म ही हुआ है; इसलिये न कोई संबंधी, न मित्र, न गुरु, और न शिष्य मेरा है, वरन् मैं तो इन समस्त संबंधों (नाम-रूपों) से विमुक्त हुआ सच्चिदानंद-स्वरूप हूँ, शिव हूँ, शंकर हूँ।

इधर श्रुति डंके की चोट पुकार रही हैः—

"अयमात्मा ब्रह्म"। (माण्डूक्योपनिषद् मं० २)

अर्थ—यह आत्मा ब्रह्म है।

"ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः।
अनेन वेद्यं सच्छास्त्रमिति वेदान्तडिंडिमः॥"

(ब्रह्मनामावली)

अर्थ—ब्रह्म सत्य और संसार झूठा है, और जीव और ब्रह्म में वस्तुतः भेद नहीं है, इसी से सच्छास्त्र जानने के योग्य हैं, यह वेदांत का ढिंढोरा है।

उधर पत्ता-पत्ता और परमाणु-परमाणु ढोल पीटकर कह रहा हैः—

"तत्त्वमसि", "तत्त्वमसि"। (छांदो० उप० प्रपा० ६, खं० ८)

अर्थ—वह (स्वरूप, हे प्यारे!) तू है, वही वस्तुतः तू है।

अज़ माह ता बमाही, हाकिम तुई ओ शाही।

अर्थ—चंद्रमा से मछली तक अर्थात् आकाश से भूमि तक ऐ प्यारे! तू ही शासक और बादशाह है।

भूमि के प्रत्येक नस में मैं ऐसा भरा कि बेचारी के उदर में मैं अब समा नहीं सकता, उसका शरीर फट रहा है, और मुझे धक्के खाकर वनस्पतिवर्ग के रूप में बाहर आना पड़ता है। पानी में जाकर शरण ली, सरोवर, झील, नदी सब मुझ मत्स्य (भगवान्) से ऐसे भरे कि उनके अपने लिये स्थान न रहा, उड़ गए, मैं ही मैं रह गया।

अजब यक दुर्रे-नायाबम कि दर दरिया न मे गुंजम।
चे तुर्फ़ा आहुए हस्तम कि दर सहरा न मे गुंजम॥

अर्थ—मैं एक ऐसा सुंदर मोती हूँ कि किसी नदी में नहीं समा सकता, और ऐसा विचित्र मृग हूँ कि वन में नहीं समा सकता हूँ।

समुद्र के प्रत्येक विंदु में जा धँसा, वहुतेरा अपने आप को कूट-कूटकर भरा है, पर हाय! वहाँ भी मुझे सिर छिपाने को स्थान नहीं। वावना-सा समझकर समुद्र ने पुष्प की भाँति मुझे अंक में लेना चाहा, आँखों में समोना चाहा, परंतु अंक ही टूट गया।

दामाने-निगह तंग व गुले-हुस्ने तो विसयार।
गुलचीं वहारे-तो ज़ दामाँ गिला दारद॥

अर्थ—दृष्टि का दामन तो तंग है और तेरे सौंदर्य के सुमन बहुत हैं। तेरी शोभा के प्रसून (पुष्प) चुननेवाला पल्ले की तंगी (संकुचन) की शिकायत करता है।

मेरी भरमार के कारण समुद्र के वंद-वंद में कठोर पीड़ा होने लगी, वेचारा मरोड़े खा रहा है, लगातार अपने शरीर को उछाल-उछाल मार रहा है, हूहू-हाहा का कोलाहल मचा रहा है।

एक आकाश का वुदवुदा है। मुझ प्राण रूपी वायु की समाई उसमें भी कहाँ ? उस वेचारे का उदर मुझको लेकर फूला फूला, आख़िर कहाँ तक ? लो, वह भी फूट गया, मुआ घर टूट गया। वेघर का हूँ। नख-शिख विलापी हूँ। मेरे लिये कोई घर न रहा। अव कहाँ जाऊँ, क्या वनाऊँ ? पर हाय! सुनाऊँ किसको ? दूसरा कोई नहीं, दूसरा कोई नहीं, एकमेवाद्वितीयम् (वहदहु लाशरीक) हूँ।

आप ही आप हूँ याँ ग़ैर का कुछ काम नहीं।

शब्द हुआ—जाओ जहन्नुम में।

राम—जहन्नुम मेरे ध्यान ही करने से जहन्नुम को सिधारता (भागता) है, नितान्त नाश हो जाता है, नाम को भी नहीं रहने पाता। (आनंदस्वरूप हूँ)। समय मेरा ऐसा घोर शत्रु है (कालानवच्छिन्न हूँ) कि जहन्नुम में जाऊँ तो जहन्नुम वहाँ नहीं रहता, मुझे पैर टिकाने को कहीं ठौर नहीं मिलता।

न मे गुंजम, न मे गुंजम व बहरो-बर न मे गुंजम।
व जन्नत दर न मे गुंजम, तहय्युर बहरे-मन हैराँ॥
निशानम बेनिशाँ मेदाँ, मकानम लामकाँ मीख़्वाँ।
जहाँ दर दीदाश्रम पिन्हाँ, मरा जोयंद गुस्ताख़ाँ॥

अर्थ—मैं समुद्र और पृथ्वी पर कहीं नहीं समाता हूँ, मैं स्वर्ग में भी नहीं समाता हूँ, आश्चर्य स्वयं मेरे लिये आश्चर्य-युक्त है। मेरा पता बेपता समझो, और मेरा घर बेघर जानो। संसार मेरे नेत्र में निहित है, मुझको ढूँढ़नेवाले अविनयी (गुस्ताख़, अशिष्ट वा अनर्थक) हैं।

ऐ रौशनी-ए-तबा तो बर मन बला शुदी।

अर्थ—ऐ भीतर के प्रकाश (बुद्धि)! तू मुझ पर एक विपत्ति हो गया, यह क्या? मैं कर ही क्या रहा हूँ? देश (मकाँ) का देश मैं, काल का काल मैं, अपने स्वरूप में स्वतःस्थित मैं, किसी के सहारे (आश्रय) का इच्छुक नहीं, अपनी महिमा में क्यों न मस्त रहूँगा? पर हाँ! मेरे लिये एक स्थान अवश्य श्रुति ने निश्चित किया है, वहाँ मैं विश्राम करता हूँ।

शब्द हुआ—वह क्या?

राम—तुम्हारा दिल (हृदय)।

अरज़ो समा कहाँ मेरी वुसअत को पा सकें।
तेरा ही है वह दिल कि जहाँ हम समा सकें॥

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति।
(यजु० कठ० १-४-१२)

अर्थ—अँगूठे-मात्र वह पुरुष शरीर के भीतर स्थित है।

He is free and libertine
Pouring of his power the wine,
To every age and every race,
Unto every race and age,

He emptieth the beverage
Unto each and all
Maker and original
The world is the ring of his spells
And the play of his miracles

... ...

Thou seekest in globe and galaxy
He hides in pure transparancy,
Thou seekest in fountains and in fires
He is the essence that inquires;
He is the axis of the star :
He is the sparkle of the spar ;
He is the heart of every creature ;
He is the meaning of each feature ;
And his mind is the sky ;
Than all it holds more deep, more high.

(Emerson)

अर्थ—वह (ज्ञान-स्वरूप) स्वतंत्र और निरपेक्ष है। अपनी सुरा-रूपी शक्ति (आत्मिक जीवन) प्रत्येक युग की संतति को जी खोलकर दान करता है। वह प्रत्येक समय मानुषी सन्तान तथा प्रत्येक व्यक्ति को हृदय खोलकर (यह मस्ती की मदिरा) पिलाता है। वह इस संसार का बनानेवाला और असल स्रोत (आदि कारण) है। संसार उसके मंत्रों का (या जादू का) छल्ला (अँगूठी) है, और उसके चमत्कारों तथा कौतुकों का क्षेत्र है। तू उस (ज्ञानी या आनंद-स्वरूप) को लोक और परलोक में ढूँढ़ता है, परन्तु वह (सुहृन्मित्र) विशुद्ध अंतःकरण की निर्मलता में निहित है। तू उसको वैकुंठ के स्रोतों और यज्ञों आदि की अग्नि में ढूँढ़ता है, परंतु वह स्वयं जिज्ञासु

का स्वरूप विशेष है। वह ध्रुव-तारे का धुरा है, अर्थात् वह स्वतः अधिष्ठित है। वह प्रकाशों का भी प्रकाश है। वह प्रत्येक प्राणी का हृदय है। वह प्रत्येक चिह्न (रेखा) और तिल का अर्थ (सार) एवं अभिप्राय है, अर्थात् समस्त नाम और रूप उसी (सुहृन्मित्र-स्वरूप) का निरूपण करते हैं। उसका अपना हृदय सुविशाल गगन (जिसके भीतर लोक-लोकांतर घिरे हुए हैं) है। वह (परमात्म-स्वरूप) उन सबकी अपेक्षा अधिक गंभीर और उच्चतम है।

बुलबुल अज़ गुल बिगुज़रद चूँ दर चमन बीनद मरा।
बुतपरस्ती के कुनद गर बरहमन बीनद मरा॥
दर सुख़न पिनहा शुदम चूँ बूए-गुल दर बर्गे-गुल।
हर कि दीदन मैल दारद दर सुख़न बीनद मरा॥

अर्थ—बुलबुल यदि मुझको चमन में देख ले, तो फूल छोड़ दे। यदि ब्राह्मण मुझको देख ले, तो मूर्ति-पूजा फिर कब करे। मैं बात में इस प्रकार निहित हूँ, जैसे फूल की गंध फूल की पत्ती में। जो कोई मेरे देखने की कामना रखता है, वह मेरे वचनों (वाक्यों) में मुझको देख ले।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

(रिसाला भाग नं० ३)

साधो ! दूर हुई जब दोई । हमरी कौन कोई पत खोवे ?
निज विषे रंचक सम देखें । आज नहीं पर्वत सम पेखें !
ऐसा कौन नशा तुम पीया । अब लौं आप सही नहिं कीया ?
चमके नूर तेज सब तेरा । तेरे नैनन काहे अँधेरा ?
तू तो आप भूपति राजा । तू ही तीन लोक को साजा ॥

ऐ अद्वैत सागर की तरंग ! प्यारे नररूप नारायण (human face divine) ! नित्य-प्रसन्न-चित्त पुरुषों के क़हक़हे में, बुलबुल के चहचहे में, रुस्तम की युद्ध-घोषणा में, अत्याचार-पीड़ित के हृदयवेधी आर्त्तनाद में, कलिकाओं की चटक में, ललनाओं की मटक में तेरी ही खटक है। क्या बाज़ार और क्या गुलज़ार, क्या भिक्षुक का भिक्षापात्र और क्या राजमुकुट, तेरे दरबार में बार पाने को तरसते हैं। गुल-रुख़ों (रमणियों) की आवाज़ और बुलबुलों की ध्वनियाँ तेरी स्वीकृति के भूखे और प्यासे हैं। कस्तूरी को सुगंध और प्याज़ को दुर्गंध का प्रमाण-पत्र तेरा ही दिया हुआ है। एक पत्थर (हीरे) को जो चाटा जाय, तो हलाहल विष है, यह उच्च पद तेरा ही प्रदान किया हुआ है। प्रियतमा के अधरों पर स्वाद (उनके उत्तम होने की स्वीकृति) तेरा ही दिया हुआ है।

बादा अज़ मा मस्त शुद नै माज़ मय ।
हम ज़ि मादाँ बूए-गुल आवाज़े-नय ॥

अर्थ—मदिरा हमसे उन्मत्त है, हम मदिरा से नहीं। ऐसे

ही बाँसुरी की सुरीली ध्वनि और सुमन की सुगंध हमारे कारण से ही है, ऐसा तू समझ।

Ye glittering towns with wealthand plenty crowned!
Ye fields where Summer spreads profusion round!
For me your tributary stores combine
Greation's heir the world, the world is mine.

अर्थ—ऐ संपत्ति और समृद्धि से अभिषिक्त शोभायमान नगरों! ऐ खेतों, जिनमें गरमी की ऋतु चारों ओर प्रखरता से फैली हुई है! मेरे लिये तुम्हारे ये सहायक समुदाय इकट्ठे होते हैं। समस्त सृष्टि का उत्तराधिकारी यह संसार है, और यह संसार मेरा है।

(१) संसार का वह भाग जो श्रोत्र-इन्द्रिय से बोध होता है, आकाश; (२) वह जो स्पर्शशक्ति (त्वगिन्द्रय) से बोध होता है, वायु; (३) वह जो चक्षु-इन्द्रिय से बोध होता है, तेज; (४) वह जो जिह्वा-इन्द्रिय से बोध होता है, जल; और (५) वह जो घ्राण-इन्द्रिय से बोध होता है, पृथ्वी; ये समस्त पाँच-भौतिक जगत् (उपर्युक्त पंचतत्त्वों से संयुक्त प्रपंच) अपने अस्तित्व के लिये तेरा भिक्षुक है। ओ प्यारे साक्षी (Subject)!

नेस्त ग़ैर अज़ हस्तिए-तो दर जहाँ मौजूद हेच।
ख़्वाह दर इनकार कोशो ख़्वाह दर इक़रार बाश॥

अर्थ—तेरे अस्तित्व के सिवाय संसार में कोई मौजूद नहीं है, इसमें चाहे तू इनकार कर और चाहे इक़रार।

तेरी ज्ञान (consciousness)-रूपी किरणें नयन-झरोखों से निकलकर चित्र-विचित्र पदार्थों को अस्तित्व में लाती हैं, तेरी विवेक-रूपी रश्मियाँ कानों से निकलकर मधुर और कटु ध्वनियों को मौजूद करती हैं। ऐ लघु और महान् के आधार! तेरे भरोसे वीर होकर प्रभात-समीर को अठखेलियाँ सूझती हैं।

भीषाऽस्माद्वातः पवते । भीषोदेति सूर्यः ।

भीषाऽस्मादग्निश्चेंद्रश्च । मृत्युर्धावति पंचम इति ॥

(यजुर्वेद तैत्तिरीयोपनिषद् ,ब्रह्मावल्ली अ० ८, मं० १)

अर्थ—जिसके भय से वायु चलती है, जिससे भय-भीत होकर सूर्य उदय होता है, जिसके भय के मारे अग्नि और इंद्र धावमान रहते हैं, और जिससे भयभीत होकर मृत्यु मारा-मारा फिरता है; वह ब्रह्म तेरा ही अपना आप है ।

जलवागाहे-रुखे-तो दीदए-मन तनहा नेस्त ।

माहोख़ुरशेद हमीं आईना मीगरदानन्द ॥

अर्थ—तेरे मुखमंडल की शोभा दिखलानेवाली केवल मेरी ही आँख नहीं, वरन् चंद्रमा और सूर्य भी यही दर्पण अपने सम्मुख लाते हैं (अर्थात् उनकी आँखों में भी तेरी ही शोभा है, या वे भी तेरे रूप को दिखलानेवाले हैं) ।

तस्मै सर्वं ततः सर्वं स सर्वं सर्वतश्च सः । (वासिष्ठ)

अर्थ—उसी (परब्रह्म) के लिये यह सब (नाम-रूप-प्र पंच) है, उससे ही ये सब हैं, वह ख़ुद ये सब है, और सब जगह वही है ।

आश्चर्य है—

जब वह जमाले-दिलफ़रोज़ सूरते-मिहरे-नीमरोज़ ।

आप ही हो नज़ारा सोज़ परदे में मुंह छिपाए क्यों ?

अग्नि के तेज से लकड़ी-पत्थर आदि यद्यपि जल उठें, किंतु अपने तेज से आग को कभी हानि नहीं पहुँच सकती । सम्राट् की तेजस्विता से मंत्री और श्रीमंत लोग यद्यपि भयभीत हो जायँ, किंतु अपनी तेजस्विता से सम्राट् कभी भयभीत नहीं होता । सिंह का गर्जन और नरसिंह की ललकार, तलवार के जौहर और सर्प की फुफकार, तपस्वी की धमकी और न्यायाधीश की फटकार तेरे ही प्रकाश हैं । तू उनसे panic stricken (भयभीत) क्यों

है ? असमंजस (शशोपंज) में क्यों पड़ता है ? उनको "घर की बिल्ली घर को म्याऊँ" वाला हिसाब बनाने की आज्ञा क्यों दे रहा है ?

दशनाए-ग़मज़ा जाँस्ताँ नाविके-नाज़े-बेपनाह ।
तेरा ही अक्से-रुख़ सही, सामने तेरे आए क्यों ?

यह प्राण हरनेवाली नयन-कटारी, यह अथाह नखरे का तीर, ये चाहे तेरे ही मुख का प्रतिबिंब हैं, पर तेरे सामने क्यों आते हैं ?

प्यारे ! ज़रा अपने आपमें आकर तो देखो । भय कैसा ? बला का क्या काम ? विपत्ति का क्या नाम ? शोक और क्रोध, दुःख और पीड़ा का प्रयोजन क्या ?

मस्तो ख़राब मी रवम, बे सरोपा हमी रवम ।
बीम नदारम अज़ बला, तन तलमला तला-तला ॥
राहे-बक़ा हमी रवम, चूँ शहे-चरख़ मफ़रदम ।
ग़म न ख़ुरम ज़माना रा, तन तलमला तला-तला ॥

अर्थ—मैं मस्त और दीवाना बनकर और बेसिर-पैर हुआ फिरता हूँ । मुझे दुःख से कुछ भय नहीं, तन तलमला तला-तला । अमर-लोक के मार्ग पर मैं चलता हूँ, और स्वर्ग के सम्राट् के समान मैं एक हूँ । मुझे समय की ज़रा चिंता नहीं, तन तलमला तला-तला (सारंगी के ताल का स्वर) ।

आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् । न बिभेति कदाचनेति ॥ (तै०, ४, १)

आत्मानंदवाले को भय और आशंका कैसी ?

रुपए-पैसे के हिसाब-किताब में, तर्क और तत्त्वज्ञान के गोरख-धंधों में और विज्ञान-गणित के इंद्रजाल में औरों की देखादेखी (भेड़चाल) बारीकियाँ छाँटते हो, मू-शिगाफ़ियाँ (छिद्रान्वेषण, बाल की खाल उतारने का क्रम) करते हो, पर (घड़े जितना नहीं, किन्तु) पहाड़ जितना मोती (दुर्रे-यतीम, असली अपना आप) लुप्त कर बैठे हो । आश्चर्य है !

निहाँ चूँ मान्द आँ राज़े कि वुदा शमए-महफ़िलहा।

अर्थ—वह रहस्य, जो सभा की ज्योति बन चुका है, कब तक छिपा रह सकता है। तात्पर्य यह कि जो भेद साधारण सभा में प्रकट किया गया, फिर उसका छिपा रहना असंभव है।

मेरे प्यारो! अपनी खोई हुई अँगूठी को एक बेर पा लो, धरती-आकाश में शासक तुम्हीं हो।

सुलेमाना बियार अंगुश्तरी रा। मुती शो बंदा कुन देवो परी रा॥

ज़ चाहो आब चेः रंजूर मांदेम। रवाँ कुन चश्महाए कौसरी रा॥

ज़ सूरतहाय ग़ैबी परदा बरदार। मुनव्वर कुन सराए-शशदरी रा॥

अर्थ—ऐ सुलेमान! तू अपनी अँगूठी ला, और देव तथा परियों को अपना दास बना। हम इस सांसारिक पानी व कुएँ से बीमार हो गए हैं, तू अपने स्वर्गीय सोते को जारी कर। छिपी हुई सूरतों से परदा उठा, और छ: द्वारोंवाले घर (शरीर) को प्रकाशित कर।

ऐ भोले साधक! सदाचार की शिक्षा के ऐडवोकेट! कहाँ तक पहरा दोगे? कहाँ तक भय और आशा की व्यवस्थाओं से "हु कम दर*" करोगे? कहाँ तक नरक और विपत्ति के बंदीघरों से धमकाओगे? कहाँ तक तरह-तरह की गीदड़ भबकियाँ सुनाओगे? जब तक रात (मूढ़ता, अविद्या) दूर न होगी, तब तक चोरी, जारी, जुआ, मद्य-पान आदि कभी बंद न होंगे, लाख यत्न पड़े करो।

Deeds of darkness can not be avoided in the dark.

अर्थ—जो कार्य अंधकार या अज्ञान के हैं, वे अँधेरे में बंद नहीं किये जा सकते। तात्पर्य यह कि मूढ़ता के काम मूढ़ता में दूर नहीं होते, वरन् ज्ञान के प्रकाश में दूर होते हैं।

---

* हु कम दर = who comes there, कौन आता है? सेना में रात का पहरा देते समय चौकीदार लोग किसी को आते देखकर इस आवाज़ से चिल्लाते हैं। इनके उत्तर से पहरेवाला चोर और साधु पहचान जाता है।

सच्ची विद्या-(Light, Truth) रूपी सूर्य निकलने दो। पाप और पातक अँधेरे के साथ हरण हो जायँगे। अफ़लातून ने क्या सच कहा है, Knowledge is virtue, अर्थात् ज्ञान ही धर्म है। सूर्य के प्रकाश के आगे दीपक आदि के प्रकाश कभी स्पष्ट नहीं हो सकते। ज्ञानवान् के आनंद-रूपी सूर्य के सम्मुख विषय-सुख-रूपी दीपक क्योंकर जल सकते हैं? उस Orpheus (ओर्फ़यूज़) की दिव्य ध्वनियों के होते बेचारी Sirens (साइरंस) की सारंगी क्या कर सकती है?

"What woman will you find,
Though of his age the wonder and the fame,
On whom His leisure will vouchsafe an eye
Of fond desire?..
....
How would one look from his majestic brow,
Seated as on the top of virtue's hill.
Discountenance her despised, and put to rout,
All her array!"

(Milton.)

अर्थ—ऐसी कौन सी स्त्री तुम्हें मिलेगी, चाहे वह उस के समय की विचित्र और प्रसिद्ध ही हो, जिस पर उसकी (अर्थात् ईसा मसीह को) फ़ुर्सत (अवकाश) वा उल्लास-पूर्ण चाह की दृष्टि डालेगी......................................उसके (ईसा मसीह के) उज्ज्वल ललाट से मानों भलाई की पहाड़ी की चोटी पर बैठे हुए कोई व्यक्ति किस दृष्टि से देखेगा? घृणा से उसकी (स्त्री की) परवा न करेगा और उसके समस्त मनोमोहक आकर्षणों को पूर्ण पराजित करेगा।

रंगदार महताबी का उजाला (प्रकाश) काले तवे पर भी पड़

जाय, तो उसे जगमगा देता है, प्रकाशित कर देता है; वैसे ही प्रेमपात्र (माशूक़ा) के मल, रक्त, हाड़ और मांस-भरे चर्म पर प्रेमी की दृष्टि पड़कर उसे ज्योतिर्मय और कांतिमान् बना देती है।

A thing giveth but little delight
That never can be mine. (Wordsworth)

अर्थ—जो वस्तु बहुत कम आनंद देती है, वह मेरी कदापि हो नहीं सकती।

बादा अज़ मा मस्त शुद नै मा ज़ि मय।
हम ज़ि मादाँ बूए-गुल आवाज़े-नय ॥

अर्थ—मदिरा हमसे मस्त होती है, हम मदिरा से नहीं; सुमन की सुगंध और बाँसुरी की ध्वनि हमसे ही जान।

वह महात्मा जो इस सौंदर्य और उत्तमता को वास्तव में जानता है और अपने स्वरूप को पहचानता है, उस ज्योतियों की ज्योति के सामने विषय-भोग के भावों के खद्योत (fire flies) भला किस प्रकार चमकेंगे?

ऐ प्यारे! सूर्य तेरा अपना आप है। तेरी आँख खोलने पर सूर्य प्रकट होता है, आँखें बंद करके अविद्या की अँधेरी रात क्यों बना रक्खी है?

मातः! किं यदुनाथ, देहि चषकं, किं तेन, पातुं पयः,
तन्नास्त्यद्य, कदास्ति वा, निशि, निशा का, वान्धकारोदये;
आमील्याक्षि युगं निशाप्युपगता देहीति मातुर्मुहुः।
वक्षोजांशुकमध्य उद्यतकरः कृष्णस्तु पुष्णातु नः।

(लीलाशुक)

तात्पर्य—

कृष्ण—मैया! मैया!

यशोदा—क्यों मेरे लाल, क्यों?

कृष्ण—मुझे एक कटोरा दो, जल्दी!

यशोदा—उसे क्या करोगे ? कटोरे से भी कोई खेलता है ? वे खिलौने पड़े हैं, उनसे खेलो।

कृष्ण—(अदा से गर्दन निहुराकर) मैं खेलने के लिये थोड़े ही माँग रहा हूँ। हम तो दूध पिएँगे।

यशोदा—लाल ! अभी से दूध कहाँ ? यह कोई समय है दूध का ? दूध तो है नहीं, कटोरा क्या करोगे ?

कृष्ण—(दुलार से झल्लाकर) ऊँ-ऊँ ! और कब दूध होगा ?

यशोदा—अभी तुम मक्खन खाओ और रात होने दो, फिर पेट भर के ताजा दूध पी लेना।

कृष्ण—(ओंठ विसूरकर) हाय, रात कब होगी ?

यशोदा—जब अँधेरा होगा।

यह सुनकर नन्हें कृष्ण ने झट आँखें मीच लीं, और फ़ुरती से हाथ फैलाकर ज़ोर से कहने लगा—"ला दूध दे दे, अँधेरा हो गया। ला दूध दे दे, रात हो गई।"

माता अपने बच्चे की यह चतुरता देखकर विस्मित रह गई। खिलखिलाकर हँस पड़ी, और प्रेम से विह्वला होकर बच्चे को छाती से लगा लिया और प्यार करने लगी।

वही कृष्ण (परमात्मा) आँख मींचकर दिन को रात बनानेवाला, क्षीर समुद्र का स्वामी, दूध के कटोरे के लिये रोनेवाला तुम्हारे "सिर पर, आँखों पर और हृदय पर" बैठकर लीला कर रहा है; वही चोरों का लाट (तस्कराणां पतिः) तुम्हारे मन और बुद्धि की कोठरी (गुहा) में छुपकर इंद्रिय आदि की पुतलियाँ नचा रहा है; वह कृष्ण तुम्हारा आत्मदेव है; वह तुम्हीं हो; आँखें बंद करके रात बनाने की मख़ौलबाज़ी छोड़ो।

यह हँसी ख़ूब नहीं ओ गुले-ख़ंदाँ हमसे।

अर्थ—ज्ञान का दीपक सदैव जलता है ज्ञानियों के मन-मंदिर में स्थिर होकर। और यदि उनके हृदय में मोह उदय होना चाहे, तो उसके अंधकार-समूह को वह दीपक निवारण करता है। काम-रूपी पतंग महाचपल और चंचल है, जो क्षण-क्षण में अपने आप ही इस ज्योति में पड़कर जलता है। निष्काम कर्म इस दीपक की बत्ती है, और प्रेम-रूपी तेल इसमें खर्च होता है। जिनका भाग्य अति उत्तम, बलवान् होता है, उन्हीं के मनोमंदिर में यह प्रदीप जलता है।

अला ऐ गौहरे-बहरे-मुसफ़्फ़ा।
कि दर आलम तुई पिन्हाँ व पैदा॥

अर्थ—ख़बरदार, ऐ निर्मल सागर के मोती! संसार में गुप्त और प्रकट तू ही है।

स्वच्छ और श्वेत बिल्लौर के पास यदि नीला कपड़ा पड़ा हो, तो बिल्लौर नीला दृष्टिगोचर होगा, यदि पीला काँच का टुकड़ा पार्श्व में धरा हो, तो बिल्लौर पीला दिखाई देगा। लाल वस्तु पास होने से लाल मालूम होगा। वास्तव में बिल्लौर सब रंगों से रहित है। कोई द्रव्य (जल या गैस) अपनी सूक्ष्मता या कोमलता के कारण गोल ग्लास में गोल सूरत ग्रहण कर लेगा, चौड़े कटोरे में चौड़ा और चौकोर बरतन में चौकोर हो जायगा। लोहे की लंबी सलाख़ आग में गरम की जाय, तो उसके साथ मिलकर आग लंबी दिखाई देगी, गोल तवा भट्ठी में तपाया जाय, तो तवे से मिलकर आग गोल मालूम होगी, चौड़ी वस्तु में प्रविष्ट होकर चौड़ी दिखाई देगी, वस्तुतः आग का कोई आकार नहीं। सब नेत्रोंवाले इस बात को मानते हैं, और दृक्शास्त्र (optics) ने सिद्ध कर दिया है कि महल-अटारी, बाग़-बग़ीचे जो कुछ देखते हो, वस्तुतः प्रकाश ही को तुम देखते हो; प्रकाश ही की किरणों में सारा संसार दृष्टिगोचर होता है;

वही प्रकाश "हरा, लाल, पीला" बना हुआ है, और तुर्रा यह कि अपने स्वरूप में बिलकुल बेरंग है। अब जिस प्रकार बिल्लौर, द्रव्य (जल या गैस), अग्नि और प्रकाश अपनी स्वच्छता के कारण नाना प्रकार के रंग ग्रहण करते हैं; ठीक उसी तरह प्रकाशों का प्रकाश आपका असली अपना आप (आत्मदेव) अपनी स्वच्छता के कारण कहीं कुछ और कहीं कुछ होकर नज़र आता है।

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं-रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं-रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥
(यजु० कठ०, अ० १, व० ५, मं० ६)

अर्थ—जैसे एक ही आग समस्त ब्रह्मांड में प्रविष्ट होकर प्रत्येक से अभेद हुई नाना रूप हो गई है, ऐसे ही एक आत्मा, जो सब सृष्टि के भीतर है, प्रत्येक से अभेद हुआ नाना रूपों में हो गया है।

यार को हमने जा-बजा देखा। कहीं बंदा कहीं ख़ुदा देखा॥
सूरते-गुल में खिलखिला के हँसा। शक्ले-बुलबुल में चहचहा देखा॥
कहीं है बादशाहे - तख़्त - नशीं। कहीं कासा लिये गदा देखा॥
कहीं आबिद बना कहीं ज़ाहिद। कहीं रिंदों का पेशवा देखा॥
करके दावा कहीं अनलहक़ का। बर सरे-दार वह खिंचा देखा॥
देखता आप है, सुने है आप। न कोई उसके मासिवा देखा॥
बल्कि यह बोलना भी तकल्लुफ़ है। हमने उसको सुना है या देखा॥
गर नूर है तो वह है और नार है तो वह है।

हर रंग में बसता है, तो भी ये विलास (कौतुक) सब दिखावटी ही हैं, वास्तविक नहीं। वह अपने स्वरूप से शुद्ध पवित्र है, सब से न्यारा है। माना कि बुद्धि और प्राण उसी के अस्तित्व-सागर के बुलबुले से हैं, या उसी में सर्प की भाँति भासते हैं, तो भी वह निर्लेप है। शुद्ध है। वह (आपका असली अपना आप) शरीर नहीं है, इंद्रिय नहीं है। वह प्राण नहीं है, बुद्धि नहीं है।

पर हाय! इस शुद्धता, सत्यता और व्यापकता पर बलिहारि कि प्रकाश, बिल्लौर आदि की भाँति जो मिला, उसी के हो गये, जिससे भेंट हुई, उसी से अभेद हो गये। शरीर के साथ एक होकर कहने लग पड़े कि "मैं बदरिकाश्रम जाऊँगा, श्रीअमरनाथ से हो आया, इत्यादि।" प्राणों से मिलकर उनके गुण अपने में गिन लिये, और बोल उठे—"मुझे भूख-प्यास लग रही है, दूध लाओ।" बुद्धि से प्रणय हुआ, तो बस ऐसा कि उस दासो को अपनी राज-मोहर सौंप दी, जो कुछ उससे उलटा-सीधा हुआ, मान बैठे, मैंने किया है, जैसे "मैंने क्या अच्छा प्रबंध लिखा है, यह युक्ति कैसी उत्तम सोची है, इत्यादि।" ऐ भोले महेश, मेरे प्राण! बलिहारी तुम्हारी शुद्धता, व्यापकता और कोमलता पर बलिहारी! पर जरा देखना! वह बात मत करो "जिस लाई गल्ली, उसी नाल उठ चल्ली।" बुद्धि, प्राण, मन, इंद्रिय आदि का कुसंग छोड़ो और अपने आपको कलंक मत लगाओ।

बाम पर नंगे न जाना तुम शबे-महताब में।
चाँदनी पड़ जायगी मैला बदन हो जायगा॥

असंगोऽहमसंगोऽहमसंगोऽहं पुनः पुनः।
सच्चिदानंदरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः॥ (ब्रह्मनामावल्ली)

अर्थ—मैं असंग हूँ, मैं असंग हूँ, अर्थात् मैं नितांत असंग हूँ, मैं सच्चिदानंद-स्वरूप हूँ, और मैं ही अविनाशी आत्मा हूँ।

तुम सच्चिदानंदघन हो; देह, प्राण आदि क्यों बने फिरते हो? असत्, जड़, दुःख रूप कहलाने में क्या स्वाद रक्खा है? प्यारे! इस आत्महत्या से क्या लाभ? "रक्त, स्वेद, वीर्य, मूत्र और थूक" इन पंचजलों के कीचड़ (पंच+आब=पञ्जाब, शरीर) में क्यों फँसे हो? विचित्र दिल्लगी है।

तो चुनी निहाँ दरेग़ी कि महे-बज़्रे-मेग़ी।
बदराँ तो मेग़ी-तन रा कि मही व ख़ुशलक़ाई॥

अर्थ—शोक ! तू ऐसा छुपा हुआ है, जैसे चंद्रमा बादल के नीचे छुपा होता है। तू इस शरीर-रूपी बादल को फाड़ डाल; क्योंकि तू चंद्रमा है और बहुत ही सुंदर है।

जिज्ञासु—कुछ समझ में नहीं आता, भला हम जीव (पापी बंदे) सत् चित् आनंद क्योंकर हो सकते हैं ? त्राहि-त्राहि ! ऐसी नास्तिकता ! समस्त सृष्टि तो पुकारती है कि हम परतंत्र और अल्पज्ञ हैं, और आप जबरदस्ती हमें ब्रह्म (शुद्ध परमात्मा) बतलाते हैं। ईश्वर की दोहाई ! ईश्वर की दोहाई !!

ज्ञानी—प्यारे ! अति आश्चर्य है कि आप ब्रह्म के सिवाय और कुछ भी नहीं हो; सरासर ब्रह्म ही ब्रह्म हो, और फिर इनकार करते हो। प्रत्येक मनुष्य आकाश के कोने को बैहरा कर देनेवाले उच्च स्वर से पुकार रहा है कि "मैं पवित्र हूँ, सच्चिदानंद हूँ, अमर हूँ, एक ही हूँ, सर्वोपरि हूँ, चेतनघन हूँ, इत्यादि।" तिस पर भी आप इनकार करते (भागते) हैं।

ग़ज़ब करते हो ज़ालिम, आग पानी को लगाते हो।

जिज्ञासु—यह और भी अनूठी सुनो। औरों को तो रहने दीजिए, बंदा अपनी बात धर्मतः कह सकता है कि कभी भूले से भी न कहा होगा कि "मैं ब्रह्म हूँ"। बताइए तो सही कि आपके सामने कब ईश्वरीय दावा किया था, और किस भाषा में किया था ?

ज्ञानी—संसार के कुरुक्षेत्र में आप और शेष सब लोग "शिवोऽहम् शिवोऽहम्" का गीत कर्म की भाषा से गा रहे हो, चाहे चर्म-जिह्वा से आप इनकार कर जाओ। पर मौखिक बकबक की अपेक्षा कर्म का ढिंढोरा अधिक विश्वास योग्य होता है। "Acts speak louder than words।" एक नवयुवक मदिरा पीकर मस्त पड़ा था। उसके पिता ने आकर उसे धिक्कारना आरंभ किया। नवयुवक स्पष्ट मुकर गया, और सौगंद खा-खाकर बोला

कि "मैंने मदिरा छुई तक भी नहीं।" परंतु मस्ती भी कहीं छुपी रह सकती है? नशा आँखों में बोल रहा था, गंध अपने आप मदिरा की रिपोर्ट दे रही थी। नहीं-नहीं कर ही रहा था कि उलटी हो गई, लो अब क्या छुपाओगे?

नहीं छुपता मिसाले-बू छुपाए लाख परदों के।
मज़ा पड़ता है जिस गुल-पैरहन को बेहिजाबी का॥

जिह्वा से लाख-लाख छुपाना चाहा, पर कर्मों ने उसे प्रकट कर ही दिया। ऐ प्यारे! चिदानंदघन तेरा आत्मा है, तू इस कस्तूरी को चाहे जितना छुपा, छुपेगी कभी नहीं।

(१) युधिष्ठिर से प्रश्न किया गया कि "आश्चर्य क्या है?" तो उसने उत्तर दिया—

अहन्यहनि गच्छन्ति भूतानि यममंदिरम्।
शेषाः स्थातुमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतःपरम्॥ (महाभारत)

अर्थ—दिन-दिन (सहस्रों) प्राणी यमराज के लोक को चले जा रहे हैं अर्थात् मर रहे हैं, किंतु जो (मृत्यु से) बचे हुए हैं, वे यहाँ (इस संसार में) रहने की इच्छा करते हैं, इससे बढ़कर आश्चर्य की बात और क्या होगी?

यह जानते भी हैं कि जो पैदा हुआ है, वह अवश्य मरेगा—

ज़िंदगी मौत थी इक उम्र में है साबित हुआ मुझे।
मेरा होना था फ़क़त मेरे न होने के लिये॥

तिस पर भी किसी को अपनी मृत्यु का विश्वास नहीं आता। मुँह से यद्यपि प्रति समय मृत्यु की रागिनियाँ पड़े गाएँ—"यह दुनिया है चार दिहाड़े (दिन), एथे रहना नाहीं, इत्यादि" किंतु व्यावहारिक रीति से इसके प्रतिवाद (रद्द करने) में ज़रा न्यूनता नहीं करते, उद्योग-धंधों का सिलसिला बराबर फैलाते जाते हैं, और अपने बुढ़ापे या त्याग (निःसम्बन्धता) के ख़याल को मिटाकर हस लापरवाही से मृत्यु-सागर में लोभ का लंगर डाल बैठते

हैं कि मानों मृत्यु की आँधी कभी आनी ही नहीं। इससे बढ़कर विस्मय-आविष्ट और क्या हो सकता है?

जीर्यन्ति जीर्यतः केशा दंता जीर्यन्ति जीर्यतः।
जीवनाशा धनाशा च जीर्यतोऽपि न जीर्यति॥

अर्थ—बूढ़े मनुष्य के बाल और दाँत तो मुरझा जाते हैं, किंतु द्रव्य और जीवन की चाह फिर भी नहीं मिटती।

बफ़िकरे-नेस्ती हरगिज़ नमी उफ़्तंद मग़रूराँ।
अगर्चिः सूरते-मिक़राज़े-ला दारद गरेबाँहा॥

अर्थ—घमंडी लोग नास्ति (मृत्यु) की चिंता में कदापि नहीं पड़ते, यद्यपि उनकी गर्दन ला (ﻻ = नास्ति) जैसी क़ैंची का स्वरूप रखती है।

आखिर इसमें भेद क्या है? एक दिन शरीर के नाश हो जाने में तो कुछ संदेह ही नहीं, फिर मरने का क्यों विश्वास नहीं आता? प्यारे! इसके सीधे-सीधे अर्थ यह हैं कि तुम्हारे स्वरूप में 'मरना' नाम को भी नहीं, तुम्हारा आत्मा अमर है, अकाल है, तुम्हारा असली अपना आप सत्स्वरूप है।

न हन्यते हन्यमाने शरीरे। (गीता)

शरीर के मारे जाने से उस (आत्मा) का नाश नहीं होता।

"Death hath not touched it at all
Dead though the house of it seems!"

अर्थ—मृत्यु ने कभी उस आत्मा को स्पर्श नहीं किया, यद्यपि शरीर या उसका निवास (मंदिर) मृतक प्रतीत होता है।

च पोशंदए-जामा जानस्त नाम।
ख़याले-फ़ना गश्तनश हस्त ख़ाम॥

अर्थ—कपड़े (शरीर-रूपी वस्त्र) पहननेवाला आत्मा है, उसके विनाश होने का ख़याल ख़ाम (कच्चा) है।

तुमको मरना तो कभी है नहीं। मृत्यु के तर्क-वितर्क

(प्रश्नोत्तर) में व्यावहारिक विश्वास क्योंकर जमे ? इसलिये तुम्हारा प्रत्येक काम यह डफ बजा रहा है—

सब्त अस्त बर जरीदए-आलम दवामे-मा ।

संसार के दफ़्तर पर हमारी ही सदैवत्ता लिखी है ।

(२) और सुनिए, मुँह से तो 'मैं पापी, मैं पापी' की गप हाँकते नहीं लज्जित होते, वरन् कभी-कभी इस निठुर विचार को feeling (प्रेम) के पवित्र वस्त्रों में सजाते हैं । जैसे—

चार चीज़ आवुर्दाअम शाहा कि दर पेशे-तो नेस्त ।*
आजिज़ी ओ बेकसी उज़रो गुनाह आवुर्दाअम ॥

अर्थ—ऐ बादशाह ! मैं चार वस्तुएँ ऐसी लाया हूँ, जो तेरे पास नहीं हैं; अर्थात् अधीनता, लाचारी, क्षमा-प्रार्थना और अपराध ।

किंतु व्यावहारिक रीति पर बराबर इसके विरुद्ध यह जतलानेवाले व्याख्यान दिए जाते हैं कि "मैं निर्लेप हूँ, शुद्ध हूँ, असंग हूँ, पवित्र हूँ ।" आखिर सत्यता को कोई कहाँ तक धोका देगा ? सत्यमेव जयति नानृतम्=सदैव सत्य जीतता है, मिथ्या नहीं ।

कूड़ निखुट्टे नानका ओड़क सच्च सही ।

जब कोई छोटी-सी भूल भी दिखला दी जाय, तो बुरा लगता है, सहा नहीं जाता; कोई अपराध प्रकट कर दिया जाय, तो बुरा मानने को तैयार है—"हाय, हमारी इज़्ज़त में फ़रक़ आ गया"; जब किसी प्रकार के अप्रिय वाक्य अपने विषय में सुने जायँ, तो वक्ता को चट नोटिस दिया जाता है कि अपने वाक्यों को वापस ले लो (withdraw your statement), अन्यथा अभियोग चलाया जायगा । एक छोटे-से बच्चे को अपराधी

* यह याद रहे कि इस अधीनता-पूर्ण पद्य में आनन्द का हिस्सा नहीं है, जहाँ लेखक ने साकार ईश्वर (personal god) पर अपनी श्रेष्ठता (अधिकता) जतलाई है ।

ठहराया जाय, तो बड़बड़ाने लगेगा; एक सामान्य नौकर को दोष लगाया जाय, तो अप्रसन्न हो जायगा।

इस प्रकार के ढंग से साफ़-साफ़ यह अर्थ टपकते हैं कि हर कोई अपने स्वरूप की दृष्टि से शुद्ध है, निर्लेप है, शरीर या बुद्धि के अपराधों और पापों से कभी उस पर दोष नहीं आ सकता। मुरगाबी (पक्षी-विशेष) चाहे गँदले पानी में रहे, चाहे गंगाजल में, कभी भीगती नहीं, वैसे ही आत्मा चाहे पवित्र बुद्धि, शरीर में देखा जाय, चाहे अपवित्र में, सदा शुद्ध और असंग है।

किं गंगांबुनि बिंबितेऽम्बरमणौ चांडालवाटीपयः।
पूरेवांतरमस्ति कांचनघटि मृत्कुंभयोर्वांबरे॥
प्रत्यग्वस्तुनि निस्तरंगसहजानंदावबोधांबुधौ
विप्रोऽयं श्वपचोऽयमित्यपि महान् कोऽयं विभेदभ्रमः।

(शांकर मनीषा-पंचक)

अर्थ—गंगाजल में या चांडाल की गली के गड़हे में या सोने के बरतन में या मिट्टी के घड़े में जब सूर्य अपना प्रतिबिंब डालता है, तो उस प्रतिबिम्बित सूर्य में भला क्या भेद हो सकता है, अर्थात् प्रतिबिंब में कोई विभेद नहीं हो जाता, चाहे पानी किसी प्रकार का क्यों न हो। फिर उस सहजानंद और ज्ञान के समुद्र-रूप प्रत्यगात्मा में तुझे ऐसी भ्रांति और भ्रम क्यों कि "यह ब्राह्मण है और यह चांडाल है।"

सूर्य गंगाजल में प्रतिबिंबित होने से अधिक पवित्र नहीं हो जाता और मदिरा में चमकने से अपवित्र नहीं हो जाता; वैसे ही आत्मा (अर्थात् अपना वास्तविक स्वरूप) शरीर और बुद्धि के खराब होने से खराब नहीं होता है, और उनके गुणों से लाभान्वित होकर उन्नति नहीं पकड़ता। वह पुरुष जिसने इस तत्त्व को जाना है और अपने निज स्वरूप में इस प्रकार आरूढ़ हो गया है, जैसे सर्व-साधारण लोग अपने आप बुद्धि या शरीर में

घर कर बैठते हैं, वह पुरुष अमर है, वह पुरुष सर्वोपरि वा सर्वोत्तम स्थानवाला है।

जहाँ जाते हुए हिर्स औ हवा के होश उड़ते हैं।

क्यों नहीं अपने इस राज्य को सँभालते? औरों के लेख और व्याख्यान पढ़ते-सुनते जीवन बीत गए, ज़रा अपने जादू-भरे लेक्चर को भी प्रेम के कानों से सुनो, जो हर समय दे रहे हो, और दे भी रहे हो वर्तमान भाषा में। ज़रा सोचो, कोई व्यक्ति अपने ऊपर दोष आने देता है? खुल्लमखुल्ला अपराधी सिद्ध हो चुका हो, तो भी अपने अपराध का धब्बा किसी अन्य के मत्थे लगाने का यत्न करेगा। अपने तेवरों से, आवेश से, अंतःकरण से और जिह्वा से चिल्ला-चिल्लाकर पुकारेगा कि मैं बेदाग़ हूँ, मैं अपाप हूँ। सरकारी न्यायालयों में जहाँ भलाई-बुराई को देखनेवाले न्यायाधीश विराजमान हों, वहाँ ऐ सत्य (Truth) के परखनेवाले साक्षी! ज़रा प्रकट होकर देख ले; जज पूछता है—"तुमने अमुक अपराध किया?" अपराधी बोलेगा—"श्रीमन्! कभी नहीं, बिलकुल नहीं, कदापि नहीं।" यदि अपराधी के विरुद्ध पर्याप्त प्रमाण और साक्षी मिल जायँ, और उस पर चार्जशीट (अपराध-निश्चय-पत्र) लगाया जाय, तो भी अपराधी अभियुक्त तो वास्तव में सच्चा ही है, उस न्यायाधीश का विवेक अभियोग की वास्तविकता से लड़ा नहीं, अपील दायर हो; किंतु अपीलवाले ने भी अपराधी ठहराया, तो "पक्षपात हुआ है, घूस (रिश्वत) और एकांगता (लिहाज़) चल गई है।" बंदी-घर में भेज दिया गया, तो इसका कारण यह नहीं था कि अपराधी दोष-संयुक्त था, वरन् "सरकार के घर में न्याय नहीं, अदालत अंधी है।" संसार बुरा कहता है, तो सारा संसार (hydra-headed mob) पागल है, किंतु मैं निष्कलंक हूँ।

हाँ, ऐ कलंकित मनुष्य! तू वस्तुतः निष्कलंक है, बिलकुल

निर्दोष है। सूर्य के साथ उल्लू तो कदाचित् कभी आँख लड़ा भी ले, किंतु तेरे पवित्र स्वरूप के समक्ष दोष बिलकुल नहीं ठहर सकता। हाँ, यदि तेरे यहाँ चूक है, तो यह है कि लापरवाही से अपने शुद्ध और अनंत स्वरूप को भूलकर तू अपने आपको अपवित्र शरीर और बुद्धि आदि ठान बैठा है, वरन अपने भीतर की पवित्र वाणी को (जो तुझे यह जतलाती है कि तू अमर और शुद्ध है) बिगाड़कर उसे उल्टे अर्थ दे रहा है, जैसे एक बीमार मित्र को देखने के लिए आये हुए एक बहरे ने किया था *।

* एक बहरे को खबर मिली कि उसका मित्र बहुत बीमार है। उसकी कुशल-क्षेम लेने को जाने का संकल्प किया। तत्काल यह विचार आया कि रोगी बेचारा धीमी आवाज़ से बोलेगा और हमें पहले ही ऊँचा सुनाई देता है, उसकी धीमी आवाज़ समझने में बड़ी कठिनता होगी, बार-बार "हूँ" "हायँ" किया, तो बुरा मालूम देगा; सब कहेंगे, कहाँ से मग़ज़ खाने आ गया। इससे अच्छा होगा, थोड़ी-सी बातचीत करके रोगी को प्रसन्न कर आएँ।

मन में यह कहकर उठ खड़े हुए। और रास्ते में चलते-चलते बातचीत करने का प्रोग्राम तैयार किया, जो इस प्रकार था।

पहली बात हम पूछेंगे—"अब आपकी प्रकृति की क्या दशा है?" इसका उत्तर नियमानुसार यह होगा कि "अब तो कुछ आराम है, आपकी कृपा है।"

हमारी ओर से दूसरा प्रश्न यह होगा—"कौन सी औषध का सेवन है?" इसके उत्तर में वह किसी-न-किसी ओषधि का नाम अवश्य लेंगे। फिर तीसरा प्रश्न यह किया जायगा कि "आप कौन से डॉक्टर की चिकित्सा करते हैं?" इसके उत्तर में भी रोगी किसी-न-किसी डॉक्टर का नाम अवश्य ही लेगा। हम उसे प्रसन्न करने के लिये रोगी की प्रत्येक बात पर "बहुत ठीक, बहुत ठीक" कहकर चले आएँगे। ऐसे चकमे देंगे कि कोई जान ही न सके कि हम बहरे हैं। (आगे पृष्ठ १३४ पर देखो)

तुम्हारा अंतरात्मा इस विचार को नहीं सह सकता (rebels against it) कि "तुम अशुद्ध हो।" प्रत्येक व्यक्ति को छोटा बनने से स्वाभाविक घृणा वा संकोच (natural repugnance) है। इस जिह्वा का उपदेश तो यह है कि "शुद्धम्‌अपापविद्धम्=

इधर प्रोग्राम तैयार हुआ, उधर रोगी के घर पर भी आ उपस्थित हुए। रोगी की दशा अत्यंत भयानक थी, किंतु यह अपने प्रोग्राम के अनुसार काम करने लगे।

वहरा—(रोगी से) अस्लाम अलैकुम क़िवला ! (नमस्कार भगवन् !) कहिए, क्या हाल है? अब तो कुछ आराम है न ? ज्यों ही यह ख़बर सुनी कि जनाब की तबियत अच्छी नहीं है, चित्त व्याकुल हो गया। ख़ुदा आपको शीघ्र आरोग्यता प्रदान करे।

रोगी— हाय मरता हूँ। प्राण निकलने ही को हैं। हाय ! हाय !

वहरा —(रोगी के ओष्ठ हिलते देखकर) अल्हम्द लिल्लाह ! आपका स्वास्थ्य-लाभ होना सुनकर जान में जान आ गई। धन्यवाद है बारी ताला (परमात्मा) का, धन्यवाद है। आप औषध कौन सी सेवन करते हैं ?

रोगी—(व्याकुल होकर) विष सेवन करता हूँ, विष।

वहरा— यह औषध तो रामबाण है, अमृत है। आपके रोग के लिये तो 'आवेहयात' (अमृत) है। बहुत ठीक। श्रीमान् कौन से चिकित्सक की चिकित्सा करते हैं ?

रोगी— (अत्यंत खिन्न होकर) मलकुलमौत (यमराज) की।

वहरा —उक्त डॉक्टर साहब तो हकीम हाज़िक़ हैं। वह तो अफ़लातून और जालीनूस हैं। उसके हाथों में यश है। वह हुक्मी इलाज करता है। मैं अभी उसी के यहाँ से आ रहा हूँ।

इधर रोगी तो वहरे के उत्तरों से जल-भुनकर कोयला हो रहा था; उधर वहरा अपनी दूरदर्शिता और बुद्धिमत्ता पर अभिमान कर रहा था, क्या ख़ूब !

तुम शुद्ध और पाप से मुक्त हो। तुम शरीर और शारीरिक कदापि नहीं हो। शरीर (मल और विष्ठा का थैला) तो किसी का भी शुद्ध नहीं हो सकता, चाहे कोई हज़ारों वर्ष उसे गंगा में धोया करे।

कभी न होवे शुद्ध कुत्सुध यह जल में धोये।
प्याज़ न केसर होय जाय कश्मीरें बोवे॥

तुम्हारे भीतर से आवेश (impulse) के साथ एक शुभ संवाद (gospel) सुनाई देता है कि "शुद्ध स्वरूप जो है सो ही तुम हो, शरीर नहीं हो; अशुद्ध और परिच्छिन्न शरीर तथा बुद्धि के ख्याल को त्यागो, और अपने शुद्ध स्वरूप में जागो।" मगर वाह रे उल्टी समझवाले बहरों के बहरे! तुम पर इस अंतरावेश का यह प्रभाव होता है कि तुम अपने साढ़े तीन हाथ के ऐंडमन टापू को शुद्ध और निर्दोष दिखाया चाहते हो, शरीर और बुद्धि को निरपराधी सिद्ध करने का प्रयत्न करते हो, देहाभिमानी रह-कर दोषों से भागते हो, तुम्हारे अंतरात्मा से निरन्तर यह लेक्चर निकलता है कि मंसूर की तरह सिर से परे होकर लोक-परलोक के स्वामी हो जाओ। अपने आत्माभिमान (महत्त्व) को सँभाल लो। किंतु विचित्र बहरे हो कि क़ारून और नमरूद के समान धन-धरती से परिच्छिन्न होकर बड़ा बनना चाहते हो। घमंड में फँसते हो।

नमरूद शुद मरदूद चूँ? बूदश निगह महदूद चूँ।
मारा तकब्बुर के सज़द? चूँ किब्रिया हरजास्तम॥

अर्थ—नमरूद क्यों लज्जित वा क्षुद्र हुआ? इसलिये कि उसकी दृष्टि परिच्छिन्न थी। भला मुझे ऐसा क्षुद्र अहंकार कब शोभा देता है, जबकि मैं ब्रह्म की भाँति सब जगह समाया हुआ हूँ? (अथवा भला मुझे अहंकार क्यों हो जबकि मैं ही हर जगह सबसे बड़ा व सर्वत्र व्यापक ब्रह्म हूँ)?

तुम्हारे व्यवहार पर प्रकाश-स्वरूप से यह नाद आ रहा है कि चमड़े की जूतियाँ (शरीर-भाव) उतार डालो। क्योंकि जहाँ तुम खड़े हो, अत्यंत पवित्र भूमि है। पर आश्चर्य ! ओ बहरे मूसा ! तुम ये जूतियाँ (शरीर) पवित्रात्मा पर रक्खा चाहते हो।

(३) चाटुकारिता (ख़ुशामद) चिउँटी से लेकर ईश्वर तक को भाती है।

ख़ुशामद हर किरा करदी ख़ुशआमद।

जिस व्यक्ति की ख़ुशामद की, उसे अच्छी मालूम दी।

आख़िर क्यों ? कारण क्या है ? केवल यही कि ख़ुशामद हमें प्राणप्रिय-सुमन की सुगंध पहुँचाती है। हमारे घर (निजधाम) से संदेशा लाती है। मैं आत्मदेव, बहुत बड़ा हूँ, यह पता बताती है। और यह आनंद-संवाद सुनाती है—

तूर पर चश्मे-कलीम अल्लाह का तारा है तू।
मानीए-यासीन है तू मफ़हूमे-"ओ-अदना" है तू॥

शोक ! पत्र (संदेशा) को लेकर तुम अविद्या-रूपी मद्य में डिबो देते हो—

ईं दफ़्तरे वेमानी ग़र्क़े-मए नात्र औला।

या उसके ऊपर के सुंदर लिफ़ाफ़े पर कुछ देर मस्त होते हो, फिर बिना पढ़े उसे शरीर-रूपी रद्दी के टोकरे (waste paper basket) में डाल देते हो, अर्थात् वह बड़ाई शरीर को दे देते हो।

यदि इस ख़ुशामद के लिफ़ाफ़े को फाड़कर संदेशे के लेख को देखा होता, जिसमें स्वयं परमात्म-स्वरूप आनंदघन तुम्हें लिखता है—

"हाय दरदिया ! दरद वंडा मेरा, कराँ मिन्नताँ ते भराँ मुट्ठियाँ मैं
काहनूँ नाल जुदाई जलावना हैं, सुत्ती कदों तेरे नालों उट्ठियाँ मैं।"

तो बाछें खिल जातीं, आनंद की अधिकता के कारण लिफ़ाफ़ा

हाथ से गिर जाता, अर्थात् ख़ुशामद का स्वभाव छूट जाता। ख़ुशामद की चिट्ठी में प्रियतम का चित्र है—

आ जाय अगर हाथ तो क्या चैन से रहिए।
सीने से लगाए तेरी तस्वीर हमेशा॥

प्रियतम का चित्र ही नहीं, वरन् स्वयं प्रियतम मानों कह रहा है—

नज़दीके-मनी मरा मबीं दूर। पहलूए-मनी मबाश महजूर॥

अर्थ—तू मेरे निकट है, मुझको दूर मत देख। तू मेरे बगल में है, मुझसे अलग मत हो।

(४) विद्यार्थियों! सरकारी नौकरों! शपथ (सौगंद) से कहना, कैसा प्रिय है तुमको यह मीठा नाम "छुट्टी"! हाय स्वतंत्रता! सारा संसार तड़पता है स्वतंत्रता के लिये—

O Liberty !
Thou huntress swifter than the moon ! thou terror
Of the world's wolves ! thou bearer of the quiver,
Whose sunlike shafts pierce tempest-winged error,
As light may pierce the clouds when they dissever—
In the calm regions of the orient day !

....

The voices of thy bards and sages thunder
With an earth-awakening blast
Through the caverns of the past ;
Religion veils her eyes ; oppression shrinks aghast,
A winged sound of Joy, and love, and wonder,
Which soars where expectation never flew,
Rending the veil of space and time asunder.
(Shelly)

अर्थ—ओ स्वतंत्रते! तू चंद्रमा की अपेक्षा भी अधिक तीव्र

(लोगों का) शिकार करनेवाली है, अर्थात् सर्व-साधारण का मन तेरे फंदे में फँस जाता है, और संसार के भेड़िये (दूसरों को अपने अधिकार में रखनेवाले) तुझसे बहुत डरते हैं (क्योंकि यदि प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र हो गया, तो दूसरों के जीवन पर आयु व्यतीत करनेवालों को दिन काटने कठिन हो जायँगे); तू इस प्रकार का तरकश अपने पास रखती है कि जिसके सूर्य के समान तीर आँधी चला देनेवाली भूल (अज्ञान) को ऐसे छेद देते हैं, जैसे प्रकाश बादलों को छेद देता है, जब कि उजेले (या पौर्वात्य देशों के भीतर) दिन के शांत आकाश-मंडल में वह (बादल) बिखरे होते हैं.........। तेरे गायक (कवियों) और ऋषियों की आवाजें भूतकाल की तह से भूमंडल को जगा देनेवाले (वायु के) झक्कड़ की तरह गरजती हैं। धर्म (मत-मतान्तर) उसकी आँखों पर परदा डालता है; अत्याचार डरकर भागता है; जहाँ कभी आशा दूर नहीं हुई, वहाँ हर्ष, प्रीति और आश्चर्य की आवाज़ पंख लगाकर ऐसी ऊपर उठती है, मानो देश-काल के आवरण को छिन्न-भिन्न कर देती है। (शेली)

स्वतंत्रता तुम्हारी यथाक्रम अवस्था (normal state) है। तुम पहले ही नित्यमुक्त हो। छुट्टी, त्योहार, उत्सव, मेले आदि क्यों न अच्छे प्रतीत हों? वे लुप्त यूसुफ़ का वस्त्र सँघाते हैं, परिच्छिन्नता की पीड़ा में फँसे हुए, अज्ञान के बिछौने पर करवट लेनेवालों को ज़रा मीठी नींद सुलाते हैं, और दासता के दुःख से ज़रा छुटकारा दिलाते हैं; पर अज्ञान की शय्या तो काँटों की शय्या है, जब तक उस पर लेटते हो, काँटे चुभेंगे, स्वतंत्रता का सुख नहीं मिलने का। आमोद-प्रमोद और छुट्टी एवं शादी आदि की निद्रा-जननी अफ़ीम (narcotic) खाकर थोड़ी देर शूलों की नोकों को सुला देने की नीति ठीक नहीं।

मल्के बूदम व फ़रदोसे-बरीं जायम बूद।
आदम आवर्द दरीं दैरे-ख़राब आबादम्॥

अर्थ—मैं एक फ़रिश्ता (देवदूत) था, और सुंदर स्वर्ग मेरे रहने का स्थान था; लेकिन हज़रत आदम मुझको इस ख़राब आबाद मंदिर (जगत्) में ले आया।

क्या हँसी आती है मुझको हज़रते-इंसान पर।
फ़ेले-बद तो ख़ुद करे लानत करे शैतान पर॥

Fill the bright goblet, spread the festive board,
Summon the gay, the noble and the fair ;
Through the loud hall in joyous concert pour'd
Let mirth and music sound the dirge of care,
But ask thou not if happiness be there,—
If the loud laugh disguise convulsive throe,
Or if the brow the hearts true livery wear;
Lift not the festal mask ;—enough to know,
No scene of mortal life but teems with mortal woe.

अर्थ—ऐ सुरा पिलानेवाले! इस चमकीले प्याले को भर दे, और आह्लाद का आसन बिछा दे; प्रसन्नवदनों, सज्जनों और सुरूपवालों को बुला दे; हर्षित करनेवाली और सुरीली रागध्वनि द्वारा दालान के गूँज जाने से (राग-रंग से) इस प्रफुल्लता और हर्ष-पूर्ण ध्वनि को चिंता का करुण गीत (रुदन) दबाने दे, अर्थात् इस राग और रंग के प्रभाव से यदि चिंता और शोक दबने लगे, तो दबने दे, किंतु यह कदापि मत पूछ कि वहाँ (उस राग-रंग आदि में) आनंद वास्तव में है भी या नहीं। यद्यपि वह ज़ोर के अट्टहास (क़हक़हे) ऊपर से कुछ और ही दिखलाते हैं और वास्तव में शोक और पीड़ा के देनेवाले हैं), या यद्यपि यह ललाट (सुरा-पान के समय जो त्योरी चढ़ी ललाट होती है, वह)

हृदय की सच्ची चपरास पहने हुए है, अर्थात् हृदय की पूर्ण दासता कर रही है, या हृदय की दशा का चित्र खींचकर दिखला रही है; तथापि तू ऐसी आमोद-प्रमोद की गोष्ठी का परदा मत खोल। इतना जानना काफी है कि मानवीय जीवन का कोई दृश्य ऐसा नहीं, जो असाध्य दुःख और शोक से परिपूर्ण न हो।

शूलों और काँटों से पीछा छुड़ाना हो, तो अज्ञान-शय्या (अविद्या) को त्याग दो, स्वतंत्रता और आनंद को अपना ही स्वरूप पाओगे, और आनंद तक गति लाभ करने के लिये opiates (निद्रा-जननी वस्तु, कंचन, कामिनी आदि) की सहायता के दीन न रहोगे।

पंजा दर पंजए-ख़ुदा दारम।
मन चिः परवाये-मुस्तफ़ा दारम !

अर्थ—मैं अपना हाथ ख़ुदा के साथ मिलाए हुए हूँ। मुझे रसूल (मुस्तफ़ा) की क्या परवाह है ?

नित फ़रहत है, नित राहत है, ख़ुश साक़ी है आज़ादी है।
ख़ुश ख़ंदा है रंगीं गुल का, ख़ुश शादी शाद मुरादी है॥
जब उमड़ा दरिया उलफ़त का, हर चार तरफ़ आबादी है।
हर रात नई इक शादी है, हर रोज़ मुबारकबादी है॥

मेरी जान ! "दाम के नीचे फड़कने का तमाशा" बहुत देख लिया, अब आज़ादी (जीवन्मुक्ति) के "लाखों मज़े" चक्खो और अपनी जिह्वा से यह गीत गाना छोड़ दो—

यों तो ऐ सैयाद ! आज़ादी में हैं लाखों मज़े।
पर दाम के नीचे फड़कने का तमाशा और है॥

बहुत ज़ख़्मी हुए, अब छोड़ दो यह दिल्लगी। छोड़ो, छोड़ो। रेशम के कीड़े की तरह आप ही कोया (कोष, cocoon) बनाकर उसमें मत फँसो। अविद्या को दाया (परिचारिका वा पालिका) बनाकर उसकी गोद में मत बैठो। यह पूतना राक्षसी

है। इसके विषवाले दूध को क्यों तरसते हो। तुम्हारी सुख-शय्या तो क्षीर-समुद्र (the ocean of knowledge) है, जहाँ विष और काँटोंवाला शेषनाग भी नरम-नरम बिस्तरे का काम देता है और चँवर डुलाता है, जहाँ संसार-भर को मोह लेनेवाली लक्ष्मी तुम्हारे चरण दबाती है।

(५) व्याख्यानदाता और उपदेशक लोगों के शिक्षा और उपदेश भरे व्याख्यानों को नित सुनते रहने पर भी स्वभावतः (instinctively) या वस्तुतः कोई भी मनुष्य 'अपने-जैसे' को देखने की सहनशीलता नहीं रखता। प्रत्येक व्यक्ति ग़य्यूर (ईर्ष्या करनेवाला) है, रक़ीब (प्रतिद्वंद्वी) और 'साथी' का नाम नहीं सह सकता। रेल पर सवार होते समय देख लो, जो व्यक्ति जिस कमरे में बैठ गया, मन से यही चाहेगा कि "और कोई न आये, मैं ही मैं रहूँ," और की गुंजायश नहीं है। ईश्वर (personal god) भी यदि किसी विषय में रक़ीब (प्रतिद्वंद्वी) हो, तो सहन नहीं हो सकता। विचार करो—

वक़्ते-अलविदा उस महलक़ा को।
न सौंपा बदगुमानी से ख़ुदा को॥
वह दिन ख़ुदा करे कि ख़ुदा भी यहाँ न हो।
मैं हूँ, सनम हो, और कोई दरमियाँ न हो॥
छोड़ा न रश्क ने कि तेरे घर का नाम लूँ।
हर इक से पूछता हूँ कि जाऊँ किधर को मैं॥

ऐ मूसा (मनुष्य)! तेरे तेजस्वरूप से ऊँचे स्वर के साथ यह आवाज़ आ रही है कि हाँ! हाथ बढ़ा और शिवोऽहंरूपी सर्प (मारे-अनलहक़) को पकड़ ले। डर मत! यह डरावना साँप (शेष) विषैला नहीं है, अमृतवाला है; तेरेछूते ही काट खाने के स्थान पर सीधी (तत्त्व की) लाठी 'I' हो जायगा। यह

वह लाठी है, जिसे शुष्क पत्थरों पर मार तेरे लिये मधुर जल झिरेगा; आकाश की ओर उठा! मन्ना (Manna, देवदूतों का भोजन) बरसेगा; संसार-सागर से छुआ! फट जायगा तेरे पार होने के लिये।

आ! अपने असल (वास्तविक) स्वरूप की ओर आ। तेरा अज्ञान ही शैतान है। इस अज्ञान के कारण तू शरीर को अपना गौरव देना चाहता है। तवे से सूर्य का काम लेने की करता है, अर्थात् 'शरीर' को अद्वितीय और अप्रतिद्वंद्वी करने पर तुला है।

ता चंद तो पस रवी व पेश आ। दर कुफ़ मरौ व सूए-केश आ॥
दर नेशे तो नोशवीं व पेश आ। आख़िर तो बअस्ल! अस्ले ख़्वेश आ॥१
उमरेस्त कासीरे—गुर्वती तो। पा बस्तए—दामे-मेहनती तो॥
चूँ-गौहरे-कान दौलती तो। आख़िर तो बअस्ल! अस्ले-ख़्वेश आ॥२
बिशकन हला वंदे-कालबुद रा। आज़ाद कुन अज़ ज़माना ख़ुद रा॥
रौ तर्क बगोय नेको-बद रा। आख़िर तो बअस्ल! अस्ले-ख़्वेश आ॥३
हर चंद तिलस्मे-ई जहानी। दर बातिने-ख़्वेशतन तो कानी॥
बिकुशाय दो दीदाए-निहानी। आख़िर तो बअस्ल! अस्ले-ख़्वेश आ॥४
लाली बमियाने - संग ख़ारा। ता चंद ग़लत दही तो मारा॥
दर चश्मे-तो ज़ाहिरस्त यारा। आख़िर तो बअस्ल! अस्ले-ख़्वेश आ॥५
हक़्क़ा कि ज़ि परतवे-हक़्क़ी तो। वज़ जौहरे-फ़क़रे मुतलक़ी तो॥
वज़ बादए-रूहे राबक़ी तो। आख़िर तो बअस्ल! अस्ले-ख़्वेश आ॥६
दुनिया ज़ूएस्त ज़ूद बिगुज़र। ज़ि आँसूए-जहाने-ताज़ा बिनगर॥
हीं! अहदे-क़दीम याद-आवर। आख़िर तो बअस्ल! अस्ले-ख़्वेश आ॥७
हरचंद ब सूरत अज़ ज़िमीनी। बसरिश्तए-गौहरे-यक़ीनी॥
बर मख़ज़ने-नूरे-हक़ अमीनी। आख़िर तो बअस्ल! अस्ले-ख़्वेश आ॥८
चूँ ज़ादए-परतवे-जलाली। वज़ तालए-साद नेक फ़ाली॥
अज़ बहरे-अदम तो चंदनाली? आख़िर तो बअस्ल! अस्ले-ख़्वेश आ॥९

ख़ुद रा चो बेख़ुदी बबस्ती। मी दाँ कि तो अज़ ख़ुदी बरस्ती॥
वज़ बंदे-हज़ार दाम जस्ती। आख़िर तो बअस्ल! अस्ले-ख़्वेश आ॥१०

अर्थ—(१) तू पीछे कब तक जायगा, आगे बढ़, अर्थात् अवनति को तू कब तक करेगा, उन्नति कर। नास्तिकता (कुफ़्र) की ओर मत जा, अपने स्वरूप की ओर आ, अर्थात् नास्तिक मत बन, केवल अपने स्वरूप को पहचान। डंक में तू शहद देख और आगे बढ़। तात्पर्य यह कि ऐ शुद्ध स्वरूप! तू अपने स्वरूप की ओर आ, और इस ज्ञान के कठिन मार्ग पर चलते समय तुझे जब भारी कष्ट और दुःख सामने आवें, तो उनमें तू सुख समझ, क्योंकि इस मार्ग में ये दुःख और कष्ट नित्यानंद दिलानेवाले होते हैं, और इन चोटों और दुःखों से किसी प्रकार साहस-हीन मत हो, वरन् आगे बढ़ता चल, और जब तक तू अपने सत्य स्वरूप को भली भाँति न जान ले, कदापि मत ठहर।

(२) एक आयु बीत गई, तू नानात्व (ग़ैरियत) का दास बना रहा और कष्टों के जाल में फँसा रहा। जब तू कुबेर-भण्डार का मोती है, अर्थात् अक्षय कोप का रत्न है, तो फिर अंततः तू अपने स्वरूप की ओर आ, अर्थात् अपनी यथार्थ सत्यता का अनुभव कर।

(३) होशियार हो, शरीर के बन्धन को तोड़ और अपने आपको देश-काल से स्वतंत्र कर। जा, बुराई और भलाई दोनों को छोड़ दे, और अन्त को अपने स्वरूप की ओर ऐ सत्य-स्वरूप! तू आ।

(४) यद्यपि तू इस जगत् में एक अद्भुत पदार्थ है और अपने भीतर में तू जगत् की खानि है, तो भी तू भीतरी दोनों आँखें खोल, और ऐ सत्यस्वरूप! तू अपने स्वरूप की ओर आ।

(५) नीले पत्थर (खनिज) में तू लाल है, मगर हमको कब तक तू धोका देता रहेगा? तेरे दिव्य नेत्र में तो बल (शक्ति)

प्रत्यक्ष है, इसलिये ऐ सत्यस्वरूप! तू अपने वास्तविक स्वरूप की ओर मुँह मोड़।

(६) ईश्वर की सौगंद कि तू परमार्थ की प्रभा है, और पूर्ण त्याग का एक जौहर (रत्न) है, और अक्षय आनन्द की निकृष्ट मद्य तू है, फिर ऐ सत्यस्वरूप! तू अपने शुद्ध स्वरूप की ओर आ।

(७) संसार एक नदी है, इसे जल्द पार कर, और उस पार से नूतन जगत् को देख, अर्थात् मृत्युलोक को छोड़ और सत्यलोक की ओर मुख कर। ख़बरदार (सुबोध) हो और अपनी प्रतिज्ञा स्मरण कर, अर्थात् वह प्रतिज्ञा जो सृष्टि के आदि काल में तुझसे हुई थी, या जो प्रतिज्ञा तूने माता के उदर में ईश्वर के साथ की थी, उसको स्मरण कर, और अंत को ऐ सत्यस्वरूप! तू अपने वास्तविक स्वरूप की ओर आ।

(८) यद्यपि देखने में तू मिट्टी का पुतला (भूमंडल-वासी) है, किंतु वास्तव में (वास्तविक रूप से) तू निश्चय-पूर्वक मोती है, और सच्चे प्रकाश के स्रोत पर तू अमीन (धरोहर रखने-वाला) है, इसलिये ऐ सत्यस्वरूप! तू अंततः अपने वास्तविक स्वरूप की ओर आ।

(९) जब तू दिव्य तेज से उत्पन्न है, और शुभ नक्षत्र में उत्पन्न होने के कारण शुभ शकुनवाला है, तो नाश (अदम) के लिये तू फिर कब तक रोता रहेगा। ऐ सत्यस्वरूप! अंततः तू अपनी वास्तविक सत्ता को पहचान।

(१०) जब अपने आपको तूने निरहंकारता से बाँध लिया, तब तू समझ ले, अहं मम-भाव तुझसे छूट गया और सहस्रों पाशों के बंधनों से तू कूद गया, इसलिये ऐ सत्यस्वरूप! तू अपने वास्तविक स्वरूप की ओर आ, अर्थात् आत्मानुभव कर।

---

(६) एक भोला विद्यार्थी स्कूल जाने से जी चुराता था। एक दिन उसके जी में आया कि चाहे कुछ ही हो, आज स्कूल नहीं जायँगे, घुटने पर पट्टी बाँध ली और बहाना किया कि बड़ी भारी चोट आई है. चला नहीं जाता। हेडमास्टर के नाम अर्ज़ी लिखी कि "श्रीमन्! आज मुझ अनुचर को क्षमा कीजिएगा, चोट लग जाने के कारण चल नहीं सकता, स्कूल किस प्रकार आऊँ?" अस्तु। अर्ज़ी तो लिखी गई, अब उसे मास्टर साहब तक पहुँचावे कौन? स्वयं ही स्कूल जाकर विद्यार्थी ने अर्ज़ी मास्टर साहब के हाथ में दी, और कहा—"आज स्कूल तक पहुँचना दुस्तर है।" यह सुनकर सब विद्यार्थी और मास्टर साहब खिलखिलाकर हँस पड़े कि ऐ भोले! तेरा यह अर्ज़ी यहाँ तक लाना ही तेरी बात का खंडन करता है। तुम स्कूल तक तो पहले ही पहुँचे हुए हो, 'आना कठिन है' के क्या अर्थ?

प्यारे! चेतनघन तेरा स्वरूप है। यदि वाणी से तू स्वीकार भी कर ले, तो भी तू ज्ञान-स्वरूप है। यदि वाणी से न माने, तो न मानने का कार्य ही तेरा ज्ञान-स्वरूप होना सिद्ध करता है। यह कहना कि "राम ने जो कुछ लिखा है, मिथ्या है, मेरी समझ ठीक है" (हर कसे रा अक़्ले-ख़ुद बकमाल नुमायद, अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति को अपनी बुद्धि पूर्ण प्रतीत होती है) स्पष्ट सिद्ध कर देगा कि तेरे स्वरूप में ज्ञान की न्यूनता का ख़याल कदापि नहीं ठहर सकता। चेतनघन तू है—

वहर रंगे कि ख़्वाही ज़मा मी पोश।
कि मन आँ क़द्दे-मौज़ूँ मी शिनासम॥

अर्थ—जिस रंग का तू चाहे वस्त्र पहन, किंतु मैं तो तेरा वही असली स्वरूप पहचानता हूँ।

अपने व्यवहार से आप सब समय यही पुकारते हो कि "मैं

अमर हूँ, शुद्ध हूँ, नित्य मुक्त हूँ", और वाणी से अपने आपको "दास, सेवक, बंदा" बनाते हो, शरीर की भावना में गिराते हो। यह जुलाहगिरी का धंधा कि "नीम तन दर गोर दारम, नीम तन दर ज़िंदगी=आधा शरीर।समाधि (क़ब्र) में और आधा जीवन में" छोड़ो—"बखुदा! कि खुदायेद"=ख़ुदा की क़सम कि तुम ख़ुदा हो।

संसार-भर के विज्ञान, तत्त्वज्ञान, काव्य और गणित तेरे आत्मा से निकले हैं, और निकलते रहेंगे—

I am owner of the sphere,
Of the seven stars and the solar year.
Of Caesar's hand, and Plato's brain
Of Lord Christ's heart and Shakespear's strain

अर्थ—मैं भूमंडल, सातों नक्षत्रों का और द्युलोक का स्वामी हूँ, ऐसे ही क़ैसर का हाथ, अफ़लातून का मस्तिष्क, भगवान् ईसा का मन, शेक्सपियर की पद-रचना, इन सबका मैं ही स्वामी हूँ, अर्थात् ये सब नाम-रूप मेरे ही आश्रय हैं।

संसार में प्रथा है कि जब किसी गणितशास्त्री से कठिन गुत्थी (पहेली, Conundrum) हल हो जाती है, या कवि से फड़कती हुई कविता लिखी जाती है, तो घमंड से कहा करते हैं कि यह (विपय) सिद्धांत मैं (असुक नामवाले, अमुक स्थानवासी) ने सिद्ध किया ; ये पद्य मैं (उपनाम असुक, शिष्य अमुक) ने लिखे, किंतु प्रश्न यह है कि कोई गणितज्ञ या कोई कवि यह बतला दे कि गुत्थी के हल होते समय या प्रबंध के बनते समय उसकी वृत्ति निरुद्ध नहीं थी, उसका चित्त एकाग्र न था, और नाम-रूपात्मक भावना तिरोहित न थी? भोजन करना भूल जाना, घर की उलझनों से बेख़बर होना, सेना सामने से निकल गई और पता न होना, नगर में विप्लव मचा है, उससे अनजान

होना, नंगी तलवार हाथ में लिए घातक सामने खड़ा है, उसे न देखना, ऐसी-ऐसी कई कथाएँ उन तत्त्ववेत्ताओं के संबंध में प्रसिद्ध हैं, जो नाना रचनाओं और शास्त्रों के धनी (कर्त्ता) माने गए हैं। थोड़ा विचार करने से ज्ञात होगा कि उच्च विचार और गंभीर चिंतन किसी व्यक्ति में उस समय प्रकट होते हैं, जब उसमें अहंकार और घमंड दूर हुए होते हैं।

"मैंने यह विषय (सिद्धान्त) सिद्ध किया।"

किसने किया? क्या अमुक महाशय, अमुक स्थानवासी ने किया? कदापि नहीं। जब विषय सिद्ध हुआ, तब यद्यपि लोगों को आपका शरीर दृष्टिगोचर हो रहा था, किंतु आपके यहाँ तो ऐसी एकाग्रता थी कि शरीर और नाम का खयाल बिलकुल लुप्त था। अहंकार (little self) की अनुपस्थिति में ज्ञान का प्रादुर्भाव हुआ। अतः ओ अविद्या-रूप देहाहंकार (अर्थात् अमुक मैं, अमुक पुत्र आदि)! तुम सिद्धान्त के ज्ञात होने पर या प्रबंध के आगमन पर घमंड किस बात का करते हो? "किस बिरते पर तत्ता पानी?" सिद्धान्त और प्रबंध तो ज्ञानस्वरूप अद्वैत सत्ता (राम) से निकलते हैं। यह अद्वैत सत्ता, जहाँ से समस्त संसार का ज्ञान सूर्य-किरणों की तरह अवतीर्ण होता है, तुम्हारा असली स्वरूप है। यही तुम हो, परिच्छिन्न बुद्धि और शरीर आदि नहीं हो। न्यूटन के मस्तिष्क में तुम्हारा ही प्रकाश था, भगवद्गीता तुम्हारी ही एक pencil of light (रश्मि-समुदाय) है, क़ुरान और इंजील तुम्हारे ही स्वरूप-सागर की तरंगें हैं।

अणोरणीयानहमेव तद्वत् महानहं विश्वमहं विचित्रम्।
पुरातनोऽहं पुरुषोऽहमीशो हिरण्मयोऽहं शिवरूपमस्मि ॥ २० ॥
अपाणिपादोऽहमचिन्त्यशक्तिः पश्याम्यचक्षुः स शृणोम्यकर्णः।
अहं विजानामि विविक्तरूपो न चास्ति वेत्ता मम चित्सदाऽहं ॥ २१ ॥

वेदैरनेकैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्।
न पुण्यपापे मम नास्ति नाशो न जन्म देहेन्द्रियबुद्धिरस्ति ॥ २२ ॥
न भूमिरापो न च वह्निरस्ति न चानिलो मेऽस्ति न चाम्बरं च।
एवं विदित्वा परमात्मरूपं गुहाशयं निष्कलमद्वितीयम् ॥ २३ ॥
(कैवल्योपनिषद्)

मयाऽध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौंतेय जगद्विपरिवर्तते ॥ (गी० ९ । १०)

अर्थ—मैं सूक्ष्म से भी सूक्ष्म हूँ और ऐसे ही बड़े से भी बड़ा हूँ। यह नाम-रूप विचित्र विश्व मैं हूँ। मैं सबसे पुरातन पुरुष हूँ, और बलवान्, प्रकाशस्वरूप (आनंदमय) और कल्याणस्वरूप ईश्वर हूँ। मैं हाथ-पाँव से रहित हूँ, और मेरी शक्ति अचिंत्य है। मैं बिना आँख के देखता हूँ और बिना कान के सुनता हूँ। मैं नाना रूप अर्थात् विविध नाम-रूप पदार्थों से भिन्न अपने आपको विशेषतः जानता हूँ, और अन्य मेरा जाननेवाला कोई नहीं है। मैं सदैव चेतनस्वरूप हूँ। सब वेदों से मैं ही जानने योग्य हूँ, और वेदांतशास्त्र का बनानेवाला और वेदों का जाननेवाला मैं ही हूँ। मुझको पुण्य और पाप कोई नहीं है, और न मेरा नाश, जन्म, देह, इंद्रिय और बुद्धि है, और न भूमि, जल, अग्नि, वायु और आकाश ही मेरा है। इस प्रकार अपने भीतर के निष्कल व अद्वितीय परमात्मदेव को जानकर (मैं कृत्य-कृत्य हूँ)। (कैवल्योपनिषद्)

मुझ साक्षी की सहायता से यह प्रकृति समस्त संसार को उत्पन्न करती है। इस प्रकार यह संसार चल रहा है। अर्थात् संसार के समस्त काम मुझ जगत् के अध्यक्ष के सहारे हो रहे हैं। (श्रीमद्भगवद्गीता)

जिज्ञासु—यदि सब एक ही हो, तो लोगों में बुद्धि और शरीर का अंतर क्यों हो? कोई लॉर्ड कैल्विन है, कोई बिलकुल

उजड्ड है, कोई मखमल के गद्दों पर भी नखरे से पैर रखता है, किसी को नागरिक लोक अपनी दुकान के सम्मुख भूमि पर भी नहीं बैठने देते, कोई संसार का भीमसेन है और कोई जन्म-रोगी होकर बिछौने से भी नहीं उठ सकता। विचित्र अनर्थ हो रहा है! कैसा अंधेर मचा है! अत्याचार है! अन्याय है!

ज्ञानी - प्यारे! अंधेर करते हो तुम, जो यह अंतर देखते हो। ऐसी अव्यवस्थित छोटाई-बड़ाई सत्यस्वरूप परमात्मा से यदि कभी भी सचमुच पैदा हुई होती, तो अनर्थ था, उपद्रव था; किंतु सत्य तो यह है कि छोटाई-बड़ाई है ही नहीं। जो इधर रंक दृष्टिगोचर होता है, वही उधर राजा है; जिसे यहाँ रोगी देखते हो, वही वहाँ पहलवान (Sandow) है; जो यहाँ मूढ़ समझा जाता है, वही उस जगह वेदव्यास है। इस कारण कि सबका वास्तविक स्वरूप एक ही है, इसलिये अनर्थ और अत्याचार कैसा?

हस्ती चूँटी तृण ले आदिग। एक अखंडित बसे अनादिग॥

मैं ही जो यहाँ भूखा हूँ, वहाँ कशमीर के मेवे खा रहा हूँ। यहाँ मूढ़ हूँ, वहाँ याज्ञवल्क्य हूँ।

इति तत्त्वमसि प्रभृति श्रुतिभिः। प्रतिपादितमात्मनि तत्त्वमसि॥
त्वमुपाधिविवर्जितसर्वसमम्। किमु रोदिषि मानसि सर्वसमम्॥ १॥
न हि बंधविबंधसमागमनम्। न हि योगवियोगसमागमनम्॥
न हि तर्कवितर्कसमागमनम्। किमु रोदिषि मानसि सर्वसमम्॥ २॥
सुख-दुःख-विवर्जितसर्वसमम्। इह शोक-विशोक-विहीनपरम्॥
गुरु शिष्यविवर्जिततत्त्वपरम्। किमु रोदिषि मानसि सर्वसमम्॥ ३॥
नहि मोक्षपदं नहि बंधपदम्। नहि पुण्यपदं नहि पापपदम्॥
नहि पूर्णपदं नहि रिक्तपदम्। किमु रोदिषि मानसि सर्वसमम्॥ ४॥
बहुधा श्रुतयः प्रवदंति यतो। वियदादिरिदं मृगतोयसमम्॥
यदि चैकनिरंतर सर्वसमम्। किमु रोदिषि मानसि सर्वसमम्॥ ५॥

(अवधूत-गीता, अध्याय ५)

अर्थ—(१) 'तू वही ब्रह्म है,' ऐसा तत्त्वमसि आदि श्रुति-वाक्यों से वर्णन किया गया है। अतः आत्मा की दृष्टि से तू वही शुद्ध स्वरूप है, और उपाधि के दूर करने से तू सबमें सम है। जब तू सर्वत्र सम रूप (सर्व व्यापक) है, तो ऐ प्यारे! फिर तू किसलिये रोता है?

(२) तुझमें बंध और मोक्ष का प्रवेश नहीं, योग और वियोग का प्रवेश नहीं, ऐसे ही तर्क-वितर्क का भी प्रवेश नहीं, तो फिर प्यारे! तू किसलिये रोता है?

(३) यह तत्त्व सर्वत्र सम है, सुख-दुःख से रहित है, शोक-विशोक से परे है, गुरु-शिष्य के विचार से भी वह परमतत्त्व दूर है, ऐसा होते हुए भी फिर तू क्यों रोता है?

(४) उस सत्यस्वरूप में न बंध का पद है और न मोक्ष का, न पुण्य है और न पाप है, न पूर्ण है और न रिक्त (ख़ाली) है, ऐसी दशा को जानते हुए फिर तू क्यों रोता है?

(५) अनेक श्रुतियों ने यह बात कही है कि आकाश आदि ये सब नाम-रूप मृगतृष्णा के समान हैं। और जब वह सब स्थान पर एक और समान है, तो फिर भला तू किसलिये (और क्यों) रोता है? (अवधूत-गीता)

आदम न बूदो मन बुदम, हव्वा न बूदो मन बुदम।
आलम न बूदो मन बुदम, मन आशिक़े-देरीनाअम ॥ १ ॥
बा नूह दर कश्ती बुदम, बा यूसफ़ अंदर क़अ़रे-चाह।
अंदर दमे - ईसा बुदम, मन आशिक़े-देरीनाअम ॥ २ ॥
आँदम कि फ़रऊने - लईं, दर आबे-दरिया ग़र्क़ शुद।
दर हर्बे-मूसा मन बुदम, मन आशिक़े-देरीनाअम ॥ ३ ॥
आँजा कि अहमद बर गुज़श्त, अज़ चारो पंजो हफ़्तो हश्त।
बर हश्तमीनश मन बुदम, मन आशिक़े-देरीनाअम ॥ ४ ॥
ऐ आफ़ताब! ऐ आफ़ताब! गरमी मकुन, गरमी मकुन।

खुद यक जुबाँ खामोश कुन, मन आशिक़े-देरीनाअम ॥ ५ ॥
शाहे-हक़ीक़त बूदा अम, दरियाये-हिकमत बूदाअम ।
मौला कि बाशद पेशे-मन ? मन आशिक़े-देरीनाअम ॥ ६ ॥

अर्थ—(१) ऐ मुसलमानो ! जिस समय हज़रत आदम नहीं थे, उस समय मैं था । जब हव्वा भी नहीं थीं, उस समय भी मैं विद्यमान था, अर्थात् संसार के अस्तित्व के पहले भी मैं था । मैं तो सबसे पुराना आशिक़ (प्रेमी) हूँ ।

(२) किश्ती (नौका) में हज़रत नूह के साथ जो रक्षक बैठा हुआ था, वह मैं ही था । कुएँ की तह में हज़रत यूसुफ के साथ (उनकी रक्षा करनेवाला) मैं था, और हज़रत ईसा के प्राणप्रद श्वास में भी मैं ही विद्यमान था । मैं तो सबसे पुराना आशिक़ हूँ ।

(३) जिस समय हज़रत मूसा की लड़ाई में दुरात्मा फ़रऊन नदी में डूब गया, उस समय भी मैं था । मैं तो ऐ प्यारो ! सबसे पहले का पुराना आशिक़ हूँ ।

(४) जिस स्थान पर कि हज़रत अहमद चौथे-पाँचवें, सातवें और आठवें आकाश से गुज़रे, उस आठवें आकाश पर भी मैं ही मौजूद था । मैं तो ऐ लोगो ! सबसे पुराना आशिक़ हूँ ।

(५) ऐ सूर्य ! ऐ सूर्य ! बहुत तेज़ी (गरमी) मत कर, गरमी मत कर । चुपके हो जा । मैं तेरे से भी पहले का आशिक़ हूँ ।

(६) सच्चाई का मैं बादशाह हूँ, अर्थात् सच्चा बादशाह मैं हूँ, और बुद्धिमत्ता का मैं नद हूँ, अर्थात् अनंत ज्ञान-सागर मैं हूँ, मौला मेरे आगे क्या सामर्थ्य रखता है । मैं तो सबसे पहले का (पुराना) आशिक़ हूँ ।

जिज्ञासु—मैं तो परिच्छिन्न शक्तिवाला हूँ ; ईश्वर सर्वशक्तिमान् है । मेरी गति तो धरती के छोटे खंड तक है ; ईश्वर सर्व-

व्यापक है। मुझ बंदे (जीव) को उस सर्वेश्वर के साथ क्या निसबत (तुलना) ?

चे निस्बत ख़ाक रा बा आ़लमे-पाक।

अर्थ—शुद्ध (पवित्र) लोक को भला धूलि (अर्थात् पृथिवी-लोक) से क्या तुलना ? अर्थात् शुद्ध स्वरूप की परिच्छिन्न जीव से क्या तुलना ?

ज्ञानी—तू परिच्छिन्न शक्तिवाला भला क्योंकर है ? अंततः कुछ तो करने की शक्ति तुझमें है ? जो कुछ तू करता है, वही बता। उससे हम अनुमान कर लेंगे कि तेरी शक्ति परिच्छिन्न है या अपरिच्छिन्न।

जिज्ञासु—मैं सवेरे प्रातःकाल उठता हूँ। शौचादि से निवृत्त होकर व्यायाम करता हूँ। इसके बाद कुछ लिखता हूँ। कुछ पढ़ता हूँ। भोजन करके दफ़्तर जाता हूँ। वहाँ से आकर दूध पीकर सैर को जाता हूँ, या मित्रों से मिलता हूँ। कोई समाचार-पत्र आया हो, तो उसे देखता हूँ। इस तरह दिन कट जाता है। रात को सो रहता हूँ।

ज्ञानी—कुछ और भी तो अवश्य करते हो ?

जिज्ञासु—यही साधारण कार्य करता हूँ। कोई निज का काम हो, तो उसे भी भुगता लेता हूँ। कुछ दिन से रिसाला अलिफ़ (۱) की प्रतीक्षा कर रहा था। इसके अतिरिक्त अपने स्मरण में तो मैं और कुछ नहीं करता।

ज्ञानी—बदलते क्यों हो ? इसके अतिरिक्त अगणित काम नित्य करते रहते हो। उनका नाम ही नहीं लेते, ऐसे भोले बन बैठे हैं कहीं के ! 'याराँ नाल पंज' ठीक नहीं।

जिज्ञासु—'अगणित काम' ! कदापि नहीं। आप ऐसे महात्मा होकर यह क्या कह रहे हैं ?

ज्ञानी—सुनिएगा। यह शरीर तो आप ही का है न ?

जिज्ञासु—हाँ, क्यों नहीं ? और किसका है ?

ज्ञानी—प्रातः इस शरीर से भोजन आप ही ने पाया था न ? और श्वास आप ही ले रहे हो, देख भी आप ही रहे हो, संध्या को खेत में जाकर कल का खाया हुआ त्यागोगे भी आप और सोते भी आप हो, सच है न ?

जिज्ञासु—ठीक है। बिल्कुल ठीक है।

ज्ञानी—आमाशय के द्वारा भोजन कौन पचाता है ?

जिज्ञासु—मैं।

ज्ञानी—और भूल न जाओ कि अपने शरीर की नाड़ियों में ख़ून भी तुम ही चलाते हो। मुख में थूक भी तुम ही बनाते हो। वृक्क (गुरदा) में मूत्र उत्पन्न करनेवाले भी तुम हो। बालों को बढ़ानेवाले भी तुम हो। फेफड़े में श्वास तुम्हारा है। तुम्हारे लीवर (liver, यकृत) में बाइल (bile, पित्त) बाहर से कोई भूत आकर नहीं डाल जाता। जब तुम आँख से देखते हो, तो तत्क्षण कई स्नायुओं (nerves, पट्ठों) का हिलना आवश्यक है, उनको भी तुम ही हिलाते हो। cerebrum (सेरीब्रम, मस्तिष्क) को गति अर्थात् बुद्धि को प्रकाश तुम ही देते हो। इसके अतिरिक्त स्वाभाविक क्रियाओं के तुम ही कारण हो। तुम क्योंकर कुछ कामों का नाम लेकर हठ कर बैठे थे कि 'इनके सिवा मुझसे और कुछ भी नहीं होता ?' स्वप्नावस्था की दशा में जब मन और बुद्धि आदिक (तुम्हारे शस्त्रास्त्र) व्यवहृत नहीं होते, तुम्हारा काम बंद नहीं होता, उस समय भी भोजन पचाए जाते हो, बालों, नखों को बढ़ाए जाते हो। तुम्हें नींद कहाँ ? सदा जागते हो। "कहाँ ख़्वाबे-ग़फ़लत सदा जागता हूँ।"

जब तुम्हारा यह शरीर नन्हा-सा था, उस समय बुद्धि और विवेक से यद्यपि काम नहीं लेते थे, किंतु तुम वही थे, जो इस

समय हो। स्वप्न में भी तुम वही होते हो, जो जाग्रत् में हो। जिस प्रकार तुम एक शरीर में बुद्धि की कारस्तानियाँ, रक्त का संचालन और वृद्धिकरण कराते हो, वैसे ही अन्य शरीरों में भी तुम ही सब कारीगरियाँ कर रहे हो। पत्ते-पत्ते में तुम्हारा प्रकाश है। तुम किस प्रकार कहते थे कि तुम्हारी शक्ति परिच्छिन्न है ?

विज्ञानात्मा सहदेवैश्च सर्वैः प्राणा भूतानि संप्रतिष्ठंति यत्र।
तदक्षरं वेदयते यस्तु सौम्य स सर्वज्ञः सर्वमेवाविवेशेति॥
(प्रश्नोपनिषद् प्र० ४, मं० ११)

तात्पर्य—हे सौम्य! जिसने इस ज्ञानस्वरूप, अक्षय स्वरूप को पहचाना कि जो समस्त इंद्रियों की, जीवन की और परमाणुओं की चट्टान है, वह सब कुछ जान गया, वह सबमें धँस गया।

The one thing needful (एक आवश्यक वस्तु) यही है—

इक्को अलिफ़ तेरे दरकार।

बहुता इल्म अज़ाज़ील पढ़िया, झुग्गा झांझा उसदा सड़िया।
उर्मी जा अरशाँ ते चढ़िया, पूरां दे पूर लँघाए सो पार॥
इल्मो बस करीं ओ यार, इक्को अलिफ़ तेरे दरकार।

अब अपने जीव (परिच्छिन्न) कहलाने का कारण सुनो—

एक राजा के पुत्र को (साधारण बालकों के अनुसार) एक छोटी-सी चितरीली थाली के साथ प्रीति हो गई। जब उसके लिये खाने को कोई वस्तु लाई जाती, तो बड़े हठ और आग्रह के साथ कहता कि "मेरी थाली में लाओ, तब खाऊँगा" यदि किसी बड़े थाल में भोजन परोसकर लाते, तो पैरों से दूर ठुकरा देता, अड़ियलपन दिखाता, और चिल्लाकर डराता। अब कोई पूछे, "भैया, सोने-चाँदी के थाल, कटोरे आदि बहुतायत से यहाँ मौजूद हैं, क्या उनका स्वामी कोई और है ?" मगर बच्चा किसकी सुनता है ? अपना ही हठ पाले जाता है। ठीक

इसी तरह ऐ सच्चे राजकुमार (आत्म) ! तुम अनंत सम्पत्ति-वाले हो, मगर जो कुछ इस "छोटी सी चितरीली थाली" अर्थात् बुद्धि (intellect) में धरा हुआ तुम्हारे सामने उपस्थित हो, उसे स्वीकार करते हो, उसे अपना समझते हो, शेष सब संपत्ति (स्वत्व) को जवाब देते हो, लात मारते हो। यदि बताया जाय कि यह सब अगणित और अपरिमित जायदाद तुम्हारी ही है, अपने तईं क़ैदी न बनाओ, तो उल्टा बुरा मानते हो।

जो कुछ तुम्हारी बुद्धि और इंद्रियों द्वारा स्पष्ट* होता है, केवल उसे ही स्वीकार करना और शेष सब करतूतों से इनकार करना (अर्थात् केवल बुद्धि और इंद्रियों के साथ ही अपने को अभेद identify करना), यही तुमको जीव (परि-च्छिन्न) बनाता है। ज़रा विचारो तो सही, तुम्हें इस आत्म-हत्या करने का क्या अधिकार है ? एक तंग मुखवाली कुप्पी में भुने हुए चने पड़े थे, और यह कुप्पी भूमि में गड़ी थी। बंदर ने आकर चनों के लिये कुप्पी में हाथ डाला, और मुट्ठी भर ली। चनों की भरी हुई मुट्ठी मोटी और भारी हो गई, और कुप्पी का मुँह तंग था, इस कारण हाथ बाहर न निकाल सका। बहुत कुछ यत्न किया, एक न चली, वहीं क़ैद हो गया। चिल्लाता

---

* कर्म अथवा चेष्टाएं दो प्रकार की हुआ करती हैं—एक स्वाभाविक दूसरे संकल्पित। स्वाभाविक (अविज्ञात) तो वे हैं, जिनके होते समय बुद्धि को खबर न हो, जैसे रक्त-संचालन, श्वास-प्रश्वास, अभिवृद्धि आदि। संकल्पित (विज्ञात) वे हैं, जिनके होने के लिये बुद्धि का संबंध होना आवश्यक है, जैसे भोजन, पान, गमन, संभाषण, लेखन, पठन आदि। जब किसी से पूछा जाता है कि तूने आज क्या काम किया ? तो जो कर्म संकल्प द्वारा हुए होते हैं, उनका नाम ले लेता है, बहुसंख्यक स्वाभाविक चेष्टाओं का नाम तक नहीं लेता, मानो वे उसके द्वारा होते ही नहीं हैं।

था, हल्ला मचाता था, किंतु मुट्ठी के चने नहीं छोड़ता था, हाथ नहीं ख़ाली करता था, जिससे स्वतंत्रता प्राप्त हो।

अब बताओ, ऐसे का क्या उपाय? मेरे प्राणप्रिय! तुम्हें कोई क़ैद करनेवाला नहीं, तुम्हारे लिये बंध कहाँ? तुमने तो उस हनुमान् के नातेदार की तरह इंद्रिय और बुद्धि को इस वेग से (अहंकाररूपी) मुट्ठी में लिया है कि बंदी हो गये हो, परिच्छिन्न हो गए हो, जीव कहलाते हो। क्या ही सच कहा है इमर्सन ने कि 'Every man is god playing the fool'. प्रत्येक मनुष्य वास्तव में तो ईश्वर है, किंतु मूर्खताएँ करता है।

मरज़ी चेतन की जभी भ्रव मारन की होय;
मृगतृष्णा के नीर में वह चलियो बिन तोय।

खोलो मुट्ठी। मन और बुद्धि-रूप कुसंग को छोड़ो। केवल एक शरीर में, एक मस्तिष्क में, एक बुद्धि में अपने आपको बद्ध क्यों मानते हो? तुम मुट्ठी तो खोलो, सबके 'यार पक्के हो'। 'छुरी मारने और तलवार मारने' पर भी तुम्हारी यारी समस्त सृष्टि से नहीं छुट सकती। मुट्ठी खोलो, ग्रंथि दूर करो, समस्त प्रकृति को अपनी दुलहिन बना लो।

दिया अपनी ख़ुदी को जो हमने उठा,
वह जो परदा सा बीच में था न रहा।
रहे परदे में अब न वह परदानशीं,
कोई दूसरा उसके सिवा न रहा।

आँ कस कि ख़ाके-मारा गिल कर्दो ख़ाना साख़्त।
ख़ुद दरमियाँ दरासदो मा रा बहाना साख़्त॥

अर्थ—जिसने हमारी मिट्टी का कीचड़ बनाकर अपना घर बनाया, वह स्वयं तो बीच में आ पड़ा और हमारा बहाना बना दिया (तात्पर्य यह कि करने-करानेवाला सब वह है, किंतु हमको मुफ्त में उसका भागी ठहराता है)।

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥
(मुंडक० उप०, अ० २, खं० २, मं० ८)

अर्थ—उस परम पुरुष के देख लेने पर मन की समस्त गुत्थियाँ हल हो जाती हैं, और समस्त कर्म (फल देनेवाले कर्म) नाश हो जाते हैं।

ज्ञानाग्नि में अपने मन-इंद्रियों की आहुति बनाकर डाल दो उस आत्मदेव के लिये, जो सोतों, जागतों (द्विपाद, चतुष्पाद) का केवल एक ही शासक है।

द्वैत-भाव का रुदन विलाप करनेवाली बुद्धि का बलिदान चढ़ाओ उस अद्वैत स्वरूप के आगे, जो समस्त इंद्रियों, जीवन और शक्ति की चट्टान (परा काष्ठा) है।

परिच्छिन्न बनानेवाली बुद्धि को लय कर दो उस हिरण्य-गर्भ में, जिसकी ओर आकाश और धरती काँपते हुए देखते हैं और जिसमें उदित हुआ सूर्य प्रकाशमान है।

ज़रा भीतर की ओर मुँह मोड़कर देखो। तुम ही हो वह, जिसका तेज हिमाचल पर्वत प्रकट करते हैं, जिसकी महिमा नील नभ (या सागर) जतलाता है।

यस्य मे हिमवंतो महित्वा यस्य समुद्रं रस्या सहाहु ।
(ऋग्वेद मं० १०)

अर्थ—बर्फ़ से लदे हुए पर्वत अर्थात् हिमाचल पर्वत जिसकी महत्ता को जतलाते हैं और जिसकी महिमा को समुद्र प्रकट करता है (वह महान् तू है)।

साईं लोक पुकार दे, कर-कर लंबे हाथ ।
तू परमातमदेव है, तू तिरलोकीनाथ ॥

गर्चे ख़ाकी दरीं जज़ीरा-ए-ख़ाक । लेक साक़ी तर अज़ ज़ुलाल तुई ॥
बिगुज़र ज़ि ख़्वेश दर ख़ुद आ यकबार । ता बदानी कि ज़िल्ल अजलाल तुई ॥

अर्थ—यद्यपि तू इस मृण्मयी भूमि में मिट्टी का पुतला है, किंतु बूँद-बूँद से टपके हुए पानी से भी अधिक स्वच्छ तू ही है। अपने से (अहंकार से) आगे बढ़ और एक बेर अपने आप में आ, अर्थात् आत्मानुभव कर, जिससे तू जान ले कि महान् (ईश्वर) तू ही है।

जिज्ञासु—बस भगवन्, बस; अब सुनाते किसको हो ? सुनने-वाले होश तो आपने रहने नहीं दिए।

दिल गुफ़्त मरा इल्मे-लुदुनी हवस अस्त।
तालीमे-कुन अगर तुरा दस्तर्स अस्त॥
गुफ़्तम कि अलिफ़, गुफ़्त दिगर, गुफ़्तम हेच।
दर ख़ाना अगर कस अस्त, यक हर्फ़ बस अस्त॥

अर्थ—दिल ने कहा कि मुझको ऋद्धि-सिद्धि-विद्या की चाह है, यदि तुझको इसमें योग्यता प्राप्त हो, तो मुझको शिक्षा दे। मैंने कहा कि 'अलिफ़'। उसने पूछा कि और आगे भी कुछ ? मैंने कहा कि कुछ नहीं। दिल के घर में अगर कोई स्थान रखने को है, तो वहाँ एक अक्षर (अलिफ़, अ) काफ़ी है।

प्रजापति के उपदेश को इंद्र बत्तीस-बत्तीस वर्ष तक विचारता रहता था, आपके इस "।" (अलिफ़) रूपी उपदेश को हम पूरे बत्तीस दिन तक एकांत में प्रतिदिन विचारेंगे, फिर और सुनने को उपस्थित हो जायँगे।

(जिज्ञासु प्रेम से चरण छूता है)

ज्ञानी—नारायण ! यह क्या ? यह क्या ? अभी से उस सारे उपदेश को भूल गए। ईश्वर के लिये हमें शरीर रूप न समझो, और न अपने आपको इस शरीर में बद्ध मानो। अच्छे जिज्ञासु हो कि आते ही हमें परिच्छिन्न बनाने लगे। प्यारे ! हम तो तेरे भीतर विद्यमान हैं, तेरे शरीर में प्रकाशमान हैं, तेरे घर में पाहुने (मेहमान) हैं, वहीं हमसे अति प्रेम के

साथ आलिंगन ही नहीं, वरन् एकता-लाभ करो। ऐ मेरे प्राण! घर में मेहमान छोड़कर बाजार में फिरते रहना उसका अपमान करना है।

तालिब! मकुन तौहीने-मन दर खाना अत राम अस्त बीं।

रूताफ़्ती अज़ मन चरा? दर क़ल्बे—तो पैदास्तम॥

अर्थ—हे जिज्ञासु! मेरा अपमान मतकर। तेरे घर में राम रहता है, वहाँ देख। ऐ प्यारे! तू मेरे से मुख क्यों फेरता है, मैं तो तेरे दिल में हर समय विद्यमान हूँ।

अपने शरीर और नाम, बुद्धि और देखने-मात्र के परदों को उठाकर देखो, उसी दम राम से मिलाप होगा।

यार असाडे ने अंगिया सुलाया।
असाँ खोल तनी गल ला लिया।
असाँ छुट जानी गल लाय लिया॥

आपे रसिया, आप रस, आपे रावन हार।
आपे ही गल चोलड़ा प्यारे, आपे सेज पधार॥
आपे माछी मछली प्यारे, आपे पानी जाल।
आपे जाल मनक्कड़ा प्यारे! आपे सब दा काल॥
चार कोट चौदह भुवन, सर्व व्यापक राम।
नानक ऊन न देखिए पूरन ताके काम॥

अलिफ़ ओही हैं ओही सुरूप सोहना, सही सच विचार खाँ ओही हैं तूँ।
जिन्हूँ वेद अभेद पुकारदे नी, होया चाम चमकड़ी चूही हैं तूँ॥
तूँ ही विष्णु विरंच सुरेश होया, कहीं काक तोता कहीं कुही हैं तूँ।
हैं तू ही, हैं तू ही, गोपाल सिंहा, कुल तूही हैं, तूही हैं, तूही हैं तूँ॥

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

राम

(रिसाला अलिफ नं० ४ से ६*)

धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवंति। (साम० केनो० मं० २)

अर्थ—ज्ञानवान् पुरुष इस संसार से मुख मोड़कर अमृत पद लाभ करते हैं।

प्रेम-सुराही सो पिये, जो सीस दच्छिणा देत।
लोभी सीस न दे सके नाम प्रेम का लेत॥

ता शाना सिफ़त सर न नहीं दर तहे-अरां।
हरगिज़ ब सरे-ज़ुल्फ़े-निगारे नरसी॥ १॥
ता सुर्मा सिफ़त सूदा न गरदी तहे-संग।
हरगिज़ ब सफ़ा चश्मे-निगारे नरसी॥ २॥
ता हम चो दुर्रे सुफ़्ता न गरदी बा तार।
हरगिज़ ब बना गोशे-निगारे नरसी॥ ३॥
ता गुल शुदा बबरीदा न गरदी अज़ शाख़।
हरगिज़ ब गुले-हुस्ने-निगारे नरसी॥ ४॥
ता ख़ाके-तुरा कूज़ा न साज़ंद कुलालां।
हरगिज़ ब लबे-लाले-निगारे नरसी॥ ५॥
ता हम चो क़लम सर न नही दर तहे-कारद।
हरगिज़ ब सरअंगुश्ते-निगारे नरसी॥ ६॥
ता हम चो हिना सूदा न गरदी तहे-संग।
हरगिज़ ब कफ़े-पाए-निगारे नरसी॥ ७॥

---

* यह स्वामी राम का चौथा लेख है, जो पूर्वोक्त उर्दू मानसिक पत्र "रिसाला अलिफ" में, सन् १९०० में, प्रकाशित हुआ था, जिसको लिखते लिखते स्वामीजी वनों में सहित परिवार पधार गये थे और जो फिर ५, ६ नं० के साथ छापा गया।

अर्थ—(१) जब तक कंघी की तरह तू (ज्ञान के) आरे के नीचे सिर न रक्खेगा, तब तक अपने प्यारे के केश-पाश तक न पहुँच सकेगा।

(२) जब तक तू अर्थात् तेरा व्यक्तिगत अहंकार सुरमे की तरह (ज्ञानरूपी) पत्थर के नीचे घिस नहीं जायगा, तब तक तू अपने प्यारे की आँख तक भी न पहुँच सकेगा।

(३) जब तक कि मोती की तरह तू तार से न छेदा जायगा, तब तक तू अपने प्यारे के कान तक भी न पहुँच सकेगा।

(४) जब तक कि तू फूल होकर टहनी से नहीं काटा जायगा, तब तक तू अपने प्यारे के सुन्दर गले तक न पहुँच सकेगा।

(५) जब तक कि प्रेम-मद्य-विक्रेता रूपी कुम्हार लोग तेरी मिट्टी को पान-पात्र न बना लेंगे, तब तक तू अपने प्यारे के लाल अधरों तक भी न पहुँच सकेगा।

(६) जब तक लेखनी की भाँति तू (ज्ञान के) चाक़ू के नीचे सिर नहीं रक्खेगा, तब तक तू अपने प्यारे की उँगलियों के सिरों तक अर्थात् पोरों तक न पहुँच सकेगा।

(७) जब तक कि मेहँदी की तरह तू (ज्ञानरूपी) पत्थर के नीचे न पिस जायगा, तब तक तू अपने प्यारे के पाँवों के तलवों तक न पहुँच सकेगा।

ख़ाक दर चश्मे कि ओ न शिनाख़्त हुस्ने-ख़्वेश रा।
मुरदा आँ दिल को बला गरदाँ नशुद दरवेश रा॥

अर्थ—उस आँख में धूल पड़े, जिसने अपने सौंदर्य को नहीं पहचाना, और वह दिल मुर्दा हो, जो साधु (सच्चे त्यागी) पर न्योछावर नहीं हुआ।

इश्क़ करन तलवार दी धार कप्पन।
नहीं कम एह भुक्खियाँ नंगियाँ दा॥

एथे थाँ नहीं अड़बंगियाँ दा ।
एह ताँ कम्म है सिराँ थीं लंवियाँ दा ॥
चे, चिता दे चढ़न सुखालड़ा है,
घुट साह इक्को छाल मार देनी ।
नरद इश्क़ दी खेड़नी खरी औखी,
तरस-तरस बाज़ी जान हार देनी ।
जेढ़े इश्क़ दी मौत तों फिरन डर दे ;
वाँग खोतयाँ उमर गुज़ार देनी ।
अज़ ख़ुदी बेज़ार गश्तन दोस्त रा जुस्तन ज़ि जाँ ।
तर्के-दरमाँ कर्दनो ब दर्दे-इश्क़श साख़्तन ॥
ऐ पिसर इश्क़ अस्त जानत ख़्वेशतन रा इश्क़ दाँ ।
ईं चुनीं बाशद ब मानी ख़्वेश रा ब शिनाख़्तन ॥

अर्थ—अपने व्यक्तिगत अहंकार से विरत होना, प्यारे को मन-प्राण से ढूँढ़ना, प्यारे के मिलने में जो दुःख मिलें, उनकी चिकित्सा का त्याग करना, और अपने प्यारे के प्रेम के साथ अनुकूलता करना, ये बातें हैं जिनसे अपना स्वरूप पहचाना जाता है, अथवा अपने आपको पहचानने के ये अर्थ हैं । ऐ बेटा ! तेरा प्राण तो स्वयं प्रेम है, इसलिये तू अपने आपको प्रेम-स्वरूप समझ ।

Whosoever shall save his life shall lose it,
And whosoever shall lose his life shall save it.

अर्थ—जो कोई भी अपना जीवन (प्राण) बचाएगा, वह उसे खोयेगा; और जो कोई उसे खोयेगा, वह उसको बचायेगा । तात्पर्य यह कि अपने प्राण को भगवान् या सर्वसाधारण की सेवा में निछावर करने से अमर जीवन प्राप्त होता है; और यदि स्वार्थपरता से दूसरों की सेवा में वह अपने जीवन का उपयोग नहीं करता, वरन् समस्त आयु पेट-पालू की भाँति केवल पेट के धंधों

में व्यतीत करता है, वह वस्तुतः अपने आपको हर प्रकार से नाश करता है, न इस संसार में उसे सुख और मानवीय जीवन प्राप्त होता है, और न परलोक में।

प्राण दे, प्राण-प्यारे से मिल। सर त्याग, सरदार बन। सूली पर चढ़, मंसूर (विजेता) बन। अपने दीप्तिमान् मुख से आवरण उठा, चंद्र और सूर्य को छिपा।

कुमरियाँ आशिक़ हैं तेरी सरो बंदा है तेरा।
बुलबुलें तुझ पर फ़िदा हैं, गुल तेरा दीवाना है।

ख़ुदी (अहंकार) छोड़, ख़ुदा (ईश्वर) हो।

आपत्ति—बूँद भी कभी नदी हो सकता है? अंश क्योंकर पूर्ण बन सकता है? हम ईश्वर कभी नहीं हो सकते।

उत्तर—प्रथम तो तुम अपने आपको और का और मान रहे हो, आत्महत्या कर रहे हो; और दूसरे ईश्वर को कुछ का कुछ जान रहे हो, उसे परिच्छिन्न बना रहे हो, कलंक लगा रहे हो। ऐसी दशा में सच्चाई आप पर कभी प्रकट नहीं हो सकती। अलबत्ता 'मैं', 'त्वम्' का लक्ष्यार्थ जानो और ईश्वर (तत्) के स्वरूप को पहचानो, तो अभी आनंद का वह माधुर्य प्राप्त हो कि चूँ और चरा के ओष्ट मिल जायँ। "मैं अमुक डिगरी पाया हुआ, अमुक जाति, अमुक वृत्ति, अमुक स्थान-निवासी इत्यादि" तुम नहीं हो, इसका नाम वेदांतवालों ने 'अहंकार' रक्खा है। यह 'अहंकार' तुम नहीं हो। यह 'अहंकार' आत्मा नहीं है, यह 'अहंकार' ईश्वर नहीं है। जब ज्ञानवान् से यह वाक्य सुनाई देता है "मैं ब्रह्म हूँ" (मन ख़ुदायम), तो न 'मैं' से उसका तात्पर्य अहंकार होता है, और न ब्रह्म से तात्पर्य गुणोंवाला परिमित ईश्वर (personal God) होता है। इस वाक्य के तत्त्वार्थ को न समझकर साधारण मनुष्य इस प्रेमानंद को अपनी नासमझी से आकस्मिक विपत्ति समझ बैठता है। अहंकार

(व्यक्तित्व) तेरा स्वरूप नहीं है । इस अहंकार को वेदांत निकालना चाहता है। अहंकार का अभाव करवाता है।

किसी राजा के पास एक अजनबी कवि प्रशंसा की कविता बनाकर लाया, जिसका आरंभ इस प्रकार था—

"ऐ ताजे-दौलत वर सरत अज़ इब्तिदा ता इंतिहा ।"

अर्थ—हे राजन् ! लक्ष्मी का मुकुट तेरे शीश पर आदि से अंत तक (सदैव) सुशोभित रहे ।

राजा साहब फ़ारसी-भाषा से अनभिज्ञ थे, किंतु नियमानुसार अपनी अज्ञानता प्रकट करना न चाहते थे। कविता निस्संदेह बड़ी उत्तम थी। राजा साहब ने गुणग्राहकता दिखाने के लिये उस कवि को पारितोषिक (पुरस्कार) द्वारा धन-संपन्न कर देने की आज्ञा प्रदान की। इस पर दरबार के कवि को बड़ी ईर्ष्या हुई। राजा साहब के सम्मुख उस नवागत कवि से कहा कि अपनी कविता के पदों की ज़रा तक़ती (छंद-मात्रा, गिनती) कीजिए। नवागत कवि तक़ती करने लगा—

"ऐ ताजे - दौ"...मुस्तफ़ालन......"लत वर सरत"... मुस्तफ़ालन...आदि।

बेचारा कवि "लत वर सरत" कह ही रहा था कि दरबार के कवि ने उसकी ज़बान रोक ली कि अरे नीच ! हमारे महाराज को "लत वर सरत", अर्थात् "लात तेरे सिर पर", ऐसा अपमान का वाक्य बोल रहा है ! बस चुप रह। राजा साहब भी क्रोध से भर गए, और ओंठ दाँतों से काटकर बोले—"ऐं ! यह बात है !" वह ग़रीब हक्का-बक्का रह गया कि लेने के देने पड़ गए, इत्यादि।

ठीक इसी तरह ओ राज-राजेश्वर मनुष्य ! वेद भगवान् (कवि) तेरी प्रशंसा के गीत यह कहकर लाया है—"अयमात्मा ब्रह्म", यह आत्मा ब्रह्म है, "तत्त्वमसि" वह तू है, आदि। तू अपने अहंकार से उस पवित्र वाक्य को मत बिगाड़।

"दामे-तज़वीर मकुन चूँ दिगराँ क़ुरआँ रा" अर्थात् औरों की भाँति क़ुरान को छल-कपट का फंदा (जाल) मत बना। इस कविता को रद्द करने से न वेद भगवान् का अपमान कर, और न अपने सिर पर लानत ला।

उपर्युक्त दृष्टांत इस प्रकार भी सुनने में आता है कि नवागत कवि तक़रीर करते समय जब बोला "ऐ ताजे-दौ॰ मुल्तकालन", तब दरबारी कवि बड़ी तेज़ी से चिल्लाया—"आगे भी तो कहो! आगे! आगे!!" नवागत कवि अपने शत्रु के दुष्ट संकल्प को भाँप गया, और तत्काल दरबारी कवि की ओर मुख करके ज़ोर से बोला—"लत बर सरत—मुल्तकालन", जिसके अर्थ यह हैं कि "ऐ छिद्रान्वेषी! लानत तेरे सिर पर है, अर्थात् तुझको फटकार है।"

प्यारे! तेरे मूढ़, स्तुतिकर्त्ता अहंकार की वेद भगवान निंदा करता है—

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहंकारविमूढात्मा कर्ताऽहमिति मन्यते॥ (गीता ३. २७)

अर्थ—माया के गुण करत हैं सभी करन यह जान।
अहंकार-विमूढ़ जन लेत अपन को मान॥

ज़ि हक़ बेख़बर ग़ाफ़िल अज़ ख़्वेशतन।
शिनासद कि हर कार आयद ज़ि मन॥
गिरफ़्तारे-जहलस्त सुल्तां रसासत।
बर अहवाले-शो हैफ़ गुर्दन रवास्त॥

अर्थ—ईश्वर से अपरिचित और आत्मविस्मृत मनुष्य यह समझता है कि जो कुछ काम होता है, वह मेरे से होता है; वह मूढ़ता में फँसा हुआ है और उसका ख़ब्त (पागलपन) उन्नति पर है, उसकी ऐसी दशा पर शोक करना र

"One
By egoism demented, thinks oneself
The doer of those acts which are performed
Throughout by nature's qualities."

अर्थ—अहंकार और घमंड के प्रमाद से उन्मत्त (अज्ञानी और स्वार्थी) मनुष्य जो काम उसके स्वभाव से अपने आप होते हैं, वह (अज्ञान के कारण) उनका कर्त्ता अपने आपको मानता है।

अहंकार को अपने संग में मत रख, अहंकार का अभाव कर। अहंकार के कारण न स्वयं छोटा बन और न ईश्वर को परिच्छिन्न (finite) समझकर अपने से भिन्न बना। बड़ी भारी भूल संसार में यह फैली हुई है कि आत्मा (अपना आप, Self) जो विचार और बुद्धि से परे है, उसको ज्ञात पदार्थों के समुदाय में लाया चाहते हैं; वह निर्गुण है, उसको गुणवाला किया चाहते हैं।

जैसे सूर्य से समस्त पशु, पक्षी और मनुष्यादि प्रतिपालित होते हैं; आँख देखती है सूर्य की कृपा से; हाथ काम करते हैं सूर्य से चेतनता (energy) लेकर; भूमि स्थिर है, तो सूर्य के कारण, समस्त काम-धंधे का क्रम सूर्य की सहायता से चलता है, लोगों के लिये आहार सूर्य की कृपा से उत्पन्न होता है, चंद्रमा की चंद्रिका वस्तुतः सूर्य ही का प्रकाश होती है, तेल प्रकाश को सूर्य ही से प्राप्त करता है, और ईंधन ताप को सूर्य ही से पाकर आता है, संसार में भला-बुरा जो होता है, सूर्य ही की करतूत होती है।

आदित्येनैव ज्योतिषाऽस्ते पल्ययते कर्म कुरुते विपल्यतीति।

अर्थ—सूर्य के प्रकाश से मनुष्य बैठता है, चलता-फिरता है, काम-काज करता है और घर लौट आता है।

किसी अच्छे या बुरे काम को करते समय प्रत्येक अंग और अवयव की गति का कारण सूर्य ही होता है, किंतु कभी न देखा या सुना कि किसी न्यायालय (कचहरी) में सूर्य को प्रतिवादी स्थिर करके नालिश दायर हुई हो।

ऐ प्रकाश के स्रोत ! तुमने यह क्या अंधेर मचा रक्खा है कि प्रत्येक बात के करने-करानेवाले भी हो और अनुत्तरदायी भी बनते हो ! ओ सूर्य ! आप ही तो अपराधी हो और आप ही सब काम-धंधों के देखनेवाले साक्षी बन बैठते हो। कहाँ तक चकने दोगे। आज महान् मनुष्य के न्यायालय में बयान दो—

खाके-पस्ती से अगर दामन तिरा हमदम नहीं।
यह बड़ाई का निशाँ ऐ नय्यरे-आज़म नहीं॥
अपनी हस्ती से भी तू अब तक अगर महरम नहीं।
हमदम यक ज़र्रए-खाके-दरे-आदम नहीं॥
तू सदा मिन्नत पिज़ीरे सुबहो फ़रदा ही रहा।
नूरे-मसजूदे-मलक ज़ेबे-तमाशा ही रहा॥

सूर्य के इज़हार (शुभ प्रतिज्ञा के साथ)—ऐ शासकों के शासक मनुष्य ! सब कुछ मुझसे प्रकट होता भी है और मैं किसी कार्य का कर्त्ता भी नहीं होता। पर आप ज़रा अपने गिरेबान में मुँह डालकर तो देखिए, मेरे कुल और उद्भव-स्थिति का तो पता लगाइए। मैं तो केवल आपका द्योतक हूँ, आपकी छाया हूँ। जो कुछ आप वस्तुतः हो, मैं उसका प्रतिबिम्ब हूँ। मेरी क्या मजाल कि आपके आत्मा को और का और वर्णन कर सकूँ। उल्टा मुझे अपराधी ठहराते हो। क्या खूब—

जादू वह जो सर पर चढ़के बोले।

पाठक ! अब ज़रा विचार करो और देखो कि आपका आत्मा बुद्धि या अहंकार नहीं है, और न वह कभी कहता है कि "मैंने अमुक काम किया, मैंने यह बनाया, वह बनाया,

कैसे-कैसे आनंद उठाए, क्या-क्या न कर दिखलाया, इत्यादि।" आत्मा ऐसा ओछा नहीं कि उस पर यह पद्य लागू हो सके—

इतना भी चाहिए हौसला फ़व्वारा साँ न तंग।
चुल्लू ही भर जो पानी में गज़-भर उछल पड़े॥

आत्मा तो सूर्य के समान है। उससे भिन्न भी कुछ नहीं, और वह कर्त्ता-भोक्ता भी नहीं। अस्तित्व के विशाल मंदिर में आत्मा से सत्ता पाकर पाँचों प्राणों (प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान) से अपना-अपना काम होता है।

यः प्राणेन प्राणिति स त आत्मा सर्वान्तरः। योऽपानेनापानीति स त आत्मा सर्वान्तरः। यो व्यानेन व्यानीति स त आत्मा सर्वान्तरः। यो उदानेनोदानिति स त आत्मा सर्वान्तरः। एप त आत्मा सर्वान्तरः।

(बृह० उप०, ३-४-१)

अर्थ – वह जो प्राणवायु के द्वारा श्वास लेता है, तेरा आत्मा है, सबमें रहनेवाला; वह जो अपान वायु के साथ नीचे को जाता है, तेरा आत्मा है, सबमें रहनेवाला; वह जो व्यान से प्रत्येक स्थान पर पहुँचता है, तेरा आत्मा है, सबमें रहनेवाला; वह जो उदान से ऊपर को चढ़ता है, तेरा आत्मा है, सबमें रहनेवाला; यह तेरा आत्मा सबमें रहनेवाला है।

आत्मा के प्रकाश में सब इंद्रियाँ रहती-सहती हैं। मस्तिष्क रूपी हारमोनियम (बाजा) से बुद्धि और अहंकाररूपी स्वर आत्मा के कारण से निकलते हैं, किंतु यह आत्मदेव इस खयाल से भिन्न और परे है कि "मैं करता हूँ।" आत्मा कभी नहीं कहता कि "मैंने खून बनाया, मैंने हड्डियाँ और पट्ठे तैयार किए, मैंने बाल बढ़ाये, आदि।" सब कुछ होता भी उसी से है और वह आप करने का नाम भी नहीं लेता। करने-कराने की विवेचना (Consciousness) से परे है आत्मा। विवेचना और बुद्धि (Consciousness) तो उसका एक

खेल है। जहाँ सैकड़ों काम उसकी सत्ता से अपने आप हो रहे हैं—जैसे श्वास-प्रश्वास, रक्त-संचालन, लार (थूक)-उत्पादन, अन्न-पाचन आदि—वहाँ मस्तिष्क का सोच-विचार भी उसी के प्रकाश के कारण देखने में आता है। बुद्धि (intellect) एक चिमटे (tongs) की तरह है, जो संसार के सब पदार्थों को पकड़ सकता है, किंतु इस चिमटे में यह सामर्थ्य नहीं कि उन उँगलियों को पकड़ सके, जिनके वश में खुद है, और जिनके वश में आकर वस्तुओं पर अधिकार पाता है। दूसरे शब्दों में, बुद्धि (Consciousness, विवेचना) अनुभव में आनेवाली वस्तुओं पर यद्यपि अधिकार प्राप्त कर सकती है, किंतु आत्मा को नहीं पकड़ सकती, क्योंकि आत्मा उन उँगलियों की तरह है, जिन्होंने चिमटे को वश में कर लिया है—

यो मनसि तिष्ठन्मनसोऽन्तरः, यं मनो न वेद, यस्य मनः शरीरं ।
यो मनोऽन्तरो यमयति एष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥
(बृ० उ०, अ० ३, ब्रा० ७, मं० २०)

अर्थ—वह जो मन (बुद्धि - अहंकार) में रहता है, मन से अंतर (पृथक्) है, जिसको मन नहीं जानता, मन जिसके लिये शरीर (वा वस्त्र की भाँति) है, जो भीतर से मन को चलाता है, वह तेरा आत्मा अंतर्यामी, अमृत है।

खिरद रा दोश मे गुफ़्तम कि ऐ अकसीरे-दानाई ।
हमत बेमग़ज़ हुशियारी हमत बेदीदा बीनाई ॥
चे गोई दर वजूद आँ कीस्त कीं शायस्तगी दारद ।
कि तो बा आबरूए-हमेश ख़ाके-पाए-ओसाई ॥

अर्थ—कल रात मैं बुद्धि से कहता था कि ऐ समझ की रसायन ! तेरा चातुर्य बिना मस्तिष्क के है, और तेरा समस्त दर्शन बिना आँखों के है। तू बतला कि इस शरीर में वह कौन है,

जो ऐसी योग्यता रखता है कि तू अपने मुखमंडल की कांति पर उसके पैरों की धूलि मलती (घिसती) है।

आपत्ति—संसार में तो दो ही प्रकार की वस्तुएँ होती हैं—जड़ (बुद्धि-रहित, unconscious) और चेतन (बुद्धि-सम्पन्न, Conscious)। आपके कथन से यह सिद्ध होता है कि आत्मा चेतन नहीं है, क्योंकि आप कहते हैं कि आत्मा से कोई काम होते समय आत्मा में यह विचार नहीं होता कि "मैं कर रहा हूँ", अतः इस हेतु कि आत्मा 'चेतन' नहीं है, तो वह आपके तर्क-शास्त्र की दृष्टि से 'जड़' अवश्य है।

बड़े आश्चर्य का स्थान है कि आपका वेदांत आत्मा को जड़ मानता है। ऐसा जड़ आत्मा भला चेतन बुद्धि को शक्ति देने की क्या सामर्थ्य रख सकता है ?

उत्तर—हाँ, संसार में तो दो ही प्रकार के पदार्थ होते हैं—जड़ और चेतन, किंतु आत्मा संसार की वस्तु नहीं है। यह माल इंद्रियों के गली-कूचों में नहीं बिकता।

होश भी जिस पर फड़क जाएँ, वह सौदा और है।

पाए-ज़ाहिर रौ हमेशा राहे-ज़ाहिर मेरवद।
क़तआ राहे-बातनीहा कारे-पाए दीगर अस्त॥

अर्थ—प्रत्यक्ष रीति पर चलनेवाला पग (अर्थात् वह पग जो सदैव केवल दिखलावे वा असत्य मार्ग या धर्म पर चलता है) सदैव दिखलावे के मार्ग पर चलता है, किंतु सच्चे रास्ते पर चलना किसी और पग का काम है।

आपके अर्थों में जड़ और चेतन को लिया जाय, तो आत्मा न जड़ है, न चेतन, वह वर्णन में आ ही नहीं सकता। जब तक तुम जड़ और चेतन की बुद्धि रखते हो, आत्मा का साक्षात्कार नहीं हो सकता। जब आत्मसाक्षात्कार होगा, जड़ चेतन की बुद्धि उठ जायगी। यह तो बताओ, आत्मा सोचे, तो क्या सोचे। सोचने

के व्यवहार में किसी अन्य वस्तु का ज्ञान होना आवश्यक है। आत्मा से भिन्न कोई वस्तु ही नहीं, तो पहचान के क्या अर्थ? और सोचना कैसा?

जब मैं भी वह (आत्मा), यह भी वह (आत्मा), वह भी वह (आत्मा), और सब ही कुछ वह (आत्मा) है, तो उससे भिन्न शेष क्या रहा, जिसके विषय में वह (आत्मा) सोचे। आत्मा में संसार कहाँ रहा? सूर्य की इतनी आयु हो गई, सूर्य ने अँधेरा कभी स्वप्न में भी नहीं देखा। दिन और रात, अँधेरा-उजेला भूमि के लिये थे। सूर्य में न कभी रात पड़ी है, न दिन चढ़ा है। दिवाकर ने जहाँ दृष्टि डाली, अँधेरे ने आँख चुरा ली। प्यारे! सूर्यों के सूर्य आत्मदेव के लिये अज्ञान या संसार कहाँ? आत्मा को भला कैसा सोच-विचार? सोच-विचार तो देश-काल-वस्तु आदि में फँसे हुए के लिए ठीक है। जो भूत, भविष्य, वर्तमान, सब काल में प्रकाशमान हो, वह किस कल या परसों की चिंता करे। जो सब घरों में विद्यमान हो, वह किस लुप्त स्थान तक पहुँचने की चिंता करे? जो सर्वव्यापक हो, वह किस प्राप्तव्य पुण्य के पाने का उपाय करे?

क्या सोचे क्या समझे राम? तीन काल का वाँ क्या काम?
क्या सोचे क्या समझे राम? तीन लोक नहीं उपजा धाम?
नित्य तृप्त सुखसागर नाम? क्या सोचे क्या समझे राम?
जहाँ राम तहाँ काम नाँह, जहाँ काम नहिं राम।

——:o:——

यत्र हि द्वैतमिव भवति, तदितर इतरं पश्यति,
तदितर इतरं जिघ्रति, तदितर इतरं रसयते,
तदितर इतरमभिवदति, तदितर इतरं शृणोति,
तदितर इतरं मनुते, तदितर इतरं स्पृशति,
तदितर इतरं विजानाति, यत्रत्वस्य सर्वमात्मैवाभूत,

तत्केन कं पश्येत्, तत्केन कं जिघ्रेत्, तत्केन कं रसयेत,
तत्केन कमभिवदेत्, तत्केन कं शृणुयात्, तत्केन कं मन्वीत्,
तत्केन कं स्पृशेत्, तत्केन कं विजानीयात्, येनेदं सर्वं विजानाति,
तं केन विजानीयात्,......विज्ञातारमरे केन विजानीयादिति।

(बृह०, अ० ४, ब्र० ५, मं० १५)

अर्थ—जहाँ भिन्नता दिखाई देती है, वहाँ एक दूसरे को देखता है, वहाँ एक दूसरे को सूँघता है, वहाँ एक दूसरे का रस लेता है, वहाँ एक दूसरे की चर्चा करता है, वहाँ एक दूसरे को सुनता है, वहाँ एक दूसरे की चिंता करता है, वहाँ एक दूसरे को छूता है, वहाँ एक दूसरे को जानता है। किंतु जहाँ सब कुछ एक आत्मा ही आत्मा हो, वहाँ किसको किससे देखे? किसको किससे सूँघे? किसका किससे रस लेवे? किसकी किससे चर्चा करे? किससे किसकी सुने? किससे किसकी चिंता करे? किससे किसको छुए? किससे किसको जाने? जिससे ये सब वस्तुएँ जानी जाती हैं, उसको किससे जाने?......हे (प्रिये)! वह जाननेवाला (ज्ञानस्वरूप) किससे जाना जाय?

ऐ ख़ुदा जोयाँ ख़ुदा गुमकर्दायेद।
गुम दरीं अमवाज क़ुलज़ुम कर्दायेद॥

अर्थ—ऐ ख़ुदा के ढूँढ़नेवालो! तुमने अपने खोज से ख़ुदा को लुप्त कर दिया है, और उन (प्रयत्नरूपी) लहरों में तुमने उस समुद्र (अनंत सामर्थ्य) को छुपा दिया है।

कहीं यह न समझ बैठना कि आत्मा दीवाल की भाँति जड़ (अर्थात् अज्ञान से आवृत अथवा तमसावृत) है। आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है। श्रुति भगवती की आज्ञा सुनो—

यद्वै तन्न पश्यति, पश्यन्वै तन्न पश्यति, न हि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वाद्, न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यत् पश्येत्॥

(बृ० उ०, ४-३-२३)

अर्थ—(यदि यों कहो कि) आत्मा वहाँ (सुषुप्ति में) कुछ नहीं देखता, तो (यद्यपि नहीं देखता पर) देखता हुआ नहीं देखता है, क्योंकि द्रष्टा-स्वरूप आत्मा में देखने की शक्ति कभी नष्ट नहीं होती, वह अविनाशी है; किंतु वहाँ कोई दूसरा है नहीं, आत्मा से भिन्न का नाम और चिह्न वहाँ लुप्त है। अतः आत्मा देखे किसको ?

आगाहनियम अज़ शिवहे-तो दानम कि नज़ादस्त।
दोशीज़ए-अज़ दूदहे-शिवहे-तो अदम रा॥

अर्थ—मैं तेरी उपमा से परिचित नहीं हूँ, क्योंकि मैं जानता हूँ कि प्रकृति ने तेरा उदाहरण उत्पन्न नहीं किया है। नास्ति की कुमारी कन्या तेरी उपमा के वंश में से है, अर्थात् तेरी उपमा 'नहीं' रूप है।

यद्वै तन्न मनुते, मन्वानो वै तन्न मनुते। न हि मन्तुर्मतेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वाद्, नतु तद्द्वितीयमस्ति, ततोऽन्यद्विभक्तं यन्मन्वीत॥

(बृह० उ०, ४-३-२८)

अर्थ—आत्मा कुछ नहीं सोचता और यद्यपि नहीं सोचता, पर सोचता हुआ नहीं सोचता है। आत्मा में सोचने की शक्ति कभी नष्ट नहीं होती, क्योंकि वह अविनश्वर है; किंतु वहाँ कोई दूसरा है नहीं; आत्मा से भिन्न का नाम और चिह्न लुप्त है। अतः आत्मा किसको सोचे ?

सलिल एको द्रष्टाऽद्वैतो भवति। एष ब्रह्मलोकः ·······एषाऽस्य परमागतिरेषाऽस्य परमा संपदेषोऽस्य परमो लोक एषोऽस्य परम आनंदः।

(बृ० उ०, ४-३-३२)

अर्थ—आत्मदर्शी ज्ञानी वह अनुपम सिंधु हो जाता है, जिसकी तरंगें और बुद्बुदे आदि चित्र-विचित्र प्रकार के हैं। ज्ञान ही ब्रह्मलोक है।······यही (आत्मज्ञान) उसकी परम गति है, यही उसकी बड़ी से बड़ी संपत्ति (विभूति), यही उसके लिये उच्चतम पद वा लोक है, और यही उसका परम आनंद है।

प्रेयान्यः सदनधनात्मज प्रियादेर्यत्प्रेम्णा प्रियमिति मन्यते परा चः ।
परार्थ्यावधिरवधीरि तैतराथ्यों विज्ञेयः, स खलु सुखाब्धिरन्तरात्मा ।
(स्वराज्यसिद्धि)

अर्थ—आत्मा जो सबका सहारा है; धन, धाम, स्त्री, पुत्र आदि सबसे अधिक जिसकी चाह है; जिसके लिये अन्य वस्तुएँ प्रिय होती हैं; जो सबकी कामनाओं का परिणाम है; जिसके लिये सब वस्तुएँ हैं, और जिसको कोई प्रयोजन नहीं है; ऐसे आत्मा को क्यों साक्षात्कार न किया जाय, ऐसे आत्मा का ज्ञान क्यों न प्राप्त किया जाय ?

जिज्ञासु—अभी कुछ पल्ले नहीं पड़ा । गड़बड़-सी मच गई है ।

ज्ञानी—आत्म-साक्षात्कार कोई खालाजी (मौसीजी) का घर नहीं है । यहाँ धैर्य और संतोष की आवश्यकता है । सरकार के यहाँ छोटी-छोटी असामियों के लिये कई वर्ष आशावान् रहना पड़ता है, और फिर भी नौकरी चाहे मिले, चाहे न मिले; अनन्त ज्ञान के लिये इतना अधिक असंतोष ! वाह, साहस मत हारो ।

श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः शृण्वन्तोऽपि बहवो यन्नविद्युः ।
आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धाऽऽश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः ।
(यजुर्वेद कठो०, अ० १, व० २, मं० ७)

अर्थ—प्रायः लोग तो इस आत्मा की चर्चा सुनने ही नहीं पाते, सुन-सुनकर भी लोग समझ नहीं सकते । धन्य है यह ज्ञान बतानेवाला, और धन्य है उसका मिलना, और धन्य है उस विद्या का पानेवाला और धन्य है उस सच्ची शिक्षा का पाना ।

लोगों को वेदान्त क्यों नहीं भाता ?

जब कोई नया ख़याल मनुष्य सोचता है, तो दिमाग़ के गूदे में एक धारी-सी पड़ जाती है। बालक जब नई-नई संगति में से गुज़रता है या नई-नई पुस्तकों को पढ़ता है, तो उसके दिमाग़ के गूदे में नई-नई धारियाँ छप जाती हैं, और आगे चलकर फ़ोनोग्राफ़ की भाँति खयाल की चढ़ाई उन लकीरों (धारियों) पर सरल हो जाती है। अर्थात् जो विचार एक बार हृदयंगम हो चुके हों, उनको दुबारा स्मरण करना-कराना या समझना-समझाना सहल हो जाता है, और उन विचारों के संबंध में कहीं चर्चा हो रही हो, तो वह तत्काल समझ में आ जाती है। किन्तु यदि कहीं इस प्रकार के विचारों का सिलसिला सामने आ जाय कि उनमें और मस्तिष्क की वर्तमान लकीरों (धारियों) में कोई समानता न हो, तो कुछ पल्ले नहीं पड़ता, बुद्धि चकरा जाती है, गड़बड़ मालूम देती है। कथा-कहानियों में प्रायः उन बातों की चर्चा होती है, जिनके अनुसार नित्यप्रति के अनुभव ने मस्तिष्क में पहले ही से लकीरें (धारियाँ) बना रक्खी हैं; इसलिये साधारण उपन्यास-नाटक को पढ़ते समय मस्तिष्क में उन प्रस्तुत लकीरों (पटरियों) पर मनुष्य की समझ रेलगाड़ी की भाँति दौड़ जाती है। परन्तु दर्शन या गणित-शास्त्र का अध्ययन करते समय मस्तिष्क में नई लकीरें तैयार करनी पड़ती हैं, इस कारण इन विद्याओं के प्राप्त करने में बड़ी कठिनाई होती है। वेदान्त के कठिन समझे जाने का मुख्य कारण यही है।

मैत्रायण ब्राह्मण उपनिषद् में आया है कि व्याकुलता के जाल में फँस जाने का कारण निश्चय-पूर्वक यही है कि जो स्वर्ग अर्थात् पवित्रता में रहने योग्य हैं, वे उनकी संगति करते हैं कि जो उस स्वर्ग अर्थात् भीतरी पवित्रता के योग्य नहीं। आजकल के प्रायः सभी युवक बाल्यावस्था से ही ऐसी संगति

में अपना समय बिताते हैं, ऐसी किताबों को पढ़ते हैं, और इस प्रकार की शिक्षा पाते हैं कि संसार का अल्पकालिक जीवन उनके मस्तिष्क में घर कर बैठता है। वास्तविक रहस्य की ध्वनियाँ निकालनेवाली कोई तार उनके मस्तिष्करूपी तंबूरे में लगने ही नहीं पाती, तो अवसर पर बजे क्योंकर ? जब कहीं व्याख्यान आदि में वे अपनी रुचि की बात सुन पाते हैं, तो उसके उत्तर में उनके हृदय की कोई तार हिल जाती है, इसलिये झट तालियाँ बजाते हैं। पर जहाँ परमार्थ का उपदेश सुनाया, आत्मज्ञान की कोई बात पढ़ी, ऊँघने लगे, जम्हाई लेने लगे, तबियत घबरा गई, बोल उठे— "मन नहीं लगता, कुछ मज़ेदार (interesting) नहीं है, जी उकता गया"; यह नहीं तो कोई और हुज्जत पेश कर दी। गणित, दर्शन, विज्ञान-शास्त्र यद्यपि कठिन हैं, पर हमारे नवयुवक इन कठिनाइयों को विश्वविद्यालय की परीक्षा के भय से उत्तीर्ण कर जाते हैं। और माना कि ब्रह्मविद्या (वेदांत) भी गूढ़ है, पर मृत्यु की परीक्षा पास करने के लिये इसी की आवश्यकता है। किंतु आश्चर्य का स्थान है कि प्रायः सभी नवयुवक अंतिम परीक्षा (final examination) अर्थात् मृत्यु को ऐसा भूल बैठे हैं कि उसके लिये इस विषय की ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते।

प्रायः सभी बच्चों में एक खूबी की बात यह होती है कि मस्तिष्क में नई लकीरें प्राप्त करने को सदैव तत्पर रहते हैं—अर्थात् शिक्षाशील (docile) होते हैं, नई-नई बातों के जानने (information) के भूखे और प्यासे होते हैं। ज्ञान के लिये बच्चों की-सी भूख कुछ नवयुवकों और वृद्धों के भीतर भी पाई जाती है, किंतु आजकल भारतवर्ष में बहुत विरले। प्रायः नवयुवकों में यह दोष हो जाता है कि ज्ञान-भंडार

उपलब्ध करने के लिये सुस्त हो जाते हैं, दिमाग़ की जाग्रति खो बैठते हैं, जड़ (inert) बन जाते हैं; क्या पड़ी है कि अपने सांसारिक विचारों की लकीरें, जो मस्तिष्क में बन चुकी हैं, मिटाकर आध्यात्मिक विचारों का रंग जमाएँ।

किसी व्यक्ति की सम्मति—एक गाड़ी को सैकड़ों कठिनाइयों से खींच-खाँचकर किसी पहाड़ी सड़क पर चढ़ाओ, और पहाड़ की चोटी तक ले जाकर छोड़ दो, तो किस वेग से गाड़ी स्वयं नीचे गिरती-गिरती लौट आयगी! यही दशा प्रायः आजकल के विद्यार्थियों की है। विद्या की गाड़ी को खींचते-खींचते शिक्षा-प्रणाली की चोटी (एम्० ए०, बी० ए०) तक पहुँचाते हैं, और वहाँ पहुँचते ही छोड़ देते हैं, अर्थात् पुस्तकावलोकन को नमस्कार कर लेते हैं, अनुसंधान और विवेचना को बिलकुल त्याग देते हैं, और थोड़े ही साल में सिवा अपने दफ़्तर की प्रचलित विद्या के बाक़ी सब पढ़ा-लिखा हृदय के तख़्ते से साफ़ धो डालते हैं। यद्यपि यह सम्मति बिलकुल दुरुस्त तो नहीं, किंतु इसमें भी संदेह नहीं कि चाहे सामाजिक संबंधों के कारण हो, चाहे निकम्मी घरेलू चिंताओं के कारण, कॉलेज छोड़ते ही शिक्षित पुरुषों की विद्या और आत्मा की उन्नति प्रायः रुक जाती है। जब यही दशा है, तो वेदांत को कौन पढ़ेगा?

वेदांत के कठिन होने का बड़ा भारी कारण यह है कि प्रत्येक मनुष्य में यह योग्यता नहीं होती कि उस पर तत्त्व-वस्तु का रहस्य खुल सके। जैसे डेढ़ वर्ष का बच्चा मेघदूत का अर्थ समझने के अयोग्य होता है; हाँ, कुछ शिक्षा पाकर कालिदास के सब नाटकों का अर्थ अपने आप लगा सकता है। वैसे ही वेदांत का भेद जानने के लिये संसारी मनुष्य को शिक्षा की आवश्यकता है, अंतःकरण की शुद्धि की आवश्यकता है। हृदय-दर्पण की छाईं उतर जाने पर ज्ञान की ज्योति अपने आप ही प्रकाशित हो जायगी।

आंतरिक शुद्धि

वेदांत किसी मत-मतान्तर का नाम नहीं है कि दूसरे मत के लोग उस पर आक्षेप करें, तो ठीक हो। यह तो उस आत्मा (तत्त्व-वस्तु) का ज्ञान (The Science of the Soul) है, जो सबका स्वरूप है। यह ब्रह्मविद्या तो गणित की भाँति वह ज्ञान है, जिसमें संशय का नाम-निशान नहीं। अंकगणित से वही विद्यार्थी नाक-भौं चढ़ाए रहते हैं, जिनकी अपनी बुद्धि दुरुस्त नहीं या जिनमें स्थिरता नहीं होती। वेदांत से भी वही महाशय अप्रसन्न रहते हैं, जिन्होंने उचित रीति से कभी उसकी प्राप्ति नहीं की। ज्ञान की प्राप्ति दो रीति से हो सकती है—(१) पुस्तकीय ज्ञान (theoratical knowledge). (२) व्यावहारिक ज्ञान (practical or experimental knowledge)। रसायन-शास्त्र का पढ़नेवाला साथ-ही-साथ प्रयोग भी न करता जाय, तो कभी उस विद्या से लाभ नहीं उठा सकता। वैसे ही आत्मविद्या का जिज्ञासु तभी आनंद उठा सकता है, जब विद्या के साथ-साथ उसका प्रयोग (व्यवहार) भी होता जाय। गणित-शास्त्र में किसी रीति को केवल कंठस्थ कर लेना ही काफ़ी नहीं होता। जब तक उस रीति से संबंध रखनेवाले अभ्यास के प्रश्न हल न किए जायँगे, उसमें प्रवेश न होगा। जब तक गणित की रीतियाँ जिह्वा पर हैं, सफलता नहीं होती। सफलता के लिये तो रीतियों का नखों में उतर आना आवश्यक है; अर्थात् रीतियों पर इतना अधिकार अपेक्षित है कि मानों अपने आप उँगलियाँ उन रीतियों के अनुसार प्रश्न हल करती चली जायँ। यही हाल वेदांत का है। इस विद्या का आनंद तभी है, जब ब्रह्म-अभ्यास इस कोटि का हो कि शम, दम, विवेक, वैराग्य आदि अपने आप रोम-रोम में झलकने लगें, चितवन से शांति और आनंद बरसने लगें, वाणी से आनंद टपकने लगे। कोई

व्यक्ति यदि रेखागणित की ४७वीं शकल का सबूत पढ़ा चाहे, तो उसे उचित है कि पहले ४६ शकलों को समझकर आए। यदि वह उन शकलों को नहीं जानता, तो ४७ वीं शकल भी उसकी समझ में नहीं आवेगी। अगर कोई बालक हिसाब में महत्तम समापवर्तक (G. C. M.) की रीति सीखना चाहता है, किंतु गुणा और भाग नहीं जानता, तो उसे महत्तम समापवर्तक कभी नहीं आवेगा। ठीक इसी रीति पर यदि सत्य का जिज्ञासु वेदांत के नीचे-लिखे आरंभिक पाठों को व्यावहारिक रूप से याद न कर लेगा, तो वह चाहे जितने ग्रंथों को पढ़ा करे, आत्मिक आनंद से वंचित ही रहेगा।

व्यावहारिक शिक्षा

बाल्यावस्था में जब पांडव और कौरव एक साथ पढ़ते थे, एक दिन उन सबकी परीक्षा ली गई। किसी विद्यार्थी ने तो आधी किताब सुनाई, किसी ने पूरी, किसी ने दो किताबों में परीक्षा दी, किसी ने चार में, किन्तु युधिष्ठिर से जब पूछा गया कि तुमने क्या कुछ याद किया है, तो उसने बालोपदेश के अक्षर-परिचय के अतिरिक्त केवल दो वाक्यों की ओर संकेत किया कि "केवल ये दो वाक्य मैंने याद किये हैं।" यह सुनकर परीक्षक महोदय को अत्यंत क्रोध हो आया, और बोले—"अरे दुष्ट! तू सबसे तो बड़ा है, और अभी तक याद केवल दो ही वाक्य किये हैं, यह कैसी सुस्ती है? तुझे लज्जा नहीं आती? चुल्लू-भर पानी में डूब मर, इत्यादि।" परीक्षक महोदय ने इतने ही पर बस न की, दे चपत पर चपत लगे मारने। बेचारे युवराज राजकुमार के कपोल मारे थप्पड़ों के लाल कर दिए, पर वाह रे राजकुमार! उफ़् तक नहीं की, शांत खड़ा रहा। यह दशा देखकर परीक्षक महोदय को अत्यंत विस्मय हुआ; जी में आया कि

आज दुर्योधन को किसी अपराध पर धमकाना चाहा था, तो वह पगड़ी उतारने को तैयार हो गया था। भगवान्! यह कैसा राजकुमार है कि इसे कोसते-कोसते वा पीटते-पीटते अधमरा कर दिया, और इसने चूँ तक नहीं की, प्रसन्न-मुख खड़ा है।

अब युधिष्ठिर का हाल सुनिए। अक्षर-परिचय होने के बाद पहला ही वाक्य जो गुरुजी ने प्राइमर (बालोपदेश) में बतलाया, यह था कि "क्रोध मत करो।" सुशील बालक ने गुरुजी की जिह्वा से यह वाक्य सुना, और अलग हुआ। एकांत में जाकर गुरुजी के उपदेश को याद करने लगा, उस पर विचार करने लगा, कानों से सुने हुए पाठ को रोम-रोम में उतारने लगा, अपने व्यावहारिक जीवन में लाने लगा। बेचारे भोले-भाले युधिष्ठिर को उस शिक्षा-कला की खबर तक न थी, जिसकी बदौलत साधारण बाबू और पंडित लोग विद्यारूपी गंगा की नहर अपने मस्तिष्क पर इस सफ़ाई के साथ बहा देते हैं कि रुड़कीवाली नहर की भाँति एक बूँद भी पुल से नीचे गिरने नहीं पाती। ऊपर-ऊपर तो गंगा बहती है और निचला हिस्सा सूखा का सूखा पड़ा रहता है। देखने में तो सैकड़ों पुस्तकें पढ़ डालीं, परीक्षाओं में पूरे-पूरे अंक प्राप्त किए, विश्व-विद्यालय से पारितोषिक और पदक प्राप्त किए, किंतु भीतर एक बूँद भी न पड़ने दी, आचरण में कुछ न प्रवेश होने दिया। बेचारा युधिष्ठिर इस कला से बिलकुल अपरिचित था। उसने जो कुछ पढ़ा, झट उसके हृदय में उतरने लगा। उसके विचार-क्रम का रूप यह था —

"क्रोध मत करो", भला यह क्योंकर? हमें तो क्रोध आ जाता है। फिर आता क्यों है? क्या उचित है या अनुचित? क्रोध के बिना काम चल सकेगा या नहीं? यदि क्रोध न किया, तो नौकर लोग ढीठ हो जायँगे, काम अच्छा न करेंगे, रोब (प्रभाव

या डर) उठ जायगा, प्रबंध बिगड़ जायगा, रसोई समय पर तैयार न होगी, इत्यादि। क्रोध को छोड़ने में कठिनाइयाँ तो होंगी, पर क्या क्रोध को छोड़ना असंभव है ? यदि असंभव होता, तो गुरुजी ऐसा उपदेश ही क्यों करते ? सच्छास्त्र ऐसी आज्ञा ही क्यों देते ? अब क्या करें, क्रोध तो आ ही जाता है। क्या यह उचित न होगा कि यों तो मान लिया जाय कि क्रोध करना अनुचित है, पर समय पर क्रोध आ जाय तो आ जाने दें ? नहीं, यह तो छल है, गुरु और शास्त्र के साथ धोकेबाज़ी है। मुँह से हाँ कर लेना और अमल में न लाना। अब से दृढ़ संकल्प करते हैं कि "क्रोध को पास फटकने न देंगे।" क्रोध क्यों उत्पन्न होता है ? प्रायः जब कोई काम बिगड़ता है, या कोई वस्तु ख़राब हो जाती है, तो क्रोध आता है। अरे मन, काम तो एक बार विगड़ चुका, तू उस पर चित्त को क्यों विगाड़ता है ? वस्तु तो ख़राब हो गई, बला से, रुपया-दो रुपया या सौ रुपया की होगी, तिस पर चित्त-जैसी अनमोल वस्तु को क्यों ख़राब कर बैठता है ? आनंद मेरा जन्मजात स्वत्व है। यदि कोई सांसारिक वस्तु खो जाय, तो उस पर मैं अपने जन्मजात स्वत्व को व्यर्थ में क्यों नष्ट कर दूँ ? एक बार दुर्योधन ने अपने पिता से तलवार माँगी थी। पिता ने इनकार किया था, तो दुर्योधन झट बिगड़कर बोल उठा था— "मैं तुम्हारे घर में रहने ही का नहीं, तुम्हारा बेटा ही नहीं बनता, कहीं चला जाऊँगा, विष पान कर लूँगा इत्यादि।" अब तलवार अधिक-से-अधिक कहीं दस-बीस रुपये की होगी, खो दी, तो खो ही दी सही। तलवार को खोकर अपने जन्मजात स्वत्व (साम्राज्य-राजगद्दी) को भी खो देने पर तत्पर हो जाना कैसी व्यर्थ क्रिया है। ठीक इसी भाँति सतोगुण मेरा जन्मजात स्वत्व है। दुर्योधन का अनुकरण मैं कभी नहीं करूँगा। किसी

तरह की हानि हो जाने पर भी मैं अपने जन्मजात स्वत्व (शांति) का कभी त्याग नहीं करूँगा। राजकुमारों के यहाँ रिवाज तो अवश्य यही है कि बात-बात पर बिगड़ जाना, उरद के आटे की तरह ऐंठना; किंतु गुरुजी का उपदेश है "शांत रहो, मन को हिलने ही न दो।" अब किसको आचरण में लाऊँ? गुरुजी तो एक ही हैं, किंतु उनके विरुद्ध बर्ताव से शिक्षा देने-वाले असंख्य हैं। किसकी मानूँ? उचित तो यही है कि गुरुजी का आज्ञावर्ती बनूँ। मैं चलन और व्यवहार की तनिक परवाह न करूँगा। जो कुछ मुझे गुरुजी के द्वारा सत्य मालूम होगा, उसी पर चलूँगा, चाहे सारा संसार विरुद्ध हो। मैं संसार को अपना गुरु नहीं बनाऊँगा; केवल सत्यता को अपना साथी रक्खूँगा। *

वेदांत का एक साधन (प्रसन्नता)

परित्यजेयं त्रैलोक्यं राज्यं देवेषु वा पुनः।
यद्वाप्यधिकमेताभ्यां न तु सत्यं कथंचन॥
त्यजेच्च पृथिवीं गंधमापश्चरसमात्मनः।
ज्योतिस्तथा त्यजेद्रूपं वायुः स्पर्शगुणं त्यजेत्॥
प्रभां समुत्सृजेदर्को धूमकेतुस्तथोष्मतां।
त्यजेच्छब्दं तथाकाशं सोमः शीतांशुतां त्यजेत्॥

---

* यह विषय इतना समाप्त हुआ ही था कि राम महाराज गृहस्थी छोड़ वनों को सिधार गये। बहुत काल के बाद इस विषय का शेष लेख जो "वेदांत का एक साधन (प्रसन्नता)" के शीर्षक से प्राप्त हुआ था, और जो रिसाला अलिफ़ के नं० ५ व ६ में प्रकाशित किया गया था, उसे भी यहाँ ही दे दिया गया है, यद्यपि उर्दू के खुमखानाए-राम में यहाँ राम से प्राप्त हुए कुछ पत्र दिये गये हैं, जिन्हें हमने उचित समझकर हिन्दी 'रामपत्र' में दे दिया है, ताकि पाठकगण एक ही स्थान पर इस सारे लेख को ऊपर के सिलसिले में पढ़ सकें, और उधर एक ही स्थान से राम के सब पत्र पढ़ सकें।

विक्रमं वृत्रहा जह्यात् धर्मं जह्याच्च धर्मराट् ।
न त्वहं सत्यमुत्स्रष्टुं व्यवसेयं कथंचन ॥ (म० भा०)

अर्थ—तीनों लोकों का त्याग करना, स्वर्ग का राज्य छोड़ देना, वरन् उससे भी यदि कुछ बढ़कर हो, तो उसे न लेना स्वीकार है, किंतु सच्चाई से अलग होना स्वीकार नहीं कर सकूँगा ।

चाहे पृथ्वी अपना गुण वा धर्म (गंध) छोड़ दे, जल अपना गुण (रस) छोड़ दे, तेज अपना गुण (रूप) छोड़ दे, वायु अपना स्पर्श-गुण छोड़ दे, सूर्य अपना प्रकाश छोड़ दे, अग्नि अपनी उष्णता छोड़ दे, आकाश अपने धर्म (शब्द) को छोड़ दे, चंद्र अपनी शीतलता को छोड़ दे, वृत्र का हंता (इंद्र) अपने वैभव को त्याग दे, धर्मराज (यमराज) धर्म (न्याय) को छोड़ दे, किंतु मैं सत्यता को कदापि नहीं छोड़ूँगा ।

ये वचन भीष्म पितामहजी के हैं । भीष्म पितामह इन पर चलते हैं । मैं भी इन्हीं को अपना आदर्श (motto) बनाऊँगा । जो एक बेर मेरी समझ में आ जाय कि यह सत्य है, उस पर अवश्य चलूँगा, चाहे सारी सृष्टि विरुद्ध हो । अब एक बेर जान लिया है कि क्रोध नहीं करना चाहिये, बस अंतिम निर्णय हो गया । कुछ भी हो, क्रोधासक्त (मग़लूबुलग़ज़ब) नहीं बनूँगा ।

महात्माओं के मुख से प्रायः यह भी सुना गया है कि "जो कुछ होता है, भले ही के लिये होता है," क्या यह सच है ? मेरा तुच्छ अनुभव इस बारे में अभी सम्मति देने के योग्य नहीं, लेकिन उनकी बात पर क्यों विश्वास न करूँ ? 'सब भले ही के लिये होता है' । प्रकृति ने सेवा करने पर कमर बाँधी है । देवताओं ने शपथ खा ली है कि सदैव मेरी भलाई के लिये यत्नशील रहेंगे । यदि यह दशा है, तो किसी बात के संबंध में मेरा कुढ़ना और ग़म खाना, अर्थात् शोकातुर होना ऐसा नासमझी

का काम है, जैसा एक अनजान बच्चे का पुलिस के सिपाही को देखकर डरना। पुलिस का सिपाही तो नगर के लोगों की रक्षा और सेवा करने की ड्यूटी पर फिर रहा है, चोरों-बदमाशों को हटाने पर कटिबद्ध है, इससे भय काहे का? संसार के दुःख भी और सुख भी मुझे उन्नति की निसैनी पर चढ़ाते हैं, मैं घबराऊँ किसलिये? जिसको मैं बुरा समझता हूँ, वह भला ही है, तो क्रोध किस बात का?

सर-निविश्ते-मा बदस्ते-खुद-निविश्त।
खुशनवीसस्तो न ख्वाहद बद निविश्त॥

अर्थ—हमारी निविश्त (भाग्य) उस (ईश्वर) ने अपने हाथ से लिखी है; वह खुश-नवीस (सुंदर-लेखक) है, बुरा नहीं लिखेगा।

संसार लीला-मात्र है, स्वप्न-विचार है, नाट्यशाला है, आतिश-बाज़ी के खेल की तरह है; आतिशबाज़ी के हाथी-घोड़े सब-के-सब जल जाने के लिये बहार दिखाते हैं, यदि ऐसे हाथी की सूँड़ सुंदर हो गई, तो क्या, और ज़रा खराब हो गई, तो क्या; उसे तो देखते ही देखते मिट जाना है। ऐसी कृत्रिम वस्तु के लिये क्रुद्ध-चित्त और कटुभाषी होना काहे को?

Imperious Caesar, die and turned to clay,
Might stop a hole to keep the wind away;
Oh! that the Earth that kept the world in awe
Should patch a hole to expel the winters' flaw!

(Shakespeare)

अर्थ—तेज और प्रभाववाला रूम का सम्राट् जो मर चुका और मिट्टी हो चुका है, संभव है, वायु को वह दूर रखने के लिये (या वायु से बचने के लिये) एक छिद्र बंद कर दे, या वह मिट्टी जो सारे संसार को भयभीत बनाए रखती थी, आज उसे सर्दी

के वेग को रोकने (या सर्दी के झकोरे से बचने) के लिये छिद्र बंद करने की नौबत पड़े । अभिप्राय यह—कि वह रूम का सम्राट्, जो सारे संसार को अपने प्रभाव और तेज से हिलाया करता था, आज क़ब्र में राख होने के कारण हवा के झकोरों से या और बुरे प्रभावों से नहीं बच सकता ।

आँ क़सर कि बर चर्ख़ हमीं ज़द पहलू ।
बर दरगहे-ओ शहाँ निहादंदे रू ॥
दीदेम कि बर कंगुरा-अश फ़ाख़्ताए ।
बिनिशस्ता हमीं गुफ़्त कि कू, कू, कू, कू ॥

अर्थ—वह महल, जो आकाश से बातें करता था और जिसकी समाधि की ओर महाराज आकर्पित होते थे, हमने देखा कि उसकी मुंडेर पर पेंडुकी बैठी हुई कू-कू-कू-कू कहती थी, अर्थात् यह आवाज़ देती थी कि इन महलों में रहनेवाले अब कहाँ हैं ? कहाँ हैं ? कहाँ हैं ? कहाँ हैं ?

चीस्त दुनिया सर बसर पुरसीदम अज़ फ़रज़ानए ।
गुफ़्त या ख़्वाब अस्त या बाद अस्त या अफ़सानए ॥
कीस्त आँ कस को बरो शैदा शवद जाँ मी दहद ।
गुफ़्त या देव अस्त या ग़ोल अस्त या दीवानए ॥

अर्थ—एक बुद्धिमान् से मैंने पूछा कि संसार क्या है । उसने उत्तर दिया कि यह या तो स्वप्न है, या हवा है, या कहानी-मात्र है । फिर मैंने पूछा कि वह व्यक्ति कौन है, जो ऐसे संसार पर आसक्त होता है और प्राण दे डालता है । उसने उत्तर दिया कि या तो वह देव है या शैतान है या पागल-मात्र है ।

वाय नादानी कि वक़्ते-मर्ग[1] यह साबित हुआ ।
ख़्वाब था जो कुछ कि देखा जो सुना अफ़साना[2] था ॥

यदि सब कुछ स्वप्न ही है, तो फिर चिंताएँ कैसी ?

---

१ मृत्यु-काल । २ कहानी-मात्र ।

गर यों हुआ तो फिर क्या । और वों हुआ तो फिर क्या ॥

चे हासिल जाँ कि दर दुनिया हमाँ ज़ादन हमाँ मुर्दन ।

दरीं संगस्त शरर आसा, हमाँ ज़ादन हमाँ मुर्दन ॥ १ ॥

अजल बर हस्ती-ए-मा खन्दाए-दंदाँनुमा दारद ।

दरीं अबरेस्त बर्क़ आसा, हमाँ ज़ादन हमाँ मुर्दन ॥ २ ॥

निगह ता वाकुनी बादे-अजल कश्ती बगरदानंद ।

हबाबे-मौज ईं दरया हमाँ ज़ादन हमाँ मुर्दन ॥ ३ ॥

अर्थ—इस संसार में बेर-बेर जीना और बेर-बेर मरना, इससे क्या लाभ ? इस पत्थर (शरीर) में मैं उस चिनगारी के समान हूँ, जो बेर-बेर उत्पन्न होती और बेर-बेर विलीन होती है ॥ १ ॥

मृत्यु हमारे जीवन पर खिलखिलाकर हँसती है ; इस शरीर-रूपी बादल में हम बिजली के समान हैं, जो बेर-बेर चमकती है, या बेर-बेर अदृश्य हो जाती है ॥ २ ॥

जब तक कि तू दृष्टि खोलेगा, उतने समय में मृत्यु की वायु तेरी नौका को लौटा देगी । इस नदी की तरंग का बुलबुला बेर-बेर उत्पन्न होता और बेर-बेर मिटता है ॥ ३ ॥

मैं सत्यता को सदैव सम्मुख रक्खूँगा । इस नाशवान् घर की वस्तुओं को स्वप्नावस्था के सुमन और कंटक (पुष्प और काँटा) समझूँगा ।

"Not for life—

Which is but blade, and ear, and husk and grain
To the self-living changeless sesamum '—
Not for this fleeting world—should holy men
Speak one word vainly."

अर्थ—जीवनस्वरूप और अपरिवर्तनशील (आत्मदेव-रूपी) सुमन की अपेक्षा जो जीवन केवल छिलका, तिनका, सिट्टा और अन्न के दाने के समान तुच्छ है, ऐसे निस्सार जीवन

तथा इस कृत्रिम संसार के लिये पवित्र व्यक्ति एक शब्द भी व्यर्थ नहीं बोलते हैं। अर्थात् जो कुछ उन्होंने इस संसार के विषय में निर्णय करके प्रकट किया है, वह ठीक और उचित ही है।

सस्यमिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिवाजायते पुनः (कठोपनिषद् १,१,६)

अर्थ—यह मनुष्य (नश्वर शरीर) अन्न की भाँति पकता है (पककर गिरता है, अर्थात् पैदा होकर मर जाता है), और फिर अन्न की भाँति ही उत्पन्न होता है। अर्थात् मनुष्य वनस्पतियों की भाँति उत्पन्न होता, मरता और फिर पैदा होता रहता है, अतः नाशवान् है।

किसकी शादी किसका ग़म। हू अल्लाह हू दम पर दम॥

इस प्रकार के सोच-विचार करते-करते युधिष्ठिर ने समस्त अवसरों को स्मरण किया, जहाँ उसके शांति के पैर फिसला करते थे, और अपने आपको खूब समझाया कि "ऐ अनजान मन! सावधान! इससे पहले जो हुआ, सो हुआ। भविष्य में ऐसे कोमल समयों पर सँभलकर चलना। जब कोई कुछ कटु वाक्य कहे, गाली दे, काम बिगाड़ दे, हमारे विरुद्ध कुचक्र (साज़िश) रच रहा हो, अथवा जब चित्त अस्वस्थ हो, इत्यादि ऐसे ही अवसरों के लिये धैर्य और शांति की आवश्यकता होती है। जब सब काम इच्छा के अनुकूल चल रहे हों, प्रसन्न रहना बड़ी बात नहीं है।

मज़न चीं बरजबीं वक़्ते-नज़ूले-दर्दो ग़म ऐ दिल।
कि ऐब अस्त अज़ करीमाँ दर बरूए मेहमाँ बस्तन॥

अर्थ—हे मन! दुःख और शोक के आने पर मत्थे पर बल मत डाल; क्योंकि अतिथि को द्वार बंद करना दाता लोगों के लिये दोष गिना जाता है।

निहंगो अज़दहा ओ शेरे-नर मारा तो क्या मारा।
बड़े मूज़ी को मारा नफ़्से-अम्मारा को गर मारा॥

न मारा आपको जो ख़ाक हो अक्सीर बन जाता।
अगर पारे को ऐ अक्सीरगर ! मारा तो क्या मारा ॥

और भी लीजिए—

सहल शेरे दाँ कि सफ़हा बशिकन्द।
शेर आनस्त आँ कि ख़ुदरा बशिकन्द ॥

अर्थ—उसको दुर्बल सिंह समझ जो कि (पशुओं की) पंक्तियों को चीर डाले। सिंह वह है, जो अपने परिच्छिन्न अहंकार को तोड़ डाले।

इसके पश्चात् युधिष्ठिर ने बहुत बेर जान-बूझकर अपने आपको ऐसे स्थानों पर पहुँचाया, जहाँ दुर्योधनादि ने उसे छेड़ा और दुःख देना चाहा; किंतु युधिष्ठिर ने हर बेर 'क्रोध मत करो' के पाठ का व्यावहारिक अनुभव सफलता के साथ किया। जब क्रोध नितान्त त्यागा गया, तो चित्त में चैन रहने लगा, आनंद और प्रसन्नता ने रंग जमाया, मानों मुफ़्त में ख़ज़ाने हाथ आ गए। सब काम भी अपने आप सुधरने लगे। अनुभव ने युधिष्ठिर को यह सिद्ध कर दिखाया कि सब लोगों का यह ख़याल कि "क्रोध के बिना काम नहीं चल सकते" नितान्त मिथ्या है।

दर ख़ुश्क साली आबे-गुहर कम नमी शवद ।
बुख़ले फ़लक ब अहले-क़नाअत चे मी कुनद ॥

अर्थ—दुर्भिक्ष में मोती की चमक कम नहीं होती है, द्यु की कृपणता धीर पुरुषों का क्या बिगाड़ती है।

प्रिय पाठको ! युधिष्ठिर बेचारे ने पढ़ने के यह अर्थ समझ रक्खे थे, जो ऊपर वर्णन हुए, अर्थात् रात-दिन लगातार चिंता और विचार का यहाँ तक जारी रखना कि गुरु का सुना हुआ पाठ व्यवहार में आ जाय। जब परीक्षक महोदय ने पीटना आरंभ किया, तो वह अपने विचार में "क्रोध मत करो" इस वाक्य की व्यावहारिक परीक्षा दे रहा था, और मस्त खड़ा था।

उसका प्रत्येक रोम सुना रहा था कि 'क्रोध मत करो' शांति ! शांति !! किंतु परीक्षक महोदय के कान सांसारिक चिंताओं के कोलाहल से ऐसे बहरे हो रहे थे कि वे कुछ देर तक यह पाठ न सुन सके। अंततः सुनते क्योंकर न, व्यावहारिक जीवन बड़ा बलवान् है। परीक्षक महोदय जब कोसते-कोसते थक गए, तो युधिष्ठिर के मुख की ओर देखा, तब उन्हें होश आया, युधिष्ठिर की शांति उनके चित्त में तत्काल प्रवेश कर गई, और वे समझ गये कि ओहो! यह लड़का तो हमारा भी गुरु है, हमको सिखला रहा है कि पढ़ना किसको कहते हैं। हाय-हाय! इसको इतना वाक्य तो सचमुच याद है कि "क्रोध मत करो", किंतु हमें तो यह भी वस्तुतः याद नहीं। इस विचार के साथ गुरुजी की आँखों में आँसू डबडबा आये। बच्चे को गोद में लिया, फूट-फूट कर रोने लगे।

ऐ वर्तमान युग के नवयुवको! यह देख तुम्हें अपनी गेहूँ-जैसी जौ बेचनेवाली शिक्षा पर रोना नहीं आता!

पशोः पशुः को न करोति धर्मं,
प्राधीत शास्त्रोऽपि न चात्मबोधः। (प्रश्नोत्तरी)

अर्थ—संसार में पशुओं में पशु कौन है?—उत्तर, जो शास्त्र पढ़कर धर्म नहीं करता, और आत्मज्ञान को नहीं प्राप्त होता।

यथा खरश्चंदनभारवाही भारस्य वेत्ता न तु चंदनस्य ॥

अर्थ—वह गधा जिस पर चंदन लदा हुआ हो, बोझ को तो जानता है, लेकिन ख़ुशबूदार चंदन को नहीं। वैसे ही कर्महीन विद्वान वेद का पशु है, वेदपाठी कहलाने का अधिकारी नहीं। यदि मस्तिष्क में पोथे भर लेने पर श्रेष्ठता निर्भर हो, तो पुस्तकालय (लायब्रेरियाँ) भी ऋषियों में गिने जाने चाहिये।

वाग्वैखरी शब्दझरी शास्त्रव्याख्यानकौशलं ;
वैदुष्यं विदुषां तद्वत् भुक्तये न तु मुक्तये।

अर्थ—शब्दों की चुस्ती और वाक्यों की दुरुस्ती, शास्त्रों की व्याख्या करने का कौशल आदि ये सब विद्वानों के पेट भरने के लिये हैं, न कि मुक्ति के लिये।

इल्म चंदाँ कि बेशतर ख्वानी ; चूँ अमल दर तो नेस्त नादानी।

अर्थ—चाहे तू विद्या बहुत पढ़ जाय, यदि अमल नहीं है, तो केवल नादानी है।

वेदांत का सहायक

आत्मज्ञान के जिज्ञासु के लिये सबसे अधिक आवश्यक सतोगुण का प्राबल्य है, अर्थात् चित्त का हर समय आनंद और शांति की ज्योति से परिपूर्ण रहना। शोक, क्रोध और पक्षपात से भरा हुआ चित्त आत्म-साक्षात्कार का आनन्द कदापि-कदापि नहीं उठा सकता।

ओरा ब चश्मे-पाक तवाँ दीद चूँ हलाल।
हर दीदा जलवागाहे-आँ माह पारा नेस्त॥

अर्थ—उस (तत्त्व-स्वरूप) को निर्मल दृष्टि से हलाल (द्वितीया के चाँद) की तरह देख सकते हैं, प्रत्येक नेत्र उस तत्त्वरूप चाँद के टुकड़े को दर्शानेवाला नहीं है; अर्थात् हरएक आँख नहीं, बल्कि निर्मल और पवित्र आँखें ही उस सत्यस्वरूप को देख सकती हैं।

यह बिलकुल सच है कि क्रोध, मोह आदि का मूलोच्छेद कभी नहीं हो सकता, जब तक कि अज्ञान दूर न हो ले। निर्मलता, पवित्रता और सत्यता ज्ञान का परिणाम है—ज्ञान के पदचिह्न हैं, और यों कहना कि "शांति के आने पर ज्ञान की प्राप्ति निर्भर है" मानो घोड़े को गाड़ी के आगे जोतने के स्थान पर गाड़ी घोड़े के आगे लगाना है। फिर भी विद्यार्थी के लिये वासनाओं को जीतने और इन्द्रियों को वश में लाने का प्रयत्न व्यर्थ भी नहीं

जाता। जैसे एक पेड़ के पत्ते और टहनियाँ काट देने से उस पेड़ की जड़ नहीं उखड़ती (अल्बत्ता वृक्ष की जड़ उखड़ जाने के बाद पत्ते आदि सूखकर झड़ जाते हैं), किंतु वृक्ष की टहनियाँ आदि छाँटकर उसे हल्का कर देने में इतना अवश्य होगा कि उसकी जड़ पर आरा सहज में फिर सकेगा, मूलोच्छेद में एक प्रकार की सहायता मिल जायगी ; वैसे ही यह आवश्यक नहीं है कि काम, क्रोध, शोक, लोभ पर शक्तिमान् होते ही अज्ञान की जड़ कट जाय। अल्बत्ता अज्ञान की जड़ उखड़ जाने का फल यह अवश्य होता है कि मोह और दुःख नितान्त दूर हो जाते हैं।

तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः। (ईश०)

अर्थ—जान्यो अपना आप जब, शोक-मोह भये नाश।
धुंद अँधेरा नस गए, कीनो रवी प्रकाश॥

किंतु जो व्यक्ति रजोगुण और तमोगुण (काम-क्रोध)-रूपी पत्तियों, टहनियों को काट-झाड़कर अज्ञान के वृक्ष को हलका कर देगा, उसके लिये अज्ञान की जड़ पर महावाक्य "सर्वं ह्य तद् ब्रह्म", यह सब कुछ ब्रह्म है—का आरा चलना सहज हो जायगा।

ना विरतो दुश्चरितान्ना शान्तो ना समाहितः।
नाशांतमानसोवापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्॥ (कठ० आ० १, २, मं० २४)

अर्थ—जैसे मैले कपड़े पर रंग नहीं चढ़ता, या जैसे गीली लकड़ी को लाख यत्न करने से भी आग नहीं लगती, वैसे ही जो व्यक्ति विवेक, वैराग्य, शम, दम आदि साधन-संपन्न न हो, उसको आत्मज्ञान का रंग चढ़ना कठिन है, आत्मानंद की अग्नि प्रज्वलित होना मुशकिल है।

"None compasseth,
Its joy who is not wholly ceased from sin,
Who dwells not self-controlled, self-centred calm,

Lord of himself ! It is not gotten else.

(Sir Edwin Arnold)

अर्थ—उस शांत-चित्त महात्मा के आनन्द की सीमा कोई ऐसा मनुष्य कदापि नहीं लगा सकता, जो स्वयं पाप-रहित न हो, या जो अपने आप पर अधिकार पाए हुए न हो, अपने आत्मा में विराजमान न हो, और अपने आपका स्वामी न हो। अर्थात् जो मनुष्य अशांत-चित्त, बुरे मार्ग से न हटनेवाला, बदमाश, आकुल-चित्त और चंचल मनवाला है, वह कदापि उस अनंत आनंद को (जो मस्त और मुक्त ज्ञानवान् को प्राप्त होता है) भीतरी दृष्टि से नहीं पा सकता।

रफ़्तम् ब तबीबो-गुफ़्तम अज़ दर्दे-निहाँ।
गुफ़्ता, कि ज़ि ग़ैरे-दोस्त बर बंद ज़ुबाँ॥
गुफ़्तम् कि ग़िज़ा ? गुफ़्त हमीं ख़ूने-जिगर।
गुफ़्तम् परहेज़ ? गुफ़्त अज़ हर दो जहाँ॥

अर्थ—मैं एक हकीम (वैद्य) के निकट गया और भीतरी (मानसिक) पीड़ा की चिकित्सा पूछी। हकीम ने उत्तर दिया कि अपने प्यारे (स्वरूप) के अतिरिक्त जिह्वा बंद कर रख (अर्थात् अपने परम मित्र आत्मदेव की चर्चा के सिवाय और किसी प्रकार की बातचीत मत कर)। फिर मैंने पूछा कि इस चिकित्सा में पथ्य क्या है ? हकीम ने उत्तर दिया कि यही अपने जिगर (यकृत) का रक्त। फिर मैंने पूछा कि इस चिकित्सा में परहेज (संयम) किसका ? तो उसने उत्तर दिया कि हर दो जहान (अर्थात् लोक और परलोक के भोगों की इच्छा) का।

ख़ूने-ख़ालिस ख़ुद ख़ुर कि शराबे बेह अज़ीं नेस्त।
दंदाँ ब जिगर ज़न कि कबाबे बेह अज़ीं नेस्त॥
दर कंज़ो हिदाया न तवाँ याफ़्त ख़ुदा रा।
दर मुस्हफ़े-दिलबीं कि किताबे बह अज़ीं नेस्त॥

अर्थ—अपना खालिस ख़ून पी, क्योंकि इससे उत्तम कोई शराब नहीं है। और अपने ही जिगर (यकृत) को दाँतों से काट, क्योंकि इससे उत्तम कोई कबाब नहीं है।

पवित्र पुस्तकों और उपदेशों अर्थात् वेदों और शास्त्रों में ईश्वर नहीं पाया जा सकता है, अपने शुद्ध हृदय-रूपी क़ुरान में उसे देख, क्योंकि इससे उत्तम पुस्तक और कोई नहीं है।

ऐ बुलहवस मसोज़ कि आँ इश्क़ आतिश अस्त।
मा आँ समंदरेम कि आतिश हयाते-मास्त॥

अर्थ—ऐ लालची! तू मत जल, क्योंकि इश्क़ (प्रेम) आग है, लेकिन हम आग के वह कीड़े हैं कि जिनकी ज़िन्दगी ही आग पर निर्भर है।

निम्न-लिखित अवतरण में शोपन हवर (Schopenhauer) ने दिखाया है कि सतोगुण की अनुपस्थिति में ज्ञान का प्रकाश होना दुस्तर है—

When the individual is distraught by cares or pleasantry, or tortured by the violence of his wishes and desires, the genius in him is enchained and can not move. It is only when cares and desires are silent that the air is free enough for genius to live in it. It is then that the bonds of matter are cast aside and pure spirit, the pure, knowing subject, remains.

अर्थ—जब किसी पुरुष का मन चिंताओं या हँसी-मख़ौल से विकीर्ण हो जाता है, या अपनी इच्छाओं और कामनाओं की ज़बरदस्ती से सताया होता है, तब उसके भीतर की मेधा (या चित्त-वृत्ति) आसक्त हो जाती है और आगे गति नहीं कर सकती, केवल उसी समय जब कि चिंता और इच्छा शांत होती हैं (या दबी हुई होती हैं), तब उस मेधा को जीने के लिये

वायुमंडल खुला और साफ़ हो जाता है, उसी समय प्रकृति या माया के बंधन सब काट दिये जाते हैं, और शुद्ध पवित्रात्मा (ज्ञाता, साक्षी) मात्र रह जाता है।

चो हुस्ने-तरबियत गर्दद क़रीं बा पाकिये-गौहर।
ज़ि रशहे-आब ख़ेज़द दुर ज़ि मुश्ते-ख़ाक ज़ायद ज़र ॥ १ ॥
सरिश्ते-ख़ाके-काँ बा आबे-नेसाँ गर्चे पाक आमद।
वले अज़ फ़ैज़े-ख़ुर्शेद अस्त काँ ज़र गर्दद ईं गौहर ॥ २ ॥
बसे ज़हमत बुरद दहक़ाँ कि दर ज़ेरे-ज़मीं तुख़्मे।
बरेज़द बेख़ो-यावद शाख़ो गीरद बर्गो आरद बर ॥ ३ ॥
सरापा साफ़ शो ता ख़ुद-ब-ख़ुद जा यावी।
कि पेशे-ख़ूबरोयाँ आइना मंज़ूर मी गर्दद ॥ ४ ॥

अर्थ—(१) जब शिक्षा का सौंदर्य मोती की सफ़ाई के निकट होता है, तो पानी के टपकने से मोती उत्पन्न होता है और धूलि की मिट्टी से सोना उत्पन्न होता है; अर्थात् पवित्रात्मा ज्ञानी के सत्संग से जब सत्य का जिज्ञासु शिक्षा पाता है, तो पूर्ण ज्ञानी का एक वाक्य भी जिज्ञासु के हृदय में मोती बन जाता है और केवल शारीरिक दर्शन से उसका हृदय सोने की भाँति शुद्ध और पवित्र हो जाता है।

(२) कान की मिट्टी की ख़ासियत, या कन्यावानी बादल (भाद्रपद वा,कार्त्तिक मास में बरसनेवाले मेघ) का पानी यद्यपि स्वच्छ होता है, किंतु सूर्य के प्रसाद से वह (कान) सोना हो जाती है और यह मोती; अर्थात् यद्यपि बादल का पानी और कान की मिट्टी (सत्य के जिज्ञासु की भाँति) स्वच्छ और पवित्र होते हैं, किंतु जैसे पूर्ण ज्ञानी के सत्संग विना सत्य का जिज्ञासु तत्त्व-वस्तु को नहीं पाता, वैसे ही ये दोनों पवित्र वस्तुएँ भी विना सूर्य के प्रसाद के सोना और मोती नहीं हो सकतीं।

(३) किसान भूमि के भीतर बीज गिराने में यद्यपि बहुत कष्ट

उठाता है, ताकि बीज जड़, शाखा, पत्ते और फल को प्राप्त करे, परंतु बिना सूर्य के प्रसाद के यह सब परिश्रम निष्फल अर्थात् व्यर्थ हो जाता है; ऐसे ही सत्य के जिज्ञासु का प्रयत्न बिना पूर्ण गुरु की सहायता के व्यर्थ और निष्प्रयोजन होता है।

(४) सिर से पैर तक स्वच्छ बन, जिसमें तू प्यारे स्वरूप के प्रकाश के सम्मुख स्थान प्राप्त करे अर्थात् वास्तव स्वरूप का दर्शन कर सके, क्योंकि जो सुंदर हैं, उनके सामने दर्पण शोभा पाता है, अर्थात् शुद्ध स्वरूप के निकट शुद्ध और पवित्र हृदय ही ठहर सकता है, अथवा सत्य स्वरूप का दर्शन निर्मल हृदय-दर्पण ही करा सकता है।

सतोगुण का उलट (ज़िद) क्या है ? क्रोध और शोक। क्रोध और शोक का वास्तविक स्वरूप क्या है ? इच्छाएँ। किस प्रकार ? जैसे जब कोई नदी या नाला अत्यंत वेग से चल रहा हो और मार्ग में किसी बहुत बड़े पत्थर के साथ टक्कर खा ले, तो नदी या नाले का पानी अत्यंत कोलाहल के साथ झट झाग-झाग हो जाता है; वैसे ही जब किसी हृदय में कामना का प्रवाह (वेग) के साथ बह रहा हो और एकदम कोई रुकावट सामने आ जाय, तो वे कामनाएँ एकाएक शोक और क्रोध में परिवर्तित हो जाती हैं। ध्यान से देखो, इच्छानुसार किसी काम का न होना ही शोक या क्रोध लाता है। कामना ही शोक या क्रोध का मूल है। जिस पुरुष की सब कामनाएँ दूर हो गई हैं, जिसके सब संकल्प मिट गए हैं, उस ज्ञानवान् ने शोक और क्रोध की जड़ उखाड़ दी है।

आप्नोति ह वै सर्व्वान्कामानादिश्च भवति य एवं वेद। (मां० उप० ६)

अर्थ—जो व्यक्ति इस (रहस्य) को समझता है, वह निस्संदेह सब मनोरथों को पा लेता है और सबसे प्रथम हो जाता है।

ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः क्षीणैः क्लेशैर्जन्ममृत्युप्रहाणिः।

(श्वेताश्वतरोपनिषद्० १, ११)

अर्थ—जब तेजों के तेज को जान लिया, तो सब जंजीरें टूट गईं, दुःख दूर हो गये और मरने-जीने से छुट्टी मिली।

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशंति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशंति सर्वे स शांतिमाप्नोति न कामकामी॥
(गीता २, ७०)

अर्थ—जिस महात्मा ने अपनी कामनाओं को यों समेट लिया है, जैसे समुद्र नदियों को अपने बीच में प्रविष्ट कर लेता है, वही शांति (आनंद) को पाता है, दूसरा नहीं।

क्रोध और शोक को विजय करना उसी का काम है, जिसकी यह दृष्टि है—

चीस्त दुनिया ताके ओं आलूदा कर्दन दस्ते-ख्वेश ;
बर सरे-ख्वाने-सुलेमाँ कासा लेसीदन चरास्त।

अर्थ—यह संसार क्या है, जिससे अपना हाथ लिप्त किया जाय? सुलेमान के दस्तरख्वान (भोजन करने के स्थान) पर पियाला चाटना (संसारी इच्छाओं को पूरा करना) किस काम का?

वह ज्ञानी, जो सारे संसार को अपना आप देखता है, प्रत्येक व्यक्ति को अपना स्वरूप समझता है, वह किससे अप्रसन्न हो? उसके लिये विक्षेप कहाँ? जब अपनी जीभ अपने दाँतों में दब जाती है, तो दाँतों को निकाल डालने का किसको ख्याल आता है।

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥ ६॥ (ई० उप०)

अर्थ—जो सज्जन समस्त प्राणियों को आत्मा में देखता है और सबमें (सब कुछ) आत्मा को जानता है, वह फिर किससे नफ़रत करे।

अज़ीमतहा हमी कर्दम कि शैताँ बरतरफ़ गर्दद।
ज़ि यकबीनी व यकदानी हिसारे-कर्दाअम पैदा॥

अर्थ—मैं बहुत-से संकल्प करता था कि जिनसे शैतान अलग हो जाय, किंतु ऐक्य-दर्शन और अद्वैत-ज्ञान से मैंने एक व्यूह उत्पन्न कर लिया है (जिसके भीतर अब शैतान प्रविष्ट नहीं हो सकता)।

बा बुते-ज़िंदाः कसे कि गश्त यार।
मुर्दाः रा कै दर कशद अंदर किनार॥

अर्थ—जो व्यक्ति जीवित प्रिया के साथ मित्र हो गया, वह मृत प्रिया को भला कब बग़ल में लेगा।

पर हाँ, वह भला पुरुष जिसको ज्ञान का अविनाशी प्रसाद अभी प्राप्त नहीं हुआ, किंतु शोक और क्रोध के दूर करने में यत्नवान् है, उसको भी निराश नहीं होना चाहिए। उसके प्रयत्न क्रोध और शोक के विजय करने में तो सदैव असमथ ही रहेंगे, हाँ यह अवश्य है कि यदि प्रयत्न सच्चे हैं, तो उस व्यक्ति को ज्ञान का अधिकारी बना देंगे। प्रयत्नों की शक्ति (energy) नष्ट तो हो नहीं सकती, विवेक में परिवर्तित होती जायगी, और फिर ज्ञान के आने पर शोक और क्रोध कहाँ ठहर सकते हैं? यदि न्याय-दृष्टि से देखा जाय, तो विदित होगा कि शोक और क्रोध के कारण स्वभाव स्वस्थ दशा से वैसे ही फिर जाता है, जैसे ज्वर, चेचक या और किसी रोग के कारण से।

प्यारे जिज्ञासु! जब ज्वर या कोई स्पर्श-जन्य रोग घेर लेता है, तो तुम लिहाफ़ में मुँह-सिर लपेट कर कमरे के भीतर पड़े रहा करते हो; वैसे ही जब शोक और क्रोध (जो उच्च श्रेणी के स्पर्श-जन्य रोग हैं) घेर लें, तो आपको उचित है कि तत्काल चेहरे को ढाँक लो, और किसी को मुँह न दिखाओ, जब तक कि तबीयत दुरुस्त न हो ले और स्वाभाविक प्रसन्नता (जिसके बिना मनुष्य मनुष्य कहलाने का अधिकारी नहीं) आँखों में स्पष्ट प्रकट न हो ले। प्लेग-ग्रस्त रोगी को ऐसे स्थान पर रहने का कोई अधिकार नहीं है, जहाँ से उसका रोग औरों को लग सके,

He needs no other rosary
Whose thread of life is strung
With the beads of *love* and *thought*

अर्थ—उस व्यक्ति के लिये कोई और माला की आवश्यकता नहीं, जिसके जीवन का तार प्रेम और विचार के मनिकों से पिरोया हुआ है।

यमुना नदी के किनारे पर छायावाले वृक्षों के बीच में अत्यंत स्वच्छ और सुथरी एक साधु की कुटिया थी, जिसमें कहीं सिंह और हरिन के सुंदर चर्म बिछे थे, कहीं वृक्षों और खूँटियों पर जोगिया रंग के कपड़े लटके हुए स्थान की शोभा बढ़ा रहे थे। संयोग से एक यात्री जाति का शूद्र उसकी ओर आ निकला। कुटिया के साथ नदी पर एक उत्तम पक्का घाट देखकर उसके जी में आई कि यहाँ स्नान करें। स्नान करने के बाद शामत के मारे को यह सूझी कि अपने कपड़े भी यहीं धो लूँ। घाट के पत्थर पर कपड़ों को पटक-पटककर धोने लगा। दोपहर का समय था। साधुजी कुटिया के भीतर आराम कर रहे थे। छुआ - छू के शब्द से चौक पड़े। क्या देखते है कि मैले-कुचैले कपड़ों की छींटों से उनके पवित्र आसन और गेरुए वस्त्र खराब हो रहे हैं, और अपवित्र बूँदों से चौका बिगड़ रहा है। झटपट बाहर निकले, तो शूद्र कपड़े धोता दिखाई पड़ा। फिर जो कुछ उस ग़रीब पर बीती, क्या बतायें। साधुजी ने आव देखा न ताव, मारे क्रोध के लाल होकर ढाक की एक मजबूत मोटी लाठी उठाई, और चुपके से उस बेचारे के पीछे आकर खड़े हुए। इधर वह बेखबर पत्थर पर कपड़ा मारते समय झुका, उधर उसकी पीठ पर बिजली की तरह डंडा कड़का। बिलबिलाकर चीख़ने लगा, सोंटे की एक और चोट पड़ी। बेहोश होकर गिर पड़ा। साधुजी ने लातों से गति बनानी आरंभ कर दी।

फिर गालियों की बौछार से खूब खबर ली। जब सब तरह थक चुके, तो अंत में हारकर बैठ गए। थोड़ी देर सस्ताकर नदी में स्नान करने लगे। इतने में उस शूद्र ने भी होश सँभाला, कुटिया से कुछ दूर नीचे हटकर वह भी नहाने के लिये यमुना में कूद पड़ा। अब तक साधुजी का क्रोध कुछ कम हो चुका था, बोले "अरे चांडाल! गरम-गरम शरीर को पानी में क्यों डाल दिया? क्या तुझको बीमारी का भय नहीं? ऐसे अवसर पर नहाने की क्या पड़ी थी? हम समझते हैं, तुम तो पहले भी एक बेर नहा चुके हो, दुबारा नहाने की क्या आवश्यकता थी?"

शूद्र—तुम भी तो सवेरे अवश्य स्नान कर चुके होगे, दुबारा क्यों नहाने लगे हो?

साधुजी—अरे! तू हमारी रीस करने लगा है? हम तो तुझ चांडाल से स्पर्श कर चुके, इसलिये स्नान करते हैं।

शूद्र—बस, मैं भी इसी से नहाता हूँ कि चांडालों के चांडाल के साथ छू चुका, नहा कर अपने को शुद्ध करूँगा।

साधुजी—(आँखें दिखाकर) एं! हमें गाली बकता है? चांडालों का चांडाल किसको कहा?

शूद्र—(हाथ जोड़कर) नहीं महाराज, क्रोध चांडालों का चांडाल है। आपके पवित्र शरीर पर उसका आवेश हो गया था और फिर आपके हाथों और लातों की राह मुझको उस चांडाल ने छुआ। क्रोध चांडाल है। मैंने आपको कुछ नहीं कहा। क्षमा कीजिए।

यह सुन साधुजी मन-ही-मन में लज्जित हुए, और विचार करने लगे कि कहता तो सच है। इस अवसर पर गीता का वह श्लोक स्मरण आ गया जिसमें लिखा है कि "जो व्यक्ति किसी प्राणी से भी शत्रुता नहीं रखता, प्रत्येक से प्रेम ही

रखता है और दीनों पर दया करता है, जिसमें 'मैं, मेरा' का नाश हो चुका है, जिसको सुख-दुःख समान है, जिसको यदि हानि भी पहुँचाई जाय, तो भी क्षमा कर देता है, ऐसा व्यक्ति मेरा प्यारा है।" यथा—

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥ १३ ॥
संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ १४ ॥
यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥ १५ ॥
(गीता, अ० १२)

Who hateth naught
Of all which lives, living himself benign,
Compassionate, for arrogance except,
Exempt from love of self, unchangeable
By good or ill, patient, contented, firm
In faith, mastering himself, true to his word,
Seeking Me heart and soul; vowed unto Me.
That man I love' who troubleth not his kind,
And is not troubled by them; clear of wrath,
Living too high for gladness, grief, or fear,
That man I love!

अर्थ—श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं, मैं उस पुरुष से प्रेम करता हूँ, या वह व्यक्ति मुझे प्यारा है, जो समस्त प्राणियों में किसी से द्वेष नहीं करता, जो स्वयं प्रेमस्वरूप है, दयालु है, अभिमान से रहित है, स्वार्थ से रहित है, जिसमें बुराई-भलाई से चलायमानता नहीं होती, जो सदैव एकरस रहता है, जो धीर और सहनशील है,

संतोषी है, दृढ़ विश्वासवाला है, जो अपने को वश किये हुए है, जो अपनी वाणी व प्रतिज्ञा का पक्का है, मन और प्राण से मुझे ढूँढ़ता है, और जो अपने जीवन को मुझ पर न्योछावर कर चुका है, ऐसा मनुष्य मुझे निस्संदेह बहुत प्यारा है। जो मनुष्य-मात्र को दुःख-क्लेश नहीं देता और न जिसे वे दुःख देते हैं, जो क्रोध से रहित है और जो हर्ष, शोक या भय के प्रभाव से रहित है, ऐसा मनुष्य मुझे बहुत प्यारा है।

चांडाल को छूना बाहरी शरीर को बिगाड़ता है, किंतु क्रोध से छू जाना भीतर (हृदय) का सत्यानास कर देता है, और सूक्ष्म शरीर पर अमिट दाग़ लगा देता है। परंतु आश्चर्य इस बात पर है कि जितना ही परहेज़ हम लोग इस बाह्य चांडाल से करते हैं, उससे बहुत अधिक तपाक के साथ क्रोध को अपना तन-मन अर्पण करते हैं, उसे अपनी गर्दन पर सवार कर लेते हैं। गीता में लिखा है—

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना। (९-४)

अर्थ—मुझ अव्यक्त मूर्ति से यह सब जगत् व्याप्त है, अर्थात् मैंने यह सारा जगत् घेरा हुआ है।

इदंब्रह्मे दं क्षत्रमिमे लोका इमे देवा इमे वेदा इमानि
भूतानीदं सर्वं यदयमात्मा (बृहदारण्यकोपनिषद्)

अर्थ—ये ब्राह्मण, क्षत्रिय, समस्त लोक, देवता, वेद, समस्त प्राणी और तत्त्व, सभी कुछ एक आत्मा ही आत्मा है।

महद्देवानामसुरत्वमेकं (ऋग्वेद, मंडल ३)

अर्थ—देवताओं की शक्ति का कारण-स्थान एक ही है।

अर्थात् समस्त संसार के कारोबार मुझ (ईश्वर) ही से प्रत्यक्ष हो रहे हैं।

अज़ीं मुसायबे-दौराँ मनालो-शादाँ बाश;
कि तीरे-दोस्त ब पहलूए-दोस्त मी आयद।

अर्थ—इस समय की विपत्तियों से मत रो और प्रसन्न रहो, क्योंकि मित्र का तीर मित्र के पहलू से आता है, अर्थात् समय का दुःख ईश्वर की ओर से भलाई के लिये अवतरित होता है।

और पुराणों में स्थान-स्थान पर इस प्रकार के आख्यान और वृत्तान्त आये हैं कि "अमुक राजा को पक्षी के रूप में भगवान् ने दर्शन दिए", "अमुक व्यक्ति को नारायण कुत्ते के स्वरूप में दिखाई दिया", "अमुक ब्राह्मण को (भगवान्) भिखारी के रूप में मिला" इत्यादि।

इन आख्यानों से भी यही शिक्षा मिलती है कि हमें छोटे-बड़े में सर्वत्र परमात्मा ही को देखना चाहिए।

आरामो-ख़्वाबे-ख़ल्क़े-जहाँ रा सबबे तूई।
ज़ाँ शुद किनारे-दीदओ-दिल तकियागाहे तो॥

अर्थ—संसार की सृष्टि की नींद और आराम का कारण केवल तू ही है, इस कारण दिल और आँख तुझ पर भरोसा करनेवाले हो गये हैं।

बहरजा बनिगरम बाला ओ गर पस्त।
न बीनम दर दो आलम जुज़ यके हस्त॥
मन अज़ बेगानगाँ हरगिज़ ननालम्।
कि बामन हर चे कर्द आँ आश्ना कर्द॥

अर्थ—नीचे-ऊपर जिस जगह कि मैं देखता हूँ, दोनों संसार (लोक-परलोक) के भीतर मैं केवल अद्वैत तत्त्व के और कुछ नहीं देखता हूँ। मैं दूसरों से कदापि नहीं रोता हूँ, क्योंकि मेरे साथ जो कुछ किया, उस परम प्रियतम ने किया।

यदि वही वह है, या वेदांत की शैली के अनुसार "मैं ही मैं हूँ", तो क्रोध किस पर? रुष्टता कैसी?

फ़रीदा-ख़ालिक़ ख़ल्क़ में, ख़ल्क़ बसे रब माँहि।
मंदा किस नूँ आखिए, जाँ तुझ बिन कोई नाँहि॥

गुफ़्तम कि ग़मज़ा-ए-तो बख़ूनम निशान्द गुफ़्त ।
ओरा गुनाह नेस्त कि फ़रमूदाएम मा ॥

अर्थ— मैंने कहा कि तेरे ग़मज़े (नेत्र के कटाक्ष) ने मुझे ख़ून में बिठाया (रुधिर से लिप्त किया), उसने उत्तर दिया कि उस (ग़मज़े) का अपराध नहीं, वरन् हमने उसको ऐसी ही आज्ञा दी है।

कुड़कुड़ाना—भगवत् के इस पवित्र वाक्य को आचरणतः मिथ्या करना है और नास्तिकता का दम भरना है।

हर चे अज़् दोस्त मी रसद नेकोस्त ।

अर्थ—जो कुछ कि प्यारे से आता है, वह सदैव लाभदायक और अच्छा ही है।

वफ़ा कुनेम मलामत कशेम व ख़ुश बाशेम ।
कि दर तरीक़ते-मा काफ़ीरीस्त रंजीदन ॥

अर्थ—हम वफ़ादारी करते हैं और लांछन सहते हैं, और आनंद रहते हैं, क्योंकि हमारे मत में शोकपरायण होना पाप है।

इंद्रप्रस्थ में जब राजसूय-यज्ञ हो चुका, और सब अतिथि (पाहुने) विदा हो रहे थे, पांडवों ने बड़े प्रेम से दुर्योधन को कुछ दिन और अपने पास ठहरा लिया और उसका ख़ूब मान-सत्कार किया। एक दिन मय दानव का बनाया हुआ विचित्र प्रासाद उसे दिखाने लगे। इस महल के फ़र्श में एक स्थान पर बहुमूल्य स्वच्छ पत्थर और शीशे इस उत्तमता से जड़े थे कि पानी बहता मालूम होता था, झकोरे खाती हुई नदी मालूम होती थी। इस झूठ-सूठ के लहरें मारते हुए पानी को देख दुर्योधन धोका खा गया। उसे तरंगायित जल समझ तैरकर पार जाने के लिये कपड़े उतारने लगा। यह देख भीमसेन और द्रौपदी आदि ने ज़ोर से ठट्ठा लगाया।

प्यारे जिज्ञासु! यह संसार माया का रचा हुआ घर है। आपके चित्त की प्रसन्नता के लिये रंग-रंग के पटों से सज्जित और सँवारित है। इसमें मृग-तृष्णा के जल समान धोकेवाले विशेष अवसर भी हैं, जिनको देख तू घबरा उठता है कि "हाय! मैं डूबा, मैं डूबा!" और मारे व्याकुलता के हाथ-पैर मारने लगता है, धीरज और थिरता की लगाम-डोर हाथ से छोड़ देता है, संशय और भ्रम के वश में आ जाता है, चेहरे पर हवाइयाँ छूटने लगती हैं, मानो सचमुच बला के चक्र में फँसा है। किंतु—

बहुत शोर सुनते थे पहलू में दिल का।
जो चीरा, तो इक क़तर-ए-खूँ न निकला॥

जब अज्ञान का परदा दूर होता है, तो पता लगता है कि कुछ बात ही न थी। पानी तो था ही नहीं, कपड़े व्यर्थ ही उतारे, बेकार ही फ़जीहत सहेड़ी।

मेरे प्यारे! खूब याद रख कि संसार में जितनी वस्तुएँ प्रत्यक्ष में घबरानेवाली मालूम होती हैं, वास्तव में तेरी प्रफुल्लता और आनंद के लिये प्रकृति के हाथ ने तैयार की हैं। उलटा डरने से क्या लाभ? तेरी ही मूर्खता तुझे चक्कर में डालती है, नहीं तो तुझे कोई नीचा दिखानेवाला नहीं। यह पक्का निश्चय रख कि संसार तेरे किसी शत्रु का बनाया हुआ नहीं है; वरन् तेरे प्यारों के प्यारे, तेरे ही आत्मदेव का सारा विकास है। संसार का कोई पदार्थ तुझे वास्तव में दुःख नहीं दे सकता, वरन् प्रत्येक पदार्थ तेरी चित्त-प्रफुल्लता का कारण है। हृदय को प्रेम से भरो, मन को शुद्ध करो और देखो।

दिलबरे-दिलख्वाए-मन मे कुनद अज़ बराए-मन।
नक़्शो-निगारो-रंगो-बू ताज़ा बताज़ा नौ बनौ॥
ख़ंदाँ रू बूदन बिह अज़ गंजो-गुहर बख़्शीदन अस्त।
ता तवानी बर्क़ बूदन अब्रे-नेसानी मबाश॥

अर्थ—मेरा दिलरुबा (प्रियात्मा) मेरे लिये नक़्शोनिगार और बनाव-शृंगार नित नई रीतियों से नित्य-प्रति करता है। हँसमुख रहना मोतियों का कोष दान करने से उत्तम है, जब तक कि तू बिजली, अर्थात् हँसमुख बन सकता है, तो वसंत-ऋतु का बादल मत बन।

आपत्ति—कहावत प्रसिद्ध है, "सीधी लकड़ी सब कोई काट लेता है", बस तो आप यह चाहते हैं कि हम अत्यन्त सीधे हो जायँ। यदि ऐसा करें और पालिसी (पेच व कूटनीति) को बिलकुल छोड़ दें, तो हमें संसार में रहने ही कौन देगा ? हमारा गुज़ारा ही क्योंकर होगा ? बलवान् लोग हमें खा न जायँगे ?

अति सीधे मत होइए, कछुक व्यंग मन माँहि।
सीधी लकड़ी काट लें, टेढ़ी काटें नाँहि॥

उत्तर—हम यह पूछते हैं कि क्या यह सच है "टेढ़ी काटे नाँहि? टेढ़ी लकड़ी ज्यों की त्यों रहने दी जाती है ? उसका कोई व्यवहार नहीं किया जाता है ?"

बिलकुल मिथ्या है। समय पर सब कट जाती हैं। क्या सीधी और क्या टेढ़ी। केवल आगे-पीछे का भेद है, कटने में सब बराबर हैं।

हाँ, अगर सचमुच अंतर है तो यह है कि टेढ़ी लकड़ी काटी जा कर प्रायः जलाई जाती है, ईंधन के काम आती है, और सीधी लकड़ी काटकर जलाई नहीं जाती, वरन् रंग-रोग़न से सजकर अमीरों, वृद्धों, महापुरुषों, शौक़ीनों, सुंदरियों के पवित्र कर-कमलों का दंड (डंडा) बनती है, या यदि मोटी और भारी भी हो तो मंदिरों-मकानों में शहतीर का काम देती है, स्तम्भ (सुतून) का पद पाती है, इत्यादि हर प्रकार से अपनी पहली अवस्था की अपेक्षा उन्नति पाती और विकास-समन्वित होती है, यद्यपि टेढ़ी को अवनति और विनाश प्राप्त होता है। यही दशा शुद्ध-

चित्त पुरुषों की है। यदि उनको प्रत्यक्ष में कोई व्यक्ति कुल्हाड़े की भाँति काटने और हानि पहुँचाने भी आयगा, तो खूब याद रहे कि कारणों के कारण चैतन्यदेव अंतर्यामी उनको पहली अवस्था से कटवाकर भी किसी अति उत्तम और उच्च पद तक पहुँचायगा। वह कुल्हाड़ा रूप बलवान् शत्रु मुँह तकता ही रह जायगा और यह पवित्र-हृदय और शुद्धात्मा महाशय प्रत्यक्ष में कटकर उन्नति के परम शिखर पर चढ़ जायगा।

ऐ संसारी लोगो! संसार के झमेलों और जगत् के धंधों में फँसकर इस सर्वगत सिद्धांत को मत भूल जाओ कि वास्तविक शक्ति यदि है तो केवल सत्यता, पवित्रता और ईमानदारी में है।

बा साफ़ दिल मजादिला बा ख़्वेश दुश्मनीस्त।
संगे-ज़नी बर आइना बर ख़ुद हमी ज़नी॥

अर्थ—शुद्ध हृदयवाले मनुष्य के साथ लड़ना अपने साथ शत्रुता करना है। शीशे पर पत्थर मारना अपने ऊपर पत्थर मारना है।

शांति और स्वच्छता में केवल वे लोग भय और डर का अनुमान करते हैं, जिन्होंने कभी इस बारे में अनुभव नहीं किया। प्यारो! आत्मनिष्ठ पुरुषों से पूछो, शुद्ध-हृदयों से पूछो, तो विदित होगा कि उनके चित्र-विचित्र अनुभवों ने नीचे लिखी बात को प्रमाणित कर दिया है—"यदि हमारा मन ईर्ष्या-द्वेष से बिलकुल रहित और शुद्ध हो, तो संसार की कोई वस्तु हमें हानि नहीं पहुँचा सकती। शांति और आनन्द से भरे हुए सच्चे महात्माओं के निकट क्रोध-मूर्ति मनुष्य भी पानी-पानी हो जाते हैं, जंगल के भेड़िए, सिंह आदि उन्हें देख प्रेम-विह्वल हो जाते हैं, साँप, बिच्छू आदि अपने दुष्ट स्वभाव को भूल जाते हैं।"

बरमन अज़ रोशन दिली बज़्मए-जहाँ हमवार शुद।
ख़ार दर पैराहने आतिश गुलिस्ताँ मी शवद॥

अर्थ—स्वच्छहृदयता के कारण संसार का रंग-ढंग मेरे आगे ऐसे एकसाँ हो गया जैसे आग की स्फुलिंग में काँटा पुष्पवाटिका हो जाता है।

यदि कोई व्यक्ति वास्तव में भलाई से भरपूर न हो और गुमान कर बैठा हो कि मैं नख-शिख अच्छा हूँ, दूसरे शब्दों में असली माल न हो, वरन् मुलम्मा हो, तो उसको परीक्षा की आग से अवश्य हानि पहुँचेगी, किंतु शुद्ध सुवर्ण तो आग में और भी चमकेगा।

सिंह जब आखेट (शिकार) को निकलता है, तो जंगल में खड़े होकर ज़ोर से गर्जन करता है। गर्जन सुनते ही आस-पास के गीदड़, हरिन आदि चौंक पड़ते हैं और मारे भय के घबराकर अपने आप अपने सुरक्षित स्थानों को छोड़ इधर-उधर दौड़ने लगते हैं। ऐसी दशा में सिंह की दृष्टि बहुत सरलता से उन पर पड़ जाती है, और वे शिकार हो जाते हैं। ग़रीब पशुओं के अपनी-अपनी झाड़ियों या भठों को छोड़ने का कारण यह वर्णन किया गया है कि गर्जन सुनते ही उनको भ्रम (अनुमान) हो जाता है कि "आह! हम सिंह से पकड़े गए! सिंह हमारे भठ में आ पहुँचा।" और अपनी ओर से बचाव के लिये वे बाहर दौड़ जाते हैं। किंतु—

ख़ुद ग़लत बूद आँ चि मा पिंदाश्तेम।

अर्थ—जो कुछ कि हमने सोचा था, वह स्वयं ग़लत था। वह बचाव का उपाय ही विनाश हो जाने का कारण बनता है।

ठीक यही हाल घबरानेवाले मनुष्यों का होता है। भ्रम की बला के पञ्जे से बचने के लिये भाँति-भाँति के उपायों में समय पड़े खोते हैं और अपनी-अपनी सम्मति पर मोहित होते हैं, किंतु—

अजल को जो तबीब और मर्ग को अपनी दवा समझे।
पड़ें पत्थर समझ पर ऐसी तुम समझे तो क्या समझे॥

ये तजवीजें ही विनाश के मुख में डालती हैं:—

तर्के-कोशिश दामने-मंज़िल बदस्त आवुर्दन अस्त।
राहे-ख़ुद रा दूर मे साज़ी बकोशीदन चरा॥
दूरबीनी कोर दारद मर्द रा।
हमचु ख़ुफ़्ता दर सरा कोर अज़ सरा॥

अर्थ—प्रयत्न का त्याग करना मंजिल का पल्ला प्राप्त करना है, अर्थात् मित्र-लाभ की इच्छा ही बेचैनी रखती है, जब यह इच्छा (मिलाप की कामना) दूर होती है, तभी साक्षात्कार की प्राप्ति होती है। तू उस प्रयत्न (ढूँढ़ने की कामना) से अपने मार्ग को उल्टा दूर क्यों करता है?

दूरदर्शिता मनुष्य को अंधा बना देती है, जैसे घर में सोया हुआ घर से अंधा (बेख़बर) होता है।

The worldling seeks pleasures fattening himself
like a caged fowl.
But the real saint flies upto the sun like
the wild crane.
The fowl in the coop has food but will soon
be boiled in the pot.
No provisions are given to the wild crane, but
the heavens and earth are his.

अर्थ—संसारी (अर्थात् संसार में मन लगानेवाला मनुष्य) संसारी प्रमोद और आनंद ढूँढ़ता है और पिंजड़े में बंद कुक्कुट की भाँति अपने आपको मोटा-ताज़ा करता रहता है, किंतु सच्चा संत-महात्मा जंगली सारस या कुलंग की भाँति सूर्य की ओर ऊँचा उड़ता है। उस पिंजड़े के (खाँचे में बंद) पक्षी को यद्यपि भोजन तो खूब मिलता रहता है, किंतु वह जल्द हाँडी में उबाला जायगा। (विरुद्ध इसके) ज़ंगली सारस को भोजन आदि तो

(निस्संदेह लोगों से) नहीं मिलता, किंतु आकाश और धरती दोनों का वह मालिक है, जहाँ चाहता है, स्वतंत्रता से घूमता-फिरता है।

हरचेः दर दुनियास्त बर आज़ादगाँ आमद हराम।
खातिर-जमा अस्त दर ज़ेरे-फ़लक सामाने-मा॥

अर्थ—जो कुछ संसार में है, वह स्वतंत्र मनुष्यों के लिये निषिद्ध है। आकाश के नीचे हमारा सामान चित्त की शांति है।

एक रँगीले महात्मा को गंगा के किनारे बैठा हुआ देखा। साथ में पाँच-छ मनुष्य और थे। अचानक गंगा की लहरों ने ठंडे-ठंडे जल से सबके कपड़े तर-बतर कर दिये और पानी की थपेड़ों ने शेष सबको वहाँ से उठा दिया। वे लोग कपड़ों के भीग जाने और जाड़ा लगने के कारण बुड़बुड़ाने लगे। आह-ओह आरम्भ किया, किंतु वह महात्मा वैसा का वैसा अपने पत्थर पर डटा रहा। आनंद से मुस्किरा रहा था और गा रहा था—"मेरी प्यारी गंगा, मेरी जान गंगा।" इत्यादि।

प्यारे पाठको! ज़रा ग़ौर तो करो, जिनको आप भयानक घटनाएँ और भयंकर चोटें अनुमान किये बैठे हो, वह वास्तव में "प्यारी गंगा, तुम्हारी जान गंगा" ही की रस-भरी लहरें हैं। यदि हैं, तो तुम्हारे प्रियतम आत्मदेव ही की करतूतें हैं, परमात्मा ही की द्योतक हैं। शिकायत कैसी? सब-की-सब डरावनी बातें और प्राणनाशक घटनायें रूप और आकार तो विष का रखती हैं, मगर बनी हुई मिसरी की हैं:—

मिसरी की तूँबी रची, रंग रूपता माँहि;
खान लग्यो जब भर्म तज, सो तब कड़वी नाँहि।

स्वप्नावस्था में पुरुष वस्तुतः आप ही आप तो होता है, किंतु तमाशा यह है कि इधर तो अपने व्यष्टि रूप से अपने आपको एक फ़क़ीर या अमीर विद्यार्थी या मंत्री आदि देखता है, उधर

अपने ही समष्टि रूप से सिंह, व्याघ्र, नगर, नदी उत्पन्न कर लेता है, जिनको उस समय के काल्पनिक अपने आपसे पृथक् समझता है। जागी हुई दृष्टि से देखें, तो स्वप्न में यह जिसको अपना स्वीकार करता है, वह भी इसका ख्याल है, और जिनको अपने से पृथक् मानकर उनसे भय करता है, भयभीत हो जाता है, वे भी उसी की सृष्टि हैं, आप ही भेड़ है और आप ही भेड़िया; आप ही पैर है और आप ही काँटा। ठीक यही दशा जाग्रत् अवस्था में है।

मेरे ही अपना आप जिज्ञासु! जिसको तू जाग्रत् अवस्था समझे बैठा है, है वास्तव में वह भी स्वप्न, यद्यपि ज़रा बड़ी नाप (scale) का स्वप्न है। वास्तविक दृष्टि से व्यक्तित्व (जीव) तेरी माया का व्यष्टि रूप है, और 'सारा संसार' तेरी ही माया का समष्टि रूप है। तेरी दशा निम्न-लिखित पंक्तियों के तद्वत् है—

> बागे-जहाँ के गुल हैं, या ख़ार हैं तो हम हैं।
> गर यार हैं तो हम हैं, अग़यार हैं तो हम हैं॥ १॥
> दरियाये-मार्फ़त के देखा, तो हम हैं साहिल।
> गर वार हैं तो हम हैं, वर पार हैं तो हम हैं॥ २॥
> वाबस्ता है हमीं से, गर जब्र है वगर क़द्र।
> मजबूर हैं तो हम हैं, मुख़्तार हैं तो हम हैं॥ ३॥
> मेरा ही हुस्न जग में हरचंद मौजज़न है।
> तिस पर भी तेरे तिश्नाएँ-दीदार हैं तो हम हैं॥ ४॥

और जब यही मामला है कि जिनसे सामना पड़े, वे तेरे ही स्वरूप हैं, तेरा ही प्रकाश हैं।

> फैला के दामे-उल्फ़त घिरते-घिराते हम हैं।
> गर सैद हैं तो हम हैं, सैयाद हैं तो हम हैं॥ ५॥
> अपना ही देखते हैं हम बंदोबस्त यारो।
> गर दाद हैं तो हम हैं, फ़र्याद हैं तो हम हैं॥ ६॥

फिर अप्रसन्न मुख और चिरचिरेपन (क्रोध) से प्रयोजन ?

छु लाए न थे कि खो गये हम। थे आप ही एक सो हो गये हम ॥
ज़ूँ आइना जिसपे यॉँ नज़र की। साथ अपने दो-चार हो गये हम ॥

राम के पास इस समय एक तस्वीर पड़ी है। इसमें एक शिकारी तीर-कमान हाथ में लिए ताक लगाए खड़ा है। छायादार वृक्ष के नीचे हरी-हरी लम्बी घास में हरी-हरी पत्तियों और पीले रंग के नरम-नरम जंगली फूलों के बीच हरिन की चमकती हुई आँख देखकर उसका निशाना कर रहा है। हाय निर्दयी! आन की आन में बेचारे हिरन को मार लेगा। ऐ अस्थिर (क्षणभंगुर) जीवनवाले मृग! मत घबरा, मत डर, परवाह न कर। जाग तो सही, तू है कौन ? क्या तू हरिन है ?—नहीं, हरिन तो "तुझे हरिन कहनेवाले" की बुद्धि में होगा; तू तो काग़ज़ है, काग़ज़; और अपने स्वरूप (काग़ज़) की दृष्टि से तू ही शिकारी है, तू ही तीर है, तू ही प्राणनाशक सूफार (तीर का मुँह) है। तुझे किसका भय ? कैसी भीति ? कहाँ का खटका ? काहे का शोक ?

बिगड़े तब जब होय कुछ बिगड़नवाली शय।
अकाल अछेद्य अभंग को कौन शख़्स का भय ॥
कौन शख़्स का भय बुद्धि यह जिसने पाई।
तिसके ढिग दिलगीरी नहीं कदाचित आई ॥

हे मनुष्य महाराज! व्याकुल होना आपके गौरव के विपरीत है। तू अपने शरीर और नाम के तल पर तो दृष्टि डाल। अपने सच्चे अपने आपको तो जान। जिससे तू डरता है, वह तू ही है। जिससे भयभीत होता है, वह तू ही है। यदि बाह्य दृष्टि से तू अत्याचार किये जाने योग्य और तुच्छ है, तो अंतर्दृष्टि से तेजोमय, प्रतापवान्, महाराजाधिराज भी तू ही है। अपने ही तेज और प्रताप से भयभीत मत हो। अग्नि अपने ताप से स्वतः

नहीं घबराया करती। सब तेरे ही प्रकाश हैं, उनसे मत डर, निधड़क हो जा।

हंता चेन्मन्यते हंतुं हतश्चेन्मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हंति न हन्यते॥ (कठोपनिषद् १-२-१९)

If he that slayeth thinks I slay, if he
Whom he doth slay, thinks 'I am slain', then both
Know not aright ! That which was life in each
Can not be slain, nor slay.

अर्थ—यदि हंता अनुमान करता है कि मैं 'मारता हूँ', यदि हन्य यह भ्रांति करता है कि 'मैं मारा गया हूँ', वे दोनों ठीक नहीं जानते, क्योंकि इन दोनों में जो वास्तविक जीवन (सत्य-स्वरूप) है, वह न किसी को मारता है और न कभी मारा जा सकता है।

नैनं छिंदंति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयंत्यापो न शोषयति मारुतः॥ (भगवद्गीता २, २३)

I say to thee, weapons reach not the life ;
Flame burns it not, waters cannot o'erwhelm ,
Nor dry winds wither it.

अर्थ—मैं तुझसे कहता हूँ कि इस आत्मदेव (सत्यस्वरूप) को न ये शस्त्र काट सकते हैं, न उसे आग जला सकती है, न पानी भिगो सकता है, और न उसे हवा सुखा ही सकती है।

इस चित्र में हंता (शिकारी) ने जिसे हिरन समझा है, वह तो स्वयं त्रिलोकीनाथ श्यामसुंदर भगवान् कृष्णचंद्र हैं। यह चमकनेवाली हरिन की आँख नहीं, यह तो कृष्ण परमात्मा के चरण का पद्म है। यह हन्य (शिकार) नहीं, यह तो प्रत्येक हृदय-कुक्कुट का हनन करनेवाला हंता, अजल

(मृत्यु देवता) की खबर लेनेवाला ठीक अपने आप स्वयं पीतांबर ओढ़े आराम में है। प्यारे! लोग तुझे शिकार समझते हैं तो क्या, कोई तुझे हरिन कहता है तो क्या, तुझे ब्राह्मण, क्षत्रिय, अमीर या फ़क़ीर अनुमान करते हैं तो क्या; तू तो अपने यथार्थ स्वरूप में स्वयं कृष्ण परमात्मा, दोनों लोकों का उपास्य देव, प्रत्येक रंग में ज्योतिर्मय प्रकाशमान है।

यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति।
तं देवाः सर्वेऽर्पितास्तदु नात्येति कश्चन ॥ एतद्वै तत्। (कठ० उप० १-४-६)

अर्थ—जिसमें से सूर्य उदय होता है और जिसमें अस्त होता है, जिसमें समस्त प्राणी प्रविष्ट हुए, जिससे कोई पृथक् नहीं, यह आत्मा वही है।

He is the unseen spirit which informs.
All subtle essences! He flames in fire.
He shines in sun and moon, planets and stars!
He bloweth with the winds, rolls with the waves.
He is Prajapati, that fills the worlds!

अर्थ—वह (वस्तु) अदृश्य आत्मा है (अर्थात् वह चर्म-चक्षु से न देखा जानेवाला है), जो समस्त सूक्ष्म तत्त्वों में प्रवेश करता है (या रम रहा है); वह अग्नि के भीतर प्रज्वलित है; सूर्य, चंद्रमा, नक्षत्र और तारों में वह चमकता है; पवनों के साथ वह चलता है; लहरों के साथ लहराता है; वही प्रजापति का स्वरूप है, जिससे यह समस्त संसार व्याप्त है।

राम तू हीं तू हीं कृष्ण है, तू ही देवन को देव।
तू ही ब्रह्म शिव शक्ति तू, तू ही सेवक तू ही सेव ॥
तू ही सेवक तू ही सेव, तू ही इंद्र तू ही शेष।
तू ही होय सब रूप कियो सबमें परवेश ॥

कहि गिरधर कविराय पुरुष तू ही तू ही राम ।
तू ही लक्ष्मण तू ही भरत शत्रुघ्न सीताराम ।।

ख़ुदाई कहता है जिसको आलम, सो वह भी है इक ख़याल मेरा ।
बदलना सूरत हज़ार ढब से, हर एक दम में है हाल मेरा ।।
कहीं हूँ सूरज, कहीं हूँ ज़र्रा, कहीं हूँ दरिया, कहीं हूँ क़तरा ।
वफ़ूरे-कसरत से अपनी मुझको हुआ है मिलना मुहाल मेरा ।।
तिलस्मे-इसरारे-गंजे मख़फ़ी कहूँ न सीने को अपने क्योंकर ।
अयाँ हुआ हाले-हर दो आलम, हुआ जो ज़ाहिर कमाल मेरा ।।
"हिजाबे - ख़ुरशीदे - ज़ाते-मानी" हुआ ज़हूरे - नमूदे - सूरत ।
मिटा जो दुनिया से नामे-आदम हुआ है मुझको विसाल मेरा ।।

शुनीदा-अम ब सनम ख़ाना अज़ ज़ुबाने-सनम ।
सनम परस्तो-सनम हम, सनम शिकन हमा ओस्त ।।
ईमाने - आलम अज़ रुखे नूरानिए - वेस्त ।
कुफ़रे - जहाँ ज़ि तुर्रए - ज़ुल्फ़े - दोताइ - ओस्त ।।

अर्थ—मैंने मंदिर में मूर्ति के मुख से यह सुना है कि मूर्तिपूजक, मूर्ति और मूर्ति-विध्वंसक सब वही है । उसके तेजोमय रूप के कारण संसार का ईमान (धर्म वा आस्तिकता) है और उसकी टेढ़ी ज़ुल्फ़ (लटा) से संसार की नास्तिकता है ।

पूर्व पक्षी (१)—तुम कहते हो कि मनुष्य मृतक की भाँति हो जाय, 'नितान्त जड़, मूक, आलसी', कोई कुछ कह दे, आगे सिर ही न हिलाए । ऐसी सदाचार-विद्या सीखने से तो संखिया खा लेना ही उत्तम है ।

(२) प्रायः हमको कर्त्तव्य (duty) विवश करता है कि हम अवश्य रोष (क्रोध) प्रकट करें । यदि तुम्हारा उपदेश माना जाय, तो कर्त्तव्य (duty) के ख़याल (sense) को ताक़ पर रखना चाहिए और निर्लज्ज होकर दिन काटने चाहिएँ ।

(३) डारविन (Darwin) आदि जैसे विज्ञान के प्रसिद्ध

तत्त्वज्ञों की विवेचना ने यह बात आपत्ति की सीमा से बाहर पहुँचा दी है कि सांसारिक उन्नति struggle for existence (अस्तित्व के लिये युद्ध) और survival of the fittest (योग्यतम के लिये जीवित बचना) पर निर्भर है, जिसके ये अर्थ हैं कि evolution (विकास) के लिये न केवल घोर प्रयत्न ही करना, बल्कि संग्राम भी करना उचित है। लेकिन तुम्हारा कथन विज्ञान की इस तीव्र गति के भी विरुद्ध चलना चाहता है, उल्टी गंगा बहाता है।*

राम—(१) हम तो कहते हैं कि वेदान्त संखिया ही खिलाता है, किंतु यह वह संखिया है, जो पाप-रूपी कुष्ट (leprosy of sin) को दूर कर दे। यह वह विष है, जिसको खानेवाला शव (मुरदा) नहीं, बल्कि शिव-शंकर (नीलकंठ) बन जाता है। यह वह सुस्ती है, जिस पर संसार-भर की चुस्ती न्योछावर कर दी जाय। यदि किसी को वेदान्त जड़ता और आलस्य लानेवाला मालूम होता है, तो इसके ये अर्थ हैं कि चेतनघनरूपी वेदान्त का उसकी आँख के साथ वही संबंध है, जो विश्व-प्रकाशक सूर्य का विचरनेवाले निशाचरों की आँखों के साथ हुआ करता है, अर्थात् उन पशुओं की दृष्टि के साथ, जो अँधेरे के अभ्यासी हैं:—

वफ़ूरे-जलवा हस्त यकसर हिजाबे-जलवा हस्त ईं जाँ;
नक़ाबे-नेस्त दरिया रा मगर तूफ़ाने-उरियानी।

अर्थ—सरासर तेज के प्रकाश की अधिकता ही यहाँ तेज का आवरण है। सिवा तूफ़ान की उरयानी (नंगापन) के नदी को कोई परदा नहीं, अर्थात् नदी की तरंगों का उठना ही

---

* इस तीसरे प्रश्न का उत्तर 'सुलह कि जंग, गंगा तरंग'-नामक अध्याय में विस्तार-पूर्वक आएगा।

उसको ढक देता है, जैसे सूर्य का तेज दोपहर के समय सूर्य को छुपा देता है।

माना कि वेदांत के ग्रंथों में इस प्रकार के श्लोक हैं—

व्यापारे खिद्यते यस्तु निमेषोन्मेषयोरपि।
तस्यालस्य धुरीणस्य सुखं नान्यस्य कस्यचित् (अष्टावक्रगीता १६,४)

अर्थ—जिसका मन व्यापार से इतना उठा हुआ है कि उसके लिये आँख मीचने और खोलने की क्रिया भी बुरी लगती है, उस (अत्यन्त में सुस्त) ज्ञानवान् को सच्चा आनंद प्राप्त है और किसी को भी नहीं।

'व्यापार से मन उठने' से प्रयोजन नीचे-लिखे पद्य की तरह मृत्यु से नहीं है:—

बक़दरे-हर सकूँ राहत बुवद बिनूगर तफ़ावत रा,
दवीदन, रफ़्तन, एस्तादन, निशिस्तन, ख़ुफ़्तनो-मुर्दन।

अर्थ—प्रत्येक ठहराव के अनुसार आराम होता है, तू इस अंतर को देख, दौड़ना, चलना, खड़ा होना, बैठना, सोना और मरना अर्थात् इन समस्त अवस्थाओं के बीच जो थिरता प्राप्त होती है, उसके अंतर को तू देख।

जिस पुस्तक में यह उपर्युक्त श्लोक दिया गया है, उसमें एक और श्लोक भी दिया है, जो व्यापार से उपरति का तात्पर्य स्पष्ट कर देता है। यथा—

निर्ममो निरहंकारो न किंचिदिति निश्चितः।
अंतर्गलितसर्वाशः कुर्वन्नपि करोति न॥
(अष्टावक्रगीता १७, १६)

अर्थ—जिस पुरुष ने मैं, मेरा, अर्थात् अहं-मम-भाव को दूर कर दिया है, जिसके चित्त में यह निश्चय जम गया है कि जो कुछ देखने-सुनने में आता है, केवल ख़याल ही ख़याल है। जिसके भीतर समस्त इच्छाएँ दूर और नष्ट हो चुकी हैं, वह

और है; वह वास्तव में कुछ भी नहीं करता, चाहे प्रत्यक्ष में वह काम करता भी दिखाई दे।

मजदूर (कुली) बेचारा दिन-भर बाजारों में पत्थर कूटता या और किसी प्रकार की कड़ी मिहनत करता है, और मारे मिहनत के शरीर को पसीना-पसीना करके अपना बसर (गुजरान) करता है, बड़ा काम करनेवाला है। ऊँचा हाकिम न सड़क पर रोड़ी कूटता है, न यात्रियों का असबाब उठाता है, न खेत में जाकर हल चलाता है, न कोई और शारीरिक कष्ट सहन करता है, केवल ज़ुबान हिला देता है, यह बिलकुल निकम्मा और सुस्त है।

पाठकगण! जैसे यह तर्क निस्सार है, वैसे ही वेदान्त-निष्ठ ज्ञानवान् को औरों की भाँति बात-बात पर निराश और व्याकुल होते न देखकर या शरीर की दृष्टि से चुप और बेकार रहते देखकर यह कहना कि वेदांत निकम्मा और सुस्त कर देता है, सरासर निरर्थक है। ज्यों-ज्यों पद उच्च होता जाता है, स्थूल इंद्रियों से काम लेना कम होता जाता है। ऊँचा हाकिम मजदूरों की तरह हाथ-पैर नहीं हिलाता; केवल ज़ुबान (अर्थात् सूक्ष्म इंद्रियाँ) हिलाता है; किंतु उसकी आज्ञाएँ सहस्रों मजदूरों को दौड़-धूप में डाल देती हैं। इसी प्रकार सच्चा महात्मा सत्संकल्प (मेस्मरिज्म की जान, मैग्निटिज्म के प्राण, और लॉर्डों का लॉर्ड) जिसके 'ख्याल ही' में संसार स्थिर है, सांसारिक चिन्ताओं का बोझ उठाना तो कहाँ चाहे ज़ुबान भी न हिलाए, उपदेश भी न करे, किंतु उसका सत्संकल्प (भीतरी आज्ञा) ही सैकड़ों-सहस्रों उच्च हाकिमों के चित्तों, ज़ुबानों और शरीरों को दौड़-धूप में डाल देता है। अब चाहे उसे 'जड, मूक, आलसी' कहो, चाहे 'चेतनघन, इनर्जी (energy) का भंडार और शक्ति का जौहर' कहो। प्यारे पूर्वपक्षी! जाकर एक बेर अद्वैतनिष्ठ महात्मा

के दर्शन तो करो, फिर देखते हैं तुम्हारे आक्षेप कहाँ जाते हैं? यह वह व्यक्ति है, जिसके तेजोमय मस्तक पर चंद्रमा की तरह प्रकाशमान अक्षरों में यह लिखा है—'हाँ, इसका पूजन करो!' वही तद्वनं (विश्व का उपास्य) है! (केनोपनिषद्)

मनअ़्म कुनी ज़ि इश्क़े-वे ऐ मुफ़्ती-ए-ज़माँ!
माज़ूर दारमत कि तू ओ रा न दीदई॥

अर्थ—ऐ संसार के क़ाज़ी (न्याय चुकानेवाले), उस (परमेश्वर) के प्रेम से तू मुझको मना करता है। जा, मैं तुझको क्षमा करता हूँ, क्योंकि तूने उस (परमात्मा) को देखा नहीं है।

दिल ढेर बुख़ारों के लगाता है फ़क़ा में।
उड़ जाते हैं ख़ुरशेद सा जब मह नज़र आया॥

(२) क्या सचमुच ड्यूटी (कर्त्तव्य) इस बात की इच्छुक हुआ करती है कि हमारा चित्त विक्षिप्त वा दौड़-धूप में हो?

जहाँ तक राम का ख्याल है, कदापि नहीं। हाँ, यह प्रायः देखा गया है कि जब स्त्रियाँ या मर्द लड़-झगड़ रहे हों, और चाहे किसी पक्ष से, झगड़े वा क्रोध का कारण पूछा जाय, तो यही उत्तर मिलेगा कि 'विरोधी पक्ष ने ऐसा क्यों किया?' या 'वैसा क्यों न किया?' जिससे स्पष्ट पाया जाता है कि क्रोध और शोक का कारण 'अपने मन से दोष का उत्पन्न हो जाना' तो बहुत कम ही होता है। हाँ, यदि दूसरों की ओर कर्त्तव्य के पूरा करने में कोताही (कमी) हो जाय, तो झटपट क्रोध की ज्वाला भड़क उठती है। अतः कैसी हँसी की बात है कि अपना कर्त्तव्य तो नहीं, औरों का कर्त्तव्य तुनक-मिज़ाज लोगों को शोक और चिंता के कूप में डाले।

बरौ बकारे-ख़ुद ऐ वाइज़! ईं चिह फ़र्याद अस्त।
मरा फ़ताद दिल अज़ कफ़ तुरा चिह उफ़्ताद अस्त॥

अर्थ—जा, ऐ उपदेशक ! अपना काम कर । यह क्या कोलाहल है ? मेरा हृदय (अपने प्यारे के प्रेम में) हाथ से निकल गया है । भला तेरा इसमें क्या गया है ?

गर हमने दिल सनम को दिया फिर किसी को क्या ?
इसलाम छोड़ कुफ़्र लिया फिर किसी को क्या ?
हमने तो अपना आप गरेबाँ किया है चाक।
आप ही सिया सिया न सिया फिर किसी को क्या ?

"नहीं महाशय ! कुछ अवसरों पर अपनी ड्यूटी भी विवश करती है कि हम भौंहें चढ़ाएँ, आँखें दिखाएँ और धमकी से डराएँ।" राम का इसमें यह कहना है कि 'शांति से काम लेना और चित्त पर सवार रहना' क्या यह स्वयं तुम्हारा उत्तम कर्तव्य नहीं ? यदि लड़ाई (परीक्षा) के अवसर पर हथियार से काम न लिया, तो उसका लाभ ही क्या ? यदि क्रोध और भड़कन उत्पन्न करनेवाले समयों पर शांति को न वर्ता, तो इस श्रेष्ठ धर्म (शांति) को वर्तना ही किस अवसर पर है ? आगे-पीछे तो प्रत्येक मनुष्य शांत रहता है, किंतु धर्मात्मा वही है, जो हृदय को हिला देनेवाले अवसरों पर चित्त को वश में रक्खे, शोक और क्रोध को प्रवेश न पाने दे :

ज़फ़र आदमी उसको न जानिएगा, गो हो कैसा ही साहबे-फ़हमो-ज़का।
जिसे ऐश में यादे-ख़ुदा न रही, जिसे तैश में ख़ौफ़े-ख़ुदा न रहा॥

जब कोई सामाजिक, पारिवारिक, राजनैतिक या धार्मिक कर्तव्य इस प्रकार का उपस्थित हो जाय, जो आपको तंग और तीक्ष्ण होने पर विवश करता हो, तो निश्चयतः जान लो कि उसे ड्यूटी (कर्त्तव्य) समझना तुम्हारी भूल है। और तुम्हारे समाज, परिवार, रियासत या धर्म का वह अंश, जो ऐसी ड्यूटी से संबंध रखता है, अवश्य सुधार के योग्य है। (वे रस्में जो तुम्हारे कुढ़ने और शोकातुर होने का कारण होती हैं,

तुम्हारे लिये अयुक्त हैं। उनका अनुसरण करना तुम्हारा धर्म नहीं है। सिंह बनो, और ऐसे जुए को बेखटके शिर से उतार दो। इस बात की जरा परवाह न करो कि वर्षों से यह रीति चली आती है।)

योरप और एशिया में शिक्षक (उस्ताद) लोगों का कई शताब्दियों तक यह ख्याल रहा कि कर्त्तव्य की दृष्टि से बच्चों के भीतर शिक्षा घुसेड़ने के लिये बिना रोक-टोक उनकी खाल उधेड़ना आवश्यक है। बेत का बचाकर रखना बच्चे को बिगाड़ना है। "If you spare the rod, you spoil the child," किंतु आज पूर्ण रूप से यह सिद्ध हो चुका है कि ऐसा ख्याल बिलकुल कच्चा (अयुक्त) था। बच्चों को, चाहे बूढ़ों को यदि हम लाभ पहुँचा सकते हैं, तो क्रोध से नहीं, प्रेम ही से पहुँचा सकते हैं। शिक्षा और शिक्षा की पद्धति में Sacrament of the rod (कोड़ों के शासन) के स्थान पर Sacrament of love (प्रेम-शासन) लाने की तजवीजें हो रही हैं। बच्चों के लिये Kindergarten (बाल-वाटिका) कई स्थानों पर प्रचलित हो गया है, और शेष स्थानों पर धीरे-धीरे चल जायगा।

इतिहास साक्षी देता है कि तरह-तरह की रस्में और रिवाज पृथ्वीतल पर जल-बुद्बुद की भाँति आते रहते हैं और फिर मिट जाते हैं। एक दिन था, जब दासों का रखना सर्वत्र आवश्यक समझा जाता था; अब उसको सबसे बड़ी घृणित प्रथा ही नहीं, वरन् पाप मानकर बंद किया गया है। इसी प्रकार सती होना, ठगी आदि एक समय उचित समझे जाते थे, अब निषिद्ध हैं।

अतः—

Our little systems have their day.
Have their day and pass away.
All are broken lights of Thee.
And Thou, O Lord, art more than they. (Tennyson.)

अर्थ—हमारे छोटे-छोटे रिवाज अपने-अपने दिन गुजारकर (अपना उदय-काल बिताकर) बीत जाते हैं। ये सब (ऐ सत्यस्वरूप!) तेरे ही टूटे-फूटे (तेज व मंद) प्रकाश हैं, और ऐ ईश्वर! तू उन सबसे महान है।

परिवर्तनशील और नाशवान् सांसारिक रस्सों के वश में होकर सच्ची उन्नति को रोक देना, आत्मा को धब्बा लगाना, अपनी शक्तियों (energies) को क्षीण करना है, असली ब्रह्मचर्य को खोना है, और मनुष्य-देहरूपी चिंतामणि से कौवे उड़ाने का काम लेना है।

पशुओं के व्यापारियों के यहाँ प्रायः यह प्रथा है कि एक बहुत मोटा और लंबा रस्सा फैलाकर उसके थोड़े-थोड़े अंतर पर छोटी-छोटी रस्सियाँ फंदों के रूप में गाँठ देते हैं, और छोटी रस्सी का एक फंदा एक पशु के गले में, दूसरा दूसरे पशु के गले में डालते चले जाते हैं, इत्यादि। इसी तरह कई पशु एक ही लंबे रस्से के साथ वश में रक्खे जाते हैं। ऋग्वेद की ऐतरेय आरण्यका में लिखा है—

तस्य वाक्तन्तिर्नामानि दामानि तदस्येदं वाचातन्त्या।
नामभिर्दामभिः सर्वं सितं सर्वं हीदं नामनीति॥ (२-१-६-१)

अर्थ—(प्राण के हाथ में) वाचा का लंबा रस्सा है और नाम फंदे हैं, अतः वाचा के रस्से और नाम के फंदों के साथ यह सब कुछ बँधा हुआ है, क्योंकि सब वस्तुएँ नाम ही नाम तो हैं।

जब कोई व्यक्ति अपना नाम पुकारा जाता सुनता है, तो झट-पट उधर को खींचा जाता है, मानों गले के फंदे के द्वारा घसीटा जा रहा है।

रिश्तए-दर गर्दनम अफ़गन्द दोस्त।
मीकशद हर जा कि ख़ातिरख़्वाहे-ओस्त॥

अर्थ— मेरे कंठ में मित्र ने संबंध की रस्सी डाल दी है। अब

जो स्थान उसके मन-प्रिय है, मुझे वहाँ ले जाता है। एक और श्रुति में आया है—

अन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद। यथा पशुरेव ७
स देवानाम्। (बृह० अ० १ ब्रा० ४ मं० १०)

अर्थ—अब जो देवताओं की इस समझ से उपासना करता है कि वह देवता (उपास्य) और है और मैं (उपासक) और हूँ, वह बिलकुल कुछ नहीं जानता; वरन् वह (उपासक) उपास्य (देवताओं) के पशु की भाँति है।

इसी के अनुसार भगवान् शंकर ने लिखा है—

अन्योऽसावहमन्योऽस्मीत्युपास्ते योऽन्य देवताम्।
न स वेद, नरो ब्रह्म स देवानां यथा पशुः॥

अर्थ—'मैं और हूँ और यह और है' यह ख्याल करके जो और (अपने से भिन्न) देवता की उपासना करता है, वह व्यक्ति ब्रह्म को नहीं जानता है, वह देवताओं के लिये बिलकुल पशु के समान है।

जब तक मनुष्य बहुत छोटा होता है, स्वतंत्र रहता है, मस्त फिरता है, दूध की दो नदियाँ उसके लिये जारी हैं, स्वर्ग में नित्य निवास करता है। इधर गेहूँ का दाना खाना आरंभ किया, शरीर को ढाँकना सीखा, समझ के पेड़ का फल चक्खा, 'यह और है, मैं और हूँ' की पट्टी पढ़ी; उधर झट नाम, जाति आदि का फंदा गले में पड़ा, दासता की हँसली में बंदी हुआ, पशुओं की भाँति क़ैद में फँसा, बंधन पड़ गए, और संसारी ड्यूटी गर्दन पर सवार हुई, जो ज़रा दम नहीं लेने देगी, दे चाबुक पर चाबुक जड़ती जायगी।

सन्ध्या-पूजा के लिये समय नहीं बचा, क्या करें, धंधे नहीं छोड़ते, ड्यूटी बड़ी जबरदस्त है! आज नहाने के लिये टाइम (समय) नहीं मिला, ड्यूटी (कर्त्तव्य)!

दफ्तरों में पिसनहारी की तरह चक्की रगड़ते आए। घर में वही दफ्तर का काम मौजूद है, सत्संग की फ़ुर्सत कहाँ? ड्यूटी (फ़र्ज़)! लड़की या लड़के का विवाह है, ख़र्चे पूरे करने को घर गिरवी रखने की चिंता रात-दिन घेरे है, (ड्यूटी)।

ए चाटुकारिता (ख़ुशामद), वंचकता (फ़रेब), धोका और घूस! तुम्हीं मुझे अपनी शरण में लो और निर्धनता की अपमानता (disrespect) से बचाओ, ड्यूटी! धन और मान की अभिलाषा की चोटें सहता रात-दिन गेंद की तरह लड़खड़ाता चला जाता है, और इसका नाम ड्यूटी (कर्त्तव्य) रक्खा हुआ है।

हाय सच्ची ड्यूटी (कर्त्तव्य)! आह! तेरा नाम ले-लेकर तरह-तरह की बुराइयाँ मेरे प्यारों का ख़ून पी रही हैं।

गंगा उठो कि नींद में सदियाँ गुज़र गईं।
बच्चों के सिर पै तेग़ सी नदियाँ गुज़र गईं॥
क्या ख़ौफ़नाक ख्वाब है, पुरदर्द हाल है।
नेकी की रूहो-जान पर बदियाँ गुज़र गईं॥

मेरे प्यारो! यह संसारी ड्यूटी (कर्त्तव्य) तुम पर ऐसे पड़ी है, जैसे सवेरे के समय बच्चों पर गरम लिहाफ़। पहले तो गरम लिहाफ़ बच्चों की आँख खुलने नहीं देता; अगर वे जाग भी पड़ें, तो बोझल होने के कारण उनको उठने नहीं देता और उनकी आवाज़ को भी बंद (muffled) कर रखता है, माँ के कान तक पहुँचने से रोकता है। प्यारे! यह मीठी नींद कड़वे स्वप्ने ला रही है। लिहाफ़ को अगर अपने आप उठा नहीं सकते, तो ज़ोर से चिल्लाओ, किसी-न-किसी तरह से अपना रुदन जगदंबा (उमा) ब्रह्मविद्या तक पहुँचाओ। तुम्हारी प्यारी माँ (श्रुति भगवती) उठाकर तुम्हें छाती से लगाएगी और अमृत-रूपी (शक्तिदाता) दूध (ज्ञान) पिलाएगी।

उस देश के निवासी, जहाँ की कन्याएँ (सावित्री) अपनी पवित्रता की शक्ति से यमराज के चंगुल से पुरुप (पति) को छुड़ाकर लाती थीं, और जहाँ के लड़के नचिकेता साक्षात् मृत्यु के मुख से अमृत निकालकर लाते थे, प्यारे भारत-निवासी! जरा ग़ौर करके बता कि तू अपने को अमर (मृत्यु पर विजयी) पाता है कि मर जानेवाला? तेरे भीतर आनंद-ही-आनंद हर समय प्रकाश डालता रहता है कि शोक और क्रोध का अंधकार छाया रहता है? तेरे भीतर अनंत शक्ति नज़र आती है कि सड़ती हुई दुर्बलता की दुर्गंध आती है? यदि तू नाशवान्, दुखिया और कमज़ोर है, तो यह पाप का फल है कि तू ब्रह्महत्या कर रहा है, बुद्धि (सोच-विचार) रूपी गौ को सांसारिक इच्छाओं (क़साइयों) के हाथ बेच रहा है, अचिरस्थायी इच्छाओं की दासता को ड्यूटी (कर्त्तव्य) मानकर रक्त-मांस के बंदी-गृहों में टोकरी ढो रहा है।

ड्यूटी के शाब्दिक अर्थ क्या हैं?—"जो हमें करना चाहिए, कर्त्तव्य।" क्या अमुक व्यक्ति जो कहता है, वह बनाना चाहिए? या अमुक शैली या प्रथा जो आज्ञा दे, वह पूरा करना चाहिए? अंततः क्या करना चाहिए? यदि धन की चाह है, तो नौकरी करना चाहिए; यदि लोगों की हवाई वाह-वाह की कामना है, तो विवाह और मृत्यु के अवसर पर क़र्ज़ लेना चाहिए; अगर शारीरिक सुविधा की चाह है, तो स्त्री-पुत्र की अधीनता चाहिए। मेरे प्राणप्रिय! "चाहिए" का पालान पीठ पर तब तक पड़ सकता है, जब तक टट्टू बनानेवाली चाह भीतर रहती है। इस चाह को मिटाना चाहिए।

सबको दुनिया की हवस ख़्वार लिये फिरती है।
कौन फिरता है यह मुर्दार लिये फिरती है॥

चाह चमारी चूहरी, अति नीचन की नीच।
तू तो पूर्ण ब्रह्म है, जे चाह न होवे बीच॥

समस्त बाहरी कर्त्तव्य तेरी ही चाह पर ठहरे हुए हैं। यह चाह वह पुंश्चली (फ़ाहिशा) महिला है कि नर-देह को अपना सोगांग बनाकर कभी कहीं कुकर्म कराती है, कभी कहीं। यह चाह ही दोखों के कूप में गिराती है।

ऐ प्यारे! यदि तेरी कोई ड्यूटी है, यदि तुझको कुछ करना चाहिए, तो वह यह है कि इस "चाहिए" से पीछा छुड़ा, इस चाह के धब्बे को मिटा, तुझे कुछ नहीं चाहिए। तेरी क़सम, तू तो नित्य तृप्त है। भ्रांति में पड़कर दीन और दरिद्री क्यों बन रहा है? यदि तेरा कोई कर्त्तव्य है, तो यह है कि अपने दबे हुए कोष को निकाल और अपनी शाहंशाही को सँभाल। शेष सब कर्त्तव्य तेरे माने हुए कर्त्तव्य हैं।

चाह घटी, चिंता गई, मनवा वेपरवाह।
जिनको कछु न चाहिए, सो शाहनपति शाह॥

संसार की आँख में चाहे राजा या सितारे-हिंद कहाओ, किंतु जब तक इच्छाओं के मैले-कुचैले, फटे-पुराने कपड़े तुम्हारे नहीं उतरे, और चिंताओं के सूखे टुकड़े तुम्हारे पेट में पेचिश डाल रहे हैं; जब तक तुमने स्वराज्य (आत्मराज्य) को नहीं सँभाला, और कामनाओं के दास बने हुए हो; तब तक तुम प्रतिष्ठा-संपन्न काहे के? कामनाओं को छोड़ने से यह अभिप्राय नहीं कि मुर्दे की भाँति निश्चेष्ट और गतिशून्य हो जाओ; वरन् इसके यह अर्थ हैं कि विश्व-वाटिका में एक सामान्य मज़दूर बनकर जीवन किरकिरा करने के स्थान पर अपने सच्चे प्रताप और गौरव के साथ सैर करो। इस प्रकार जो काम तुम्हारे शरीर से हो जायगा, आनंद से भरा हुआ (graceful) होगा। सुलतान अपनी (पलक) के संकेत से

कुछ का कुछ कर सकता है, पर भयभीत दीन दास से तो क्या बन पड़ता है।

संसार के और सब विषय तुम्हारे ऐच्छिक (optional) हैं, यदि कोई अनिवार्य (compulsory) विषय है, तो सब इच्छाओं को मिटानेवाली ब्रह्म-विद्या का प्राप्त करना है। ऐ त्रिगुणानंदित (thrice blessed) ! तेरे ही लिये वेद ने लिखा है—

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ।

(ऋग्वेद मं० १०, सूक्त ६०)

अर्थ—"तीन भाग इसके आनन्दमय अविनाशी स्वर्ग में हैं और केवल एक भाग संसार में।" फिर संसार की चिंता में क्यों पच रहा है?—

I searched through strange pathways and winding
For truths that should lead me to God .
But further away seemed the finding
with every new by-road I trod
I searched after wisdom and knowledge -
They fled me, the fiercer I sought :
For teachers, text-books and College
Gave only confusion of the thought.
I sat while the silence was speaking.
And chanced to look into my soul ;
I found there all things I was seeking—
My spirit encompassed the whole.

अर्थ—मैंने विचित्र और पेचीले मार्गों से उन तत्त्वों की खोज की, जो मुझे ईश्वर तक पहुँचा सकें, किंतु प्रत्येक नई सड़क से जिस पर कि मैं चला, तत्त्व को दूर ही पाया। फिर

मैंने बुद्धिमत्ता और विद्या की खोज की, परन्तु जितनी ही अधिक खोज की, उतने ही वे मुझसे दूर भागे, और गुरुओं, किताबों और विद्यालयों ने मेरे विचारों को उल्टा गड़बड़ कर दिया। मैं (थककर) बैठ गया। इस तरह से जब निस्तब्धता की दशा विद्यमान थी और संयोगतः अपने भीतर ध्यान किया, तो इस अंतर्दृष्टि से मुझे वह सब कुछ मिल गया, जिसकी मैं खोज में था और मेरी आत्मा ने सबको व्याप्त कर लिया।

यल्लाभान्नापरो लाभः यत्सुखान्नापरं सुखं।
यज्ज्ञानान्नापरं ज्ञानं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत्॥ (उपनिषद्)

तात्पर्य—एक ब्रह्म से बढ़कर कोई वस्तु प्राप्त करने योग्य नहीं है, और सिवा इसके कोई वस्तु आनन्द देने योग्य नहीं है, कोई वस्तु जानने योग्य नहीं, क्योंकि जो ब्रह्म को जानता है, वह ब्रह्म ही होता है।

मुंडकोपनिषद् के आरंभ में है—

ॐ ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता।
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्टपुत्राय प्राह ॥ १ ॥

अर्थ—ब्रह्मा देवताओं में सबसे प्रथम हुआ। संसार को उत्पन्न करनेवाला और लोक को पालनेवाला। इसने अपने सबसे बड़े पुत्र अथर्व को ब्रह्म-विद्या दी, जिस विद्या पर समस्त लोक स्थिर हैं।

राजाओं के यहाँ यह परिपाटी चली आई है कि सबसे बड़े पुत्र को राजतिलक, भूमि, धन और रत्नादि देते हैं। ब्रह्मा को अथर्व ऋषि के तईं पैत्रिक स्वत्व देने की क्या सूझी? इससे मालूम होता है कि ब्रह्मा दरिद्री होगा। हाय! ब्रह्मा को तो समस्त पृथ्वी का रचनहार और स्वामी लिखा है, इंद्र आदि समस्त देवताओं से वृद्धतम बतलाया है। वह दरिद्री किस प्रकार था? न तो ब्रह्मा निर्धन ही था और न ब्रह्मा को किसी का भय

ही था और न ब्रह्मा अनजान ही था। जिसने समस्त प्राणियों को उत्पन्न किया, वह प्रत्येक वस्तु के गुण और मूल्य से अवश्य जानकार था, प्रत्येक वस्तु के तत्त्व से अवश्य परिचित था। उसने समझ-बूझकर समस्त वस्तुओं में सबसे अधिक मूल्यवान् अर्थात् अमूल्य रत्न अपने हृदय-खंड को दिया। नहीं-नहीं, उसने अपनी समस्त संपत्ति (स्थावर-जंगम) की कुंजी या काग़ज़ (ब्रह्मविद्या) अपने सच्चे उत्तराधिकारी को सौंपकर उसे अपना मुकुट-सिंहासन सौंपा। उसे अपनी पदवी देकर इंद्र आदि अधीन महाराजों का शासक बनाया।

तां यो वेद। स वेद ब्रह्म। सर्वेऽस्मै देवा बलिमावहंति।

(कृष्णयजुर्वेद)

अर्थ—जो कोई उसे जानता है, वह ब्रह्म को जानता है। सब देवता उस व्यक्ति को बलि देते हैं।

ऐ वशिष्ट, अत्रेय, भरद्वाज जैसे ऋषियों से अपना गोत्र मिलानेवालो! ऐ राम, कृष्ण, बुद्ध और शंकर के देश में रहनेवालो! तुम कल के नातजुर्बेकार बच्चों का अनुकरण करते हो, जिन्होंने आत्मिक उन्नति का अभी मुँह नहीं देखा। उतारो पैरों से बूट और सिर से टोपी, और बीच बज़ार ईंधन का गट्ठा उठाकर आँसुओं की ओस से भरी हुई आँखों के दो कमल लो भेंट करने को, और किसी वेदवित् पूर्ण ज्ञानी के चरणों में दंड की भाँति जा गिरो। केवल इसी में तुम्हारा कल्याण है; केवल इसी भाँति तुम्हारा जाड़ा (पाला) उतरेगा; केवल इसी तरह तुम्हारे दुःखों की रात कटेगी; केवल इसी तरह तुम्हारी धुंध दूर होगी; केवल इसी तरह तुम्हारे पाप जलेंगे; केवल इसी में तुम्हारी प्रतिष्ठा (सम्मान) और गौरव है।

आफ़ताब अज़ औजे-इज़्ज़त रुख़ निहद बर ख़ाके-पाश।
हर कि बर रूयश नशीनद गरदद अज़ दर्गाहे-मा॥

अर्थ—सूर्य प्रतिष्ठा (सम्मान) की उच्चता पर होते हुए भी उस पूर्ण ज्ञानी के चरणों पर अपना मस्तक रखता है, अर्थात् सबका शिरोमणि होने पर भी सूर्य उस पूर्ण ज्ञानी के चरण चूमता है। और जो तुच्छ होते हुए उस ज्ञानी के समक्ष (अभिमान से) बैठता है, उससे कहो कि हमारे आश्रम से वापस लौट जाय, अर्थात् जो पूर्ण ज्ञानी के समक्ष तुच्छ होकर दीनता-पूर्वक नहीं झुकता, वह ईश्वर के पवित्र देश में स्थान पाने योग्य नहीं।

चोले जिन्हाँ दे रतड़े कंत तिन्हाँ न दे पास।
धूल तिन्हाँ दी जे मिले नानक दी अरदास॥

यह भी सच है कि कभी-कभी वेदांत जब किसी जिगर में घर कर बैठता है, तो संसार के काम का नहीं छोड़ता, कर्त्तव्य कर्मों को फीका बना देता है, सांसारिक संबंधों को ढीला कर देता है, इंद्रियों का विलास-सुख उड़ा देता है, 'मेरा-तेरा' की क़ैद मिटा देता है, घर का छोड़ता है, न घाट का, गो मालिक-मलिका लाट का।

धूलि जैसा धन जाको, शूली सा संसार-सुख,
भूमि जैसो भाग दीखे, अंतक सी यारी है;
पाप जैसी प्रभुताई, शाप जैसो सम्मान,
बड़ाई बिछुअन जैसी, नागिनी सी नारी है।
अग्नि जैसा इंद्रलोक, विघ्न जैसा विधिलोक,
कीर्ति कलंक जैसी सिद्धि सी ठगारी है;
वासना न कोई वाकी, ऐसी मति सदा जाकी,
सुंदर कहत ताको वंदना हमारी है।

❀ ❀ ❀ ❀

वाह वा रे मौज फ़क़ीराँ दी।
कभी चबावें चना-चबेना, कभी लपट लैं खीराँ दी।
कभी तो ओढ़ें शाल-दुशाला, कभी गुदड़ियाँ लीराँ दी॥

कभी तो सोवें रंगमहल में, कभी गली अहीराँ दी।
मंग तंग के टुकड़े खाँदे चाल चलें अमीराँ दी॥
वाह वा रे मौज फ़क़ीराँ दी।

तमात्मानं विदित्वा ब्राह्मणाः पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाऽथ भिक्षाचर्यं चरंति। (वाजसनेय ब्राह्मणोपनिषद्)

अर्थ—जब ब्राह्मण लोग उस आत्मा को जानते हैं, तो संतान की कामना, धन की कामना और लोकों की कामना से ऊपर उठकर निश्चिंत भिक्षुक का जीवन व्यतीत करते हैं।

आनाँकि ज़ेर साया-ए-मिहरत मुक़ामे-शानस्त।
दर दिल चरा तख़य्यले - बाले - हुमा कुनंद॥
शोरीदगाने - हुस्ने - जमालो - जलाले - यार।
तस्कीने-दिल ब मिल्के-दो आलम कुजा कुनंद॥
दीवानगाने - बादिया पैमाय - इश्क़े - ओ।
हफ़्त आसमान चश्मज़दन ज़ेरे-पा कुनंद॥

अर्थ—जिन लोगों का स्थान तेरे प्रेम तले है (अर्थात् जो तेरी छत्रच्छाया में हैं), वे अपने मन में हुमा नामक पक्षी के परों का (भाग्यशाली पक्षी की छाया का) ख़याल कब करते हैं। प्रियतम के तेज और ज्योति की सुंदरता के इच्छुक लोग दोनों लोकों के स्वामित्व से भी कब मन को शांति दे सकते हैं। उसकी प्रीति (भक्ति) में जंगल के नापनेवाले पागल अर्थात् जंगल में फिरने-वाले प्रेमी लोग सातों स्वर्गों को आँख की एक झपक से पद-दलित कर देते हैं।

ब गदाईये-दरत शाहिये आलम चिः कुनम।
ताज बख़्शाने - जहाँनंद गदायाने-चंद॥

अर्थ—तेरे द्वार की भिक्षुकता (फ़क़ीरी) पर संसार के राज्य को मैं क्या करूँ, क्योंकि संसार को मुकुट-दान करनेवाले ऐसे (तेरे द्वार के) भिक्षुक हैं।

बर दरे - मैकदह रिंदाने - कलंदर बाशन्द ।
कि सतानंदो - दिहंद अफ़सरे - शाहंशाही ॥

अर्थ—पानगृह (शराबख़ाना) के द्वार पर कलंदर रिंद होते हैं, अर्थात् सच्चे प्रेम का आनंद लेनेवाले परमहंस मस्त साधु होते हैं, जो कि साम्राज्य (मुकुट और सिंहासन) का लेन-देन करते हैं ।

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ।
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥ (गीता ३-१७)

अर्थ—जिनका आत्मा ही से प्रेम है, आत्मा ही से जिनकी तृष्णा दूर होती है, आत्मा ही में जिनको संतोष है, उनके लिये कहाँ का काम और कैसे धंधे ?

जिस नीती इश्क़ नमाज़, वह कोइ पढ़े पढ़ावेगा ।

अर्थात् प्रेम ही जिसकी सन्ध्या है, वह क्या पढ़े और पढ़ावेगा ।

हर कि सायब शवद अज़ बादा-ए-इरफ़ाँ सरमस्त ।
हमचू ख़ुरशेद दरीं दायरा तनहा गरदद ॥

अर्थ—ऐ महाशय ! जो कोई ज्ञान के मद्य से उन्मत हो जाता है, वह सूर्य की तरह इस परिधि (वृत्त) में अकेला मस्त हुआ फिरता है ।

इक मन था संग गया श्याम के, कौन भजे जगदीश ।
ऊधोजी मन न भये दस बीस ।

बहरेस्त बहरे-इश्क़ कि हेचश किनारा नेस्त ।
ईंजा जुज़ ईं कि सर बसपारन्द चारा नेस्त ॥

अर्थ—प्रेम का समुद्र ऐसा है कि उसका कोई किनारा (सीमा) नहीं, यहाँ (प्रेम के स्थान पर) सिवा इसके कि सिर दे दें और कोई उपाय नहीं ।

गर तबीबे रा रसद ज़ीं साँ जुनूँ । दफ़्तरे-तिब रा फ़रोशोयद बख़ूँ ॥

अर्थ—यदि वैद्य की इस सच्चे पागलपन तक पहुँच हो जाय, तो वैद्यक के कार्यालय को रक्त से वह धो दे।

रह रह वे इश्क़ा मारयाई। कहो किसनूँ पार उतारयाई॥

वेदांत नवयुवकों के श्वेत वस्त्र उतारकर लाल कफनी पहनाता है, उनकी स्त्रियों की आँखों के सुरमे को गरम-गरम आँसुओं में बहाता है, उनके बूढ़े माता-पिताओं को आठ-आठ आँसू रुलाता है।

नी सईयो! मैं कतदी कतदी छुट्टी।
पड़ी पच्छी पिछवाड़े रह गई, हत्थ मेरियों तन्द टुट्टी॥
सयाँ वरहियाँ पिच्छों छलड़ी लाही, काग मरेंदा कुट्टी।
सालू सलारी सड़ गए सारे, वाँही रही न जुट्टी॥
भला होया मेरा चर्खा टुटड़ा, जिंद अज़ाबों छुट्टी।
गहने गवाए, हुई वे फ़िकरी, नक्कों कन्नों बुट्टी॥

किंतु ऐ क्षणिक सुखवाले पोलो के गेंद! सत्यस्वरूप सूर्य के आकर्षण की दशा तुझे क्या मालूम। यहाँ बुरे-भले का विधान मत कर।

ऐ तुरा ख़ारे-बपा नशकस्ता कै दानी कि चीस्त?
हाले-शेराने कि शमशीरे-बला बर सर ख़ुरंद।

अर्थ—ऐ प्यारे! जब तेरे पग में एक काँटा नहीं टूटा है (नहीं चुभा है), तो तू उन नरसिंहों की अवस्था, जो विपत्तियों की कृपाण अपने सिर पर खाते हैं, कब जान सकता है कि क्या है?

तरसम कि सर्फ़ए-न बुरद रोज़े-बाज़ पुर्स।
नाने-हलाले-शेख़ ज़ि आबे-हरामे-मा॥

अर्थ - मैं डरता हूँ कि प्रलय के दिन शेख़ की हलाल (विहित) रोटी हमारे हराम (निषिद्ध) जल (मद्य) से आगे न बढ़ जाय।

(कविवर हाफ़िज़ के इस शेर का तात्पर्य यह है कि धर्मशास्त्र

के अनुकूल आचरण करनेवाले कर्मकाण्डी लोग सच्चे पुरुषों अर्थात् सच्चे प्रेमियों से कहीं आगे न बढ़ जायँ।)

उनको कौन बुरा कह सकता है, जिनके लिये—

सूझे नहीं दिन-रात तेरे ध्यान में प्यारे!
अपनी तो सहर है यही और शाम यही है॥

त्वमेव माता च पिता त्वमेव। त्वमेव बंधुश्च सखा त्वमेव॥
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव। त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

अर्थ—हे ईश्वर! आप ही मेरी माता, पिता, संबंधी और मित्र हो; और हे देवों के देव! आप ही विद्या, धन और मेरे सब कुछ हो।

किश्वरे-दिल बतो दादम कि तूई-हाकिमे-ओ।
हाकिमे-जुज़ तो दरीं किश्वर अगर हस्त बिगो॥

अर्थ हृदय-आकाश मैंने तुझको सौंप दिया, क्योंकि तू ही उसका शासक है, इसमें तेरे सिवा यदि कोई और शासक हो, तो बतला।

क्या उन पर कर्तव्य-पालन में कमी का लांछन लग सकता है कि जो संसार की ओर से एक प्रकार "ऐ जवानी की मृत्यु, वाह वा, तुझे स्वागत हो" कहते हुए युवा-मृत्यु का शरबत पी गए। वह स्त्री और माता-पिता अपने भाग्य (बख़्तो रोज़गार) से और क्या चाहते हैं, जिनका प्यारा ज्ञान-अग्नि में स्वाहा हो गया।

यो वा एतामेवं वेदापहत्य पाप्मानमनन्ते स्वर्गे लोके
ज्येये प्रतितिष्ठति। प्रतितिष्ठति। (केन० उप०)

अर्थ—जिसने ब्रह्म को पूरा-पूरा जान लिया, उसके समस्त लांछन और पाप झड़ गए; वह अनंत आनंदघन और परम स्वरूप में जमकर बैठता है, जमकर बैठता है।

ख्वाहद चो दर पाए-रेज़ी ज़रश।
चे शमशीरे हिंदी नहीं बर सिरश॥
उमेदो हिरासश न बाशद ज़ि कस।
बरींनस्त बुनियादे-तौहीदो-बस॥

अर्थ—पूर्ण ज्ञानी के पैरों में चाहे तू सोना गिरा दे और चाहे हिंदी तलवार तू उसके सिर पर रख दे, उसके निकट दोनों समान हैं। उसको किसी से आशा और भय नहीं है। अद्वैत की नींव केवल इसी पर अंत करती है।

वेदांत यदि किसी को ड्यूटी (कर्त्तव्य) की ओर से लापरवाह करता है, तो अहोभाग्य, और क्या चाहिए ? प्रियतम स्वतः आकर मारे प्रेम के यदि स्त्री के कपड़े उतारता है, तो भाग्य उदय हुआ, सोये हुए भाग्य जाग पड़े, जन्म लिया ही और किसलिये था ? वे आँखें, जो प्रियतम के स्वरूप की ज्योति पर पतंग नहीं बनीं, कौए (काग) उड़ानेवाली घुमानी का गोला क्यों न हुईं ? वे कान, जो प्रियतम की चर्चा में नहीं लगे, ढाक के दोने क्यों न बने ?

सो संगत जल जाय कथा नहिं राम की।
बिन लाडे के ब्रात भला किस काम की॥
वह आँख कि वे नम हो वह हो कोर तो बेहतर।
वह दिल कि है बेदर्द वह जल जाय तो अच्छा॥
जिस इश्क़ पर सिर न दिया, जुग-जुग जिया तो क्या हुआ।
जिस प्रेम-रस चाख्या नहीं, अमृत पिया तो क्या हुआ॥

भारत की हितैषिता का दम भरनेवालो ! देश का भार नहीं उतरेगा, जब तक अपने नेत्रों की ज्योति तथा हृदय के खंडरूप नवयुवकों का ज्ञान (ज्ञानाग्नि) के कुंड में नरमेध (मनुष्य-यज्ञ) न देखोगे।

तं त्वा भग प्रविशानि स्वाहा। स मा भग प्रविश स्वाहा।
तस्मिन् सहस्रशाखे। निभगाऽहं त्वयि मृजे स्वाहा॥

अर्थ—हे ओम्! मुझे अपने स्वरूप में लीन कर दे—स्वाहा। तू मेरे भीतर घर कर ले—स्वाहा। तेरी माया में सहस्रों उलझनें हैं, मैं तेरे स्वरूप में स्नान करता हूँ—स्वाहा।

वेदांत के यहाँ तो यह बात है नहीं कि संसार मेरा बना रहे, मैं बराबर गुलछर्रे उड़ाता जाऊँ, और जब कभी गड़बड़ी हो, तो प्रार्थनाएँ (prayers) करके ईश्वर से झाड़ने-बुहारने या कमरे सजाने का काम ले लूँ। वेदांत का ईश्वर तो बड़ा विशाल मेधावाला ईश्वर है, दास या सेवक का काम भी नहीं करने का। तुम्हारी इच्छाओं को पूरा करने के लिये दलाल नहीं बनने का। यहाँ तो जब तक समस्त इच्छाएँ उठ न जायँ, महाराज दर्शन नहीं देने के, या यों कहो कि जब ईश्वर की पहचान हुई, इच्छाओं की एकदम सफ़ाई हो गई।

हर जा कि सुल्ताँ ख़ेमा जद, ग़ौग़ा नमानद आम रा

अर्थ—जिस जगह बादशाह ख़ेमा लगाता है, वहाँ लोगों का कोलाहल नहीं रहता।

सत्यस्वरूप सूर्य के आगे संसार तो कण के समान भी नहीं रह सकता। वेदांत का विस्तार ज़रा-सी भूमि नहीं है, अद्वैत का क्षेत्रफल शारीरिक कामनाओं तक परिमित नहीं।

हम ख़ुदा ख़्वाही व हम दुनियाये-दूँ।
ईं ख़याल अस्तो मुहाल अस्तो-जनूँ॥

अर्थ—यदि तू ईश्वर और तुच्छ संसार दोनों को एक साथ चाहता है, तो यह तेरी भ्रांति और पागलपन है।

एवात्मैवाऽधस्तादात्मो परिष्टादात्मा पश्चादात्मा पुरस्तादात्मा दक्षिणत

आत्मोत्तरत आत्मैवेदꣳ सर्वमिति । स वा एष एवं पश्यन्नेव एवं मन्वान एवं विजानन्नात्मरतिरात्मक्रीड आत्ममिथुन आत्मानन्दः । स स्वराट् भवति ।

(सामवेद छांदोग्योपनिषद्)

अर्थ—निःसन्देह आत्मा ही नीचे है, आत्मा ही ऊपर है, आत्मा ही पीछे है, आत्मा ही आगे है, आत्मा ही दक्षिण में है, आत्मा ही उत्तर में है, आत्मा ही यह सब कुछ है। वह जो यही देखता है, यही जानता है, यही सोचता है, उसका प्यार है तो आत्मा से, उसका खेल है तो आत्मा से, उसका घुटकर मिलना (हमबगल होना) है तो आत्मा से, उसकी प्राणविश्रांति है, तो आत्मा से, वही उस तेजस्वरूप को पाता है।

बैठत रामहि, ऊठत रामहि, बोलत रामहि, राम रह्यो है ।
खावत रामहि, पीवत रामहि, धामहि रामहि, राम गह्यो है ॥
जागत रामहि, सोवत रामहि, जोवत रामहि, राम लह्यो है ।
देतहु रामहि, लेतहु रामहि, सुंदर रामहि, राम रह्यो है ॥

करें हम किसकी पूजा और लगाएँ किसके चंदन हम ।
सनम हम, दैर हम, बुतख़ाना हम, बुत हम, बिरहमन हम ॥

गह अज़ ज़ुल्फ़त परेशानम्, गह अज़ रूए-तो हैरानम ।
हमीं कुफ़रस्तो ईमानम् हमीं लैलो निहारे-मन ॥

अर्थ—कभी मैं तेरी ज़ुल्फ़ (माया) से व्याकुल होता हूँ, कभी तेरा (स्वरूप) देखकर आश्चर्यित होता हूँ, यही मेरा कुफ़र और ईमान है, और यही मेरी रात और दिन है।

तेरा जन राम रसायन माता ।
प्रेम रसायन जाको उपज्यो, छोड़ न कितहूँ जाता ।
ऊठत हर-हर, बैठत हर-हर, हर-हर भोजन खाता ॥
अठसठ तीरथ मज्जन कीने, साधू धूरीं नहाता ।
सफल जन्म हरजन का उपज्यो, जिन कीनो सौत विधाता ॥

तुरा गोयम, तुरा जोयम, तुरा दानम, तुरा ख्वानम।

अर्थ—तुझको कहता हूँ, तुझको ढूँढ़ता हूँ, तुझको जानता हूँ, और तुझही को पढ़ता हूँ।

पुरसंद दोस्ताँ कि कुजा मेरवी ? बगो।
मुश्ताक़ रा चेः पुरसी बरे-यार मे रवम॥

अर्थ—मित्र पूछते हैं कि तू कहाँ जाता है ?कहो। मैं उत्तर देता हूँ कि प्रेमात्मा (जिज्ञासु) से आप क्या पूछते हो, हम मित्र (आत्मस्वरूप) के पास जाते हैं।

यार गुफ़्ता कीस्ती ? गुफ़्तम सनागोए-शुमा ;
अज़्मे-कुजा दारी, बिगो ? गुफ़्तम दरे-कूए-शुमा।

अर्थ—यार ने पूछा कि तू कौन है ? मैंने उत्तर दिया कि आपका प्रशंसक (स्तुतिकर्त्ता)। फिर पूछा कि तू कहाँ का संकल्प रखता है ? मैंने उत्तर दिया कि आपकी गली के द्वार का।

सबाए-ईद कि मर्दम बकारो-बार रवंद।
बलाकशाने-मुहब्बत ब कूए-यार रवंद॥

अर्थ—ईद के सवेरे जबकि और मनुष्य कार-धंधे में लगते हैं, तो प्रेम की पीड़ा सहनेवाले अपने प्यारे की गली में जाते हैं।

अपनी तो सहर है यही और शाम यही है।

महादेव ने वामदेव से कहा है—

अंतर्योगं बहिर्योगं यो विजानाति तत्वतः।
त्वया मयाप्यसौ वंद्यः शेषैर्वन्द्यस्तु किं पुनः॥

अर्थ—जिसने भीतर-बाहर एक आत्मदेव को जाना, वह तो इस योग्य है कि मैं (शिव) और तू (वामदेव) भी उसकी वंदना करें, औरों का उपास्य देव होने में तो सन्देह ही क्या रहा ?

अवतारों के विषय में पुराणों में कहा है कि जिन्होंने भगवान् से शत्रुता प्रकट की, झगड़ा और संग्राम को बर्ता, उनका

बहुत शीघ्र कल्याण हुआ, उनको महाराज ने बहुत शीघ्र मुक्ति प्रदान की।

ऐ प्यारो! वह नारायण-रूप महात्मा भगवान् का अवतार ही है, जो अपने अस्तित्व से शत्रुता, डाह, ईर्षा-द्वेष रखनेवालों का मन-प्राण से भला चाहता है; उनकी सेवा में अपना प्यारा से प्यारा धन उपस्थित करने को प्रस्तुत रहता है। जिसके रोम-रोम से प्रेम टपक रहा है, जिसकी आँखों से आनंद बरस रहा है, जिसके मस्तक पर शांति का चाँद चमक रहा है, ऐसे महा-पुरुष की ओर से वेदांत पहाड़ जितने क्रोध और आँधी की सी शत्रुता को चैलेंज करता है। उसके दर्शनों ही से क्रोध का पहाड़ और शोक की अँधेरी का नाम शेष रह जाय, तो सही, पता मिल जाय, तो कहना।

> आशिक़ाने-आफ़ताब अज़ दिलबरे-मा ग़ाफ़िलंद।
> अय नसीहतगो, ख़ुदारा रौ बबीनो-रौ बबीं॥

अर्थ—सूर्योपासक हमारे प्यारे (सच्चे मित्र) से अचेत (बेख़बर) हैं, ऐ उपदेश करनेवाले! ईश्वर के लिये जा और देख, जा और देख।

ब्रह्मविद्या वह जादू-मंत्र है कि काली रंगत, ठिंगने क़द और टेढ़ी टाँग में इस आश्चर्य का रूप-लावण्य भर देती है, जिससे संसार-भर के ऊँचे क़दवाले अत्यन्त सुन्दर स्वरूप हज़ार-हज़ार वर्ष तक बाँसुरी पर साँपों की तरह खिंचे हुए जान दे देने को एक गड़रिए (Divine Shepherd) के देश में दौड़े जाते हैं। हाय गड़रिया!

> ता दीदा बख़्वाब दीदा रूयत। पैवस्ता दर आर्ज़ूए ख़्वाब अस्त॥

अर्थ—जब से आँख ने तेरा रूप स्वप्न में देखा है, वह सदैव उस स्वप्न की लालसा में है।

सुरतवर्धनं शोकनाशनं स्वरित वेणुना सुष्ठुचुंबितम् ।
इतररागविस्मारणं नृणां वितर वीरण: तेऽधरामृतम् ॥

अर्थ—आनंद और प्रसन्नता का बढ़ानेवाला, शोक को दूर करनेवाला, धीमी स्वरवाली बाँसुरी से सुशोभित और अन्य सांसारिक भोगों को भुला देनेवाला (प्यारे श्रीकृष्ण का) ज्ञानोपदेश रूपी अमृत सत्य के जिज्ञासुओं को मुक्ति रूपी दान देने की शक्ति रखता है ।

हाय गोलचंद ! मेरे लाल ! तू गोबर-मिट्टी (सांसारिक इच्छाओं) में क्यों हाथ लिप्त कर रहा है ? यह खेल अच्छा नहीं, मक्खन-जैसा शरीर तुमने मैला क्यों कर लिया ? गोबर-मिट्टी में तो बिच्छू (दुःख) होते हैं, कहीं काट खाएँगे, फिर होंठ बिसूर-बिसूर कर रोना आरंभ करोगे । तुम्हारा रोना तुम्हारा राम नहीं सह सकता । मेरे नन्हे ! आओ तुम्हें नहलाऊँ, धुलाऊँ, दूध पिलाऊँ, तुम गड़रिये तो नहीं, तुम तो द्वारिकाधीश (जल-थल के स्वामी) हो, छत्र-सिंहासन के अधिकारी हो, छोड़ो गँवारपन ।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

सुलह कि जंग ? गंगा-तरंग

(रिसाला अलिफ़ नं० ७ से १२

(१) अब हम अपने प्यारे की तीसरी आपत्ति की ओर (जो पूर्व पृष्ठ २१५-१६ में की गई है) आते हैं कि "डारविन के विकास-वाद के मतानुसार शांति और सुलह नाजायज़ (अयुक्त) है, और उन्नति के लिये लाठी के बल से भैंस ले जाना आवश्यक है। समस्त प्राणिवर्ग और वनस्पतिवर्ग आदि में भी यही नियम प्रचलित है। जो नियम कि सृष्टि के अन्य विभागों में प्रचलित हो, उससे मनुष्य का भागना अनुचित है।"

राम—इवोल्यूशन (विकासवाद) के नियम जो डारविन और उसके अनुयायी विज्ञानविदों ने बताए हैं, यदि वे पशु आदि के लिये सच हों, तो भी, ऐ समस्त सृष्टि में श्रेष्ठ प्राणि ! तुझे कदापि-कदापि शोभित नहीं है कि तू वन्य पशुओं की सेवा में घुटने टेककर पाठ पढ़े और उनसे यह उपदेश सीखे कि स्वार्थ-परता से उत्तेजित (संतप्त) होकर दुर्बलों का रक्त पीना ही प्रकृति के नियमों का अनुसरण है, तीसमारख़ाँ बनकर सांसारिक मनोरथरूपी शव का आहार करना भलाई है, और मुरदार खाते-खाते आँखें मीचना ही ईश्वर-पूजा या भगवत्-आराधन है।

प्यारे ! तुम निर्वाचित हो चुके हो (you have been selected)। तुम्हारे लिये लंगूर और चीते का युग (epoch) बीत चुका है। मनुष्य-भक्षणवाले नाख़ूनों, दाँतों और सींगों का राज्य भी बीत चुका है। फाड़ खाने या दुम हिलाने का समय नहीं रहा। तुम अब दक़ियानूस (उपद्रवी शासक) की

तरह सूर्य, चंद्रमा और सब नक्षत्रों को इस छोटे से शरीर (जगत्) के गिर्द मत घुमाओ। स्वार्थपरता से बाज़ आओ (विरत हो), वरन् इस शरीर-भूमि को परमार्थ के सूर्य पर न्योछावर कर दो, वार के फेंक दो।

यदि उन्नति नर-भक्षण ही पर अवलंबित है, तो मनुष्यता ऐसी उन्नति से बाज़ आई। हरबर्ट स्पेंसर जैसे विश्व-विदित, विकासवाद के पक्षपाती ने भी अपने Data of Ethics (आचार-शास्त्र की पुस्तक) में स्वीकार किया है कि "यद्यपि बुद्धि-हीन सृष्टि के लिये स्वार्थपरता और युद्ध-विग्रह ही क्रमशः उन्नति का कारण रहेंगे, किंतु मनुष्य के लिये सहानुभूति, शुभेच्छा और स्वार्थ-त्याग (self-denial) भी उच्च पद पर पहुँचानेवाले या उन्नति दिलानेवाले हैं।" प्रोफ़ेसर हक्सले (विज्ञान के दीप्तिमान सूर्य) ने किस उत्तम वाणी के साथ अपने Evolution and Ethics (विकासवाद और आचार-शास्त्र) के पृष्ठ ८१-८२ में प्रकाशित किया है कि "आचार-सम्बन्धी उत्तमताएँ उन सिद्धांतों की विरोधिनी हैं, जो संसार के 'जीवन-संग्राम' में कृतकार्यता (सफलता) के साधन हैं। निर्दयी, स्वार्थपरायणता और वृथाभिमान के स्थान पर आचार-शास्त्र स्वार्थ-त्याग सिखाता है। सब विरोधियों, प्रतिपक्षियों या प्रतिद्वंद्वियों और सह-गामियों को ढकेल देने या पैरों तले रौंदने के स्थान पर आचार-शास्त्र सबकी सेवा करने की आज्ञा देता है। भलाई इस बात की इच्छुक नहीं कि जो योग्यतम हो, केवल उसी का डंका पीटा जाय (survival of the fittest), वरन् इस बात की इच्छुक है कि यथाशक्य योग्य पुरुषों की संख्या बढ़ाने का प्रयत्न किया जाय (fitting of as many as possible to survive)। आचार-शास्त्र के यहाँ (gladiatorial) मल्लकारक जीवन

के प्रश्न का खंडन है। आचार-शास्त्र के नियम और शिक्षा इस आशय पर निर्भर हैं कि लड़ाई-झगड़े की सार्वजनिक प्रवृत्ति अथवा व्यक्तिगत प्राकृतिक इच्छा को रोकें, इत्यादि।"

नोट—यदि आचार-शास्त्र के नियम और शिक्षा समष्टि या व्यष्टि संघर्ष (Cosmical or Competitive Process) को रोकने के लिये हैं, तो वेदांत इसकी जड़ काटने के लिये है। आचार-शास्त्र का तो इतना ही अनुशासन है कि "Love your neighbour as yourself, अपने पड़ोसी से अपने बराबर प्रीति करो।" वेदांत का यह ढिंढोरा है—"He is your Self—अपने बराबर तो क्या, वह तुम्हीं हो।"

मन हमानम, मन हमानम, मन हमाँ।
हर कुजा चश्मत फ़ितद बुज़ मन मदाँ॥

अर्थ—मैं वही हूँ, मैं वही हूँ, मैं वही हूँ। जिस जगह तेरी आँख पड़े, उसको तू मेरे अतिरिक्त मत जान।

भगवान् बुद्ध ने एक राजा को हरिन पकड़े हुए देखा। इधर निर्दोष मृग की भयातुर सूरत (आकृति), उधर चमकता हुआ अचूक फर्सा दिखाई पड़ने की देर थी कि भगवान् बुद्ध मारे सच्ची पीड़ा के राजा के सम्मुख चित गिर पड़े, और मर्मस्पर्शी द्रवीभूत चित्त के साथ राजा से प्रार्थना की कि "आप निस्संदेह मेरा शरीर फर्से के अर्पण कर दीजिए, किंतु इस मतवाली (मदभरी) आँखोंवाले मृग को पीड़ा पहुँचाने से हट जाइए। मुझे अपने शरीर से प्रीति नहीं, किंतु इस बेचारे मृग को जीवन बहुत प्यारा है।"

पाठक! आप विचार कर सकते हैं, ऐसे अवसर पर राजा साहब का पाषाण-हृदय अहल्या बनकर कहाँ उड़ गया होगा। इन अंतर्दाहवाले वाक्यों ने राजा के वहशत-भरे (बर्बरता-पूर्ण) वा भयानक संकल्प पर किस प्रलय-काल का कुल्हाड़ा चला दिया

होगा। बुद्ध के आत्म-समर्पण ने राजा के हिंसक हृदय को कितना अधिक विदीर्ण किया होगा! हजारों वर्ष बीत गए कि वह बुद्ध जो हरिन के हेतु प्राण देने को तत्पर था, आज तक करोड़ों मनुष्यों पर राज कर रहा है। वह ईसा जिसका कथन है कि 'एक गाल पर कोई तमाचा मारे, तो दूसरा गाल उसके आगे कर दो" वह ईसा देशों के देश अधिकार में ले आया। क्या हिंदुओं को विकास-सिद्धांत (या परिणामवाद) का ज्ञान न था?

प्रोफ़ेसर हक्सले ने स्वीकार किया है—

To say nothing of Indian Sages, to whom Evolution was familiar notion, ages before Paul of Tarsus was born.

अर्थ—भारतवर्ष के ऋषियों का तो क्या कहना है, जो टार्सस के निवासी पाल के उत्पन्न होने से बहुत काल पूर्व विकास के सिद्धांतों से भली भाँति परिचित थे।

श्रीरामानुजाचार्य ने अत्यंत योग्यता-पूर्वक इस सिद्धांत को सिद्ध किया है। सांख्य के कर्त्ता ने भी सांसारिक विकास को सविवरण दिखाया है—

निमित्तं अप्रयोजकं प्रकृतीनां। वरन् भेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत्॥

(योगदर्शन)

अर्थ—जीवात्मा में प्रत्येक शक्ति पहले ही से विद्यमान है। एक चींटी में वह समस्त शक्तियाँ निहित हैं, जो ब्रह्मा में स्पष्ट हैं। नदी अपने वेग से सब स्थान पर एक ही जैसी बहती जा रही है, जो कृपक अपने खेतवाला बंद हटायेगा, उसके खेत में पानी तत्काल भर आएगा।

भारतवर्ष में यह अंतःशक्ति (नदी) विकास-वाद का कारण स्वीकार की गई है। हिंदू लोग विकास-वाद से भली भाँति परिचित

चले आये हैं। किंतु उन्होंने लड़ाई-झगड़े को विकास-वाद का कारण कहीं नहीं निर्दिष्ट किया है।

श्रीरामानुजाचार्यजी के मतानुसार छोटे दर्जों में आत्मा एक (contracted spring) संकुचित अर्थात् घुटे हुए तार के समान है और फैलना चाहता है। विस्तार के लिये एकत्रित बल से विकास का होना आवश्यक है। जो कारण इसके संकोच (contraction) के हेतु हैं, वे पाप हैं, और जो इसके विकास में सहायक हैं, वे पुण्य वा शुभ कर्म हैं। अब यह आंतरिक शक्ति विकास (परिणाम) का कारण है। अविद्या के कारण इस शक्ति का जहाँ विरोध हुआ, झगड़ा-बखेड़ा (struggle) और दुःख (pain) प्रकट हुए। जैसे गंगा की तीक्ष्ण धारा को चट्टान या पत्थर जहाँ रोकनेवाले हुए, वहाँ कोलाहल मचा और तूफ़ान आया (गोहाना-झीलवाली घटना कदाचित् अभी स्मरण होगी)।

खनिजवर्ग, वनस्पतिवर्ग और प्राणिवर्ग में मनुष्यों की अपेक्षा अविद्या जन्म से है, इसलिये जड़वर्ग, वनस्पतिवर्ग और प्राणिवर्ग को आभ्यन्तर विकास-शक्ति की रुकावट का पेश आना आवश्यक है, और युद्ध-विग्रह अथवा लड़ाई-झगड़े का होना भी अति आवश्यक है। किंतु यह लड़ाई-झगड़ा उनके विकास का यथार्थ कारण नहीं, वरन् एक अंश में प्रतिबंधक है। जैसे जहाँ कहीं गाड़ी की गति आरंभ होगी, रगड़ का व्यवहार आवश्यक होगा। किंतु यह रगड़ गति को सहायक नहीं।

आर्य लोगों के मतानुसार सृष्टि के अन्य वर्गों की अपेक्षा मनुष्य आजन्म अविद्या से बहुत कुछ मुक्त है, और इसीलिये अपनी करनी और रहनी का उत्तरदाता माना जाता है। मनुष्य-शरीर में आभ्यन्तर विकास-शक्ति का विरोध उसी हद तक होगा, जहाँ तक भीतर पाशविक जड़ता (अविद्या) की गंध शेष है; और लड़ाई-झगड़े का कारण तो होगी अविद्या, किंतु उन्नति और विकास का

कारण होगी अंतःशक्ति। अतः यह परिणाम निकालना कि उन्नति और विकास का कारण युद्ध और लड़ाई है, नितांत मिथ्या है।

इतिहास इस बात की साक्षी देता है कि "भेड़ों और भेड़ियों के युद्ध (The sheep among the wolves) में, जो शताब्दियों तक खत्म नहीं हुआ करता, अंततः विजय जब होगी, तो शांति-प्रिय और प्राण न्योछावर करनेवाली भेड़ों की होगी। देख लो—भेड़ियों की जाति तो नष्ट होती जा रही है, और भेड़ों की कितनी अधिकता है।

एक वह दिन था कि यूनानियों के दल-बादल लश्करों की दौड़-धूप से भूमि काँपती थी, आज फैलकूस और सिकंदर के देश की कहानी बाक़ी रह गई है। एक दिन वह था कि रूम की राजधानी की ध्वजा भूमंडल के लगभग प्रत्येक स्थान पर लहराती थी, आज क़ैसरों (Caesars) के सिंहासनों पर मकड़ियाँ जाले तन रही हैं। एक वह दिन था कि अफरासियाब, फरेदूँ और कैकौस की असंख्य सेनाएँ और घोड़ों की टापों से सुविस्तृत अरण्यों में "जिमीं शश शुद व आस्माँ गश्त हश्त" (पृथिवी छः हो गई और आकाश आठवाँ हो गया) का मामला हो रहा था। आज वही मुट्ठी भर रुस्तमजी, सुहराबजी आदि फ़ारस से अलग होकर भारतवर्ष में काल व्यतीत कर रहे हैं। मुग़लों का चमकता चाँद भी दो दिन की चमक-दमक दिखाकर बिलकुल फीका पड़ गया और कई बल-संपन्न साम्राज्य सागर की लहरों की भाँति उत्पन्न होकर मिट गए।

पर्दादारी मी कुनद बर क़सरे-क़ैसर अनकबूत।
बूम नौबत मी ज़नद बर गुंबदे-अफ़रासियाब॥

अर्थ—रूम के बादशाह के महल पर मकड़ी परदादारी करती अर्थात् उसे जाला तनकर ढाँप रही है, और उल्लू

अफ़रासियाब के गुंबद पर अब नौबत बजा रहा है, अर्थात् अब वहाँ मनुष्य के स्थान पर उल्लू बोल रहा है।

किंतु वह जाति, जो यूनानियों के प्रकाश (ज्ञान) का स्रोत थी; वह जो उस समय उपस्थित थी, जब रूमी साम्राज्य की नींव भी नहीं पड़ी थी और जब वर्तमान समय की योरपियन शक्तियों (राष्ट्रों) के पिता-पितामह जर्मनी के जंगलों में नग्न फिरते थे; वह जाति जिसके आदि का पता लगाने में इतिहास की आँखें फटती हैं; वह जाति अपने देश में आज तक बीस करोड़ मौजूद है और बढ़ती-फैलती रहेगी। क्यों ?—क्योंकि उनका प्रत्येक वाक्य "ओम् आनंद" से आरंभ होता है, और "शांति ! शांति !! शांति !!!" पर खतम होता है; क्योंकि युद्ध-विग्रह के स्थान पर वैराग्य और त्याग उनका शस्त्र है; क्योंकि और देशों को विजय करने के स्थान पर अपने आपको विजय करना उनका आदर्श है। ईश्वर का अनुग्रह इस जाति पर है, और रहेगा। यही जाति है जो मुसलमानों को मस्जिदें बनाने के लिये चंदा देती है, और ईसाइयों को गिरजे तैयार करने में सहायता देती है।

संसार में प्रत्येक देश अपने एक कर्त्तव्य को लिए हुए है। भारत को ब्राह्मणपन (Priest of Nature) की ड्यूटी मिली हुई है। किसी को सांसारिक तृष्णा ने व्याकुल किया है, किसी को भोगेच्छा ने विचलित किया है। हिंदू तो वही है, जो केवल राम पर प्राण समर्पण करता है, ब्राह्मण वही है, जो अपनी जिह्वा से यह गा रहा है—

हम नंगे उमर बिताएँगे, भारत पर वारे जाएँगे।
सूखे चने चबाएँगे, भाइयों को पार लगाएँगे॥
रूखी रोटी खाएँगे, मस्त पड़े रह जाएँगे।
गाली-ताना खाएँगे, आनंद की झलक दिखाएँगे॥

सूलों पर नंगे जाएँगे, पर एको ब्रह्म लखाएँगे।

लत खुर्दन अज़ तमन्नए-दोलत बराय चे।

ख़्वारी कशीदन अज़ पए इज़्ज़त बराय चे ? ॥ १ ॥

गर्चे बदस्त बुख़्ल ज़ि मरदाँ वले बख़ील।

गर माल-ख़ुद नदाद अदावत बराय चे ? ॥ २ ॥

नाली ज़ि बे मुरव्वतिये-अहले-रोज़गार।

अम्मा बिगो उमेदे-मुरव्वत बराय चे ? ॥ ३ ॥

मतलब अगर गुज़श्तने-उमरस्त दर ख़ुशी।

बगुज़र ज़ि मतलब ईं हमा ज़हमत बराय चे ? ॥ ४ ॥

बगुज़र अज़ाँ दुकाँ कि ख़रीदार नेस्ती।

बेहूदा जंग बरसरे-क़ीमत बराय चे ? ॥ ५ ॥

अर्थ—(१) धन की चाह में संसार की लातें खाना, किसलिये ? और मान के लिये अपमान सहना किसलिये ?

(२) यद्यपि मनुष्यों के लिये कंजूसी बुरी है, किंतु कंजूस ने यदि अपना धन नहीं दिया, तो उससे शत्रुता किसलिये ?

(३) तू संसारी लोगों की बेमुरव्वती की शिकायत करता है, किंतु बता कि मुरव्वत (शिष्टाचार) की आशा तुझे उनसे है किसलिये ?

(४) यदि तेरा मतलब आनंद में आयु बिताने का है, तो इस मतलब से दूर हट, इन समस्त कष्टों को तू सहता है किसलिये ?

(५) उस दूकान से भी अलग हट, जिसका कि ख़रीदार तू नहीं है, मूल्य के ऊपर व्यर्थ लड़ाई-दंगा किसलिये ?

योरपवालों को पर्वत-श्रेणियों और पत्थरों की बनावट जाँचने दो, भारतवासी तो वहाँ शिवशंकर और शक्ति ही देखेंगे। कोई नदियों की लम्बाई-चौड़ाई और मोहाना पड़ा ढूँढे, भारतवासी तो नदी की प्राण-आत्मा (गंगा) ही से बातें करेंगे। किसी के लिये वायु और अग्नि तत्त्व हों, किसी के

लिये मिश्रित सही, हिंदुओं को तो परमदेव ही सूझता है। जिसका जी चाहे फूलों को काट-काटकर पंखड़ियाँ पड़ा गिने (Botany), जिसका जी चाहे उनसे स्त्रियों की सेज सजाए, हिंदू तो उन्हें पूजा के लिये प्रिय समझते हैं। उनको तो पीपल, तुलसी, गाय और साँप में भी देवता ही दर्शन देता है। मछली और कछुआ भी अवतार (परमेश्वर) हैं। कुशा और भोज-पत्र भी पवित्र हैं। कौन वस्तु है, जो आनंदकंद की दृश्य नहीं है। सच्चा हिंदू तो नारायण ही में रहता-सहता और निवास-प्रतिवास करता है। योरप के ज्योतिषियो ! आपको तारों का लोक दिखाई देना मुबारक हो; भारतवासी तो वहाँ ज्योतियों की ज्योति (The Light of lights) को देखेंगे—

चन्न[1] चढ़्या कुल आलम देखे, मैं देखा अबरू[2] माही[3] दा।
हुन[4] किस थीं आप छिपाई दा।

मायारूपी दुपट्टे पर वारे-न्यारे जाते हो। इसी पर बस मत करो। यह माया का दुपट्टा उठाकर सुन्दर-कपोल प्यारे श्यामसुन्दर पर मन और आँखों को भौंरा बना दो।

मरा दर दिल बग़ैर अज़ दोस्त चीज़े दर नमी गुंजद।
बख़िल्वत ख़ानए-सुल्ताँ कसे दीगर नमी गुंजद॥ १॥
दरूँ-क़सरे-दिल दारम, यके शाहे कि गर गाहे।
ज़ दिल बेरूँ ज़नद ख़ेमा, ब बहरोबर नमी गुंजद॥ २॥

अर्थ—मेरे हृदय में प्रीतम के अतिरिक्त और वस्तु कोई नहीं समाती है। बादशाह के एकांत स्थान में कोई दूसरा मनुष्य नहीं जा सकता॥ १॥ हृदय-मंदिर में मैं एक ऐसा बादशाह रखता हूँ, अर्थात् मेरे हृदय में एक ऐसा बादशाह है कि यदि वह कभी हृदय से बाहर खेमे गाड़ दे, अर्थात् यदि वह कभी हृदय से बाहर आ जाय, तो जल-थल में न समा सके॥ २॥

---

१ चन्द्रमा, २ मुख, ३ प्रियतम, ४ अब।

पाश्चात्य देश निवासियो! तुम मानवीय शरीर के रक्त और हड्डियों से हाथ बहुत भर चुके (Anatomy)। आओ, अब इस शरीर में उस महान् ज्योतिःस्वरूप का दर्शन करना सीखो ॥

हंसः शुचिषद्वसुरंतरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।
नृषद्वरसदृतसद् व्योम सदब्जा गोजा ऋतजा आद्रिजा ऋतम्बृहत्।

तात्पर्य—आकाश की ओर दृष्टि डालो, प्रीतम हंस (सूर्य) बनकर प्रकाशमान है। आकाश और भूमि के बीच देखो, प्यारा वसु (वायु) बनकर मस्ताना चाल चल रहा है। पृथ्वी पर होत्र (अग्नि) के वेष में बुला रहा है। वही अतिथि बनकर घर में आता है। मनुष्य के रूप में तेज दर्शाता है; उजेले में वही चमकता है; व्योम (ether) में वह है; पानी में वही (जल-जंतुओं के नाम से) उत्पन्न होता है; भूमि पर वही (वनस्पति के रूप में) उत्पन्न होता है, यज्ञ से वही प्रकट होता है; पहाड़ों पर वही (नदी-झरनों के वेष में) निकलता है। वह सत्य है, वह महान् है।

चंपा में चतुर्भुज, मोतिये मोहनलाल,
केशवान में केशव, अरगुट्टे गिरधारी है;
गुलाब में गोपाल लाल, सोसनी में स्याम भाल,
सेवती में सीतापति, मरुवे मुरारी है।
नरगिस में नारायण, दामोदर दाऊदी में,
क्योंड़े में कृष्णरूप, श्यामतनधारी है;
अनंत फूल फूलन में, फूल्यो अनंत राम,
फूल-फूल पात-पात वासना तुम्हारी है।

इंद्रियों से श्रेष्ठतर, विचित्र शक्ति-भरे, सच्चे आनंद और पवित्र जीवन की शिखर (कैलास) पर विचरनेवाला हिंदू शब्द-शास्त्र (व्याकरण) क्यों हाथ में लेता है? क्योंकि 'पाणिनि' ने

यह दावा किया है कि उसका विषय मुक्ति का द्वार हो सकता है। महात्मा पंडित ज्योतिष-शास्त्र का किसलिये अध्ययन करता है? केवल इसलिये कि वेद का यह एक अंग (नेत्र) है। धर्मात्मा ब्राह्मण को ओषधि (जड़ी, बूटी, रस आदि) के बनाने व करने में क्यों प्रीति हो जाती है? क्योंकि उसने सुना है कि कुछ ओषधियाँ शुद्ध सतोगुण को बढ़ाती हैं, और इसी हेतु परमेश्वर से मिलने का साधन हैं। तर्कवादी अपने न्याय-शास्त्र की ओर हिंदुओं का चित्त कभी आकर्षित नहीं कर सकते थे, यदि अपने ज्ञान को संसार से मुक्ति देनेवाला न वर्णन करते। साहित्य को केवल धर्म, अर्थ और काम ही का साधन नहीं सिद्ध किया, वरन् मोक्ष दिलानेवाला भी कहा है।

हिंदुओं के लगभग सब छंद सांसारिक बखेड़ों और जन-प्रीति (इश्क़मजाज़ी) का तो नाम ही नहीं जानते, यदि जन-प्रीति को कहीं स्थान दे भी दिया है, तो परमेश्वर की भक्ति और ज्ञान अपनी झलक दिखाए बिना नहीं रहे। हिंदी-भाषा का एक कवि प्रशंसा तो अपनी प्रिया के नयनों (नेत्रों) की कर रहा है, किंतु भगवान् के समस्त अवतारों के नाम बोल गया है—

मच्छ-सम थरथरात, उग्रत दर कच्छ भाल,
बावन से छलबें को निश्चय कर हेरे हैं;
सांत न निहारें हिया, फाड़े बारह-सम,
अड़बें को परशुराम, फिरत न फेरे हैं।
तीक्ष्ण नरसिंह कदहों, बोध अवलोकिबे को,
तारबे को राघव, यह ग्वाल चित मेरे हैं;
मोहिबे को मोहन, कलंक बिन नि:कलंक,
दसों अवतार कदहों प्यारी! नयन तेरे हैं।

हिंदुओं का साहित्य तो ज्ञान और भक्ति के समर्पण हो चुका है। भगवत्प्रीति अपने सारे चमत्कार दिखाती है।

Religion present in all its phases.

अर्थ—धर्म अपने प्रत्येक स्वरूप में विद्यमान है।

राग-विद्या क्यों प्यारी लगने लगी ?—क्योंकि नारद, याज्ञवल्क्य, गौरांग आदि मुनि लोगों ने यह साक्षी दे दी कि सामवेद के गायन में उपयोगी होने के अतिरिक्त वैसे भी भजन-संकीर्तन मन को वश में लाने का सरल साधन हो सकता है। हिंदुओं के यहाँ नाचने का कुछ मूल्य नहीं, किंतु प्रेम के जोर से राम के आगे नाचनेवाला भी राम की भाँति पूजा जाता है—

नाचना जो चाहे, तो नाच रघुनाथ आगे,
गाया जो चाहे, तो गोविंद गुण गाओ जी ;
भागना जो चाहे, तो भाग मंद कामों से,
आया जो चाहे, तो राम-शरण आओ जी।

शरीर को मोड़ना-तोड़ना, हड्डियों को ढीला करना, शरीर को तपाना, मांस को सुखाना अर्थात् हठयोग के आसन, वज्रमुद्रा आदि भी स्वीकार हैं, क्योंकि यह सुन लिया है कि सत्य-धाम तक पहुँचानेवाली सीढ़ी का हठयोग भी एक डंडा है। किंतु हाय! चाँदी-सोना जिसका नाम सुनकर सादे लोगों की आँखें खुल जाती हैं, जिसके लिये घरों में खटपट और देशों में कोलाहल मचता है, वह चाँदी-सोना हिंदुओं के यहाँ सच्चे आनंद का देनेवाला सिद्ध नहीं हुआ। विद्वान् ब्राह्मणों ने सिद्ध कर दिया कि 'त्याग', 'त्याग', निःसन्देह 'त्याग' आनंद और मुक्ति का साधन है। सोलह आने का रुपया धोखा खाए हुए मूर्खों को मानो सोलह कला-युक्त भगवान् से भी अधिक सम्मान योग्य हो, किंतु संसार का टका-पैसा सच्ची राजधानी में व्यर्थ है,

वरन् अप्रचलित और खोटे सिक्कों-जैसा है। नीचे के शब्द एक सच्चे हिंदू के मन की दशा दिखाते हैं—

जैसे भूखे प्रीति अनाज, तृषावंत जल संती काज।
जैसे मूढ़ कुटुंबपरायण, तैसे नामे प्रीति नारायण॥
नामे प्रीति नारायण लागी, सहज सुभाव भयो वैरागी।
जैसे कामी कामिनी प्यारी, वैसे नामे नाम मुरारी॥

भूखे को रोटी, प्यासे को पानी, मा को बच्चा, विषयी को स्त्री वैसी प्यारी नहीं होती, जैसी सच्चे हिंदू को सत्यात्मा (सत्य वस्तु) प्यारी होती है।

यारड़े दा सानूँ सत्थर चंगेरा, भट वे खेड़ियाँ दा रहना।
सूल सुराही खंजर प्याला, विनग कसावाँ दे सहना॥

तात्पर्य—यदि शोक-भवन-कुंज (श्मशान) में सच्चा प्यारा नहीं भूलता, तो वह स्वीकार है, किंतु वह राजभवन अस्वीकार है, जो प्यारे को याद से विसार देता है। रक्त निकालनेवाले नोकदार काँटे, मदिरा की सुराही की भाँति प्रिय हैं, और खंजर प्याले के समान प्यारा है, वधिक के कुल्हाड़े सिर पर बरसने अंगीकार हैं, इस शर्त पर कि हमारे प्रेम-भाजन की दूरी (पृथक्ता) न हो।

ऐसी उच्च दृष्टिवाले भारतवासियों के निकट सोने-चाँदी की भला क्या पूछ ? सोने-चाँदी के काम को तुच्छ न समझते तो और क्या ? सुनारों को शूद्र-पेशा माना गया। जंगलों में नंगे शरीर रहकर और फल-फूल खाकर अध्यात्म-विद्या में समस्त जीवन व्यतीत करनेवाले ब्राह्मणों को कपड़ा, ताँबा, लोहा, लकड़ी, मिट्टी आदि के व्यापार बिलकुल निरर्थक, निस्सार और बच्चों के खेल क्योंकर न मालूम होते ?

चित्रं वटतरोर्मूले शिष्या वृद्धा गुरुर्युवा।
गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यास्च छिन्नसंशयाः॥

अर्थ—वट के पेड़ के नीचे बड़ी-बड़ी आयुवाले जिज्ञासु एकत्र थे। गुरु छोटी आयु का था। विचित्रता यह कि गुरु ने जिह्वा नहीं हिलाई, पर सबके संदेह निवृत्त कर दिए। यह कैसा व्याख्यान है?—

सुअ़ल्लिम कीस्त? आ़रिफ़, दामने-सहरा दबिस्तानश।
सबक़? ख़ामोशी व लरजाँ दिलम तिफ़्ले-सबक़ख़्वानश॥

अर्थ—यहाँ गुरु कौन है? ब्रह्मज्ञानी, और जंगल का दामन उसकी चटशाला। इस चटशाला में पाठ क्या है? मौनता, और मेरा काँपता हुआ हृदय उसके यहाँ पाठ पढ़नेवाला लड़का है। इस परम शांति और सच्चे आनंद के खोजनेवालो! परम सुख के अभिलाषियों को शारीरिक और मानसिक या वैषयिक आवश्यकताओं से संबंध केवल नाम-मात्र का था।

अतः दरज़ी, ठठेरा, लोहार, बढ़ई, कुम्हार, इन सबको भी शूद्र-पेशा कहा गया। इसके यह अर्थ नहीं कि इमारत आदि का काम उन दिनों बहुत भद्दा होता था। इस कला में उन लोगों की योग्यता के प्रमाण बहुतायत से मिलते हैं। पर ब्रह्मविद्या के साथ इन व्यवसायियों का सीधा संबंध (direct relation) न होने के कारण शूद्रों ही की श्रेणी में वे गिने गये।

भारतवासियो! ज़रा आँखें खोलकर देखो, तुम कहाँ आकर गिरे। आज ब्राह्मणों के बालक (महर्षि-कुमार) ईंट, चूना, लकड़ी, लोहे की विद्या (इंजीनियरिंग) को उस (सिंहासन) पर स्थान दे रहे हैं, जिसको ब्रह्मविद्या शोभित करती थी; कोहेनूर (अनमोल हीरे) को, मुकुट से उतारकर उसके स्थान पर कोयला रख रहे हैं। हाय! तुम अपने सिर को आइने में तो देखते।

ऐ पाश्चात्य विद्याओं और कलाओं की गंध से हक्का-बक्का हो जानेवाले मेरे प्यारो! तुम्हें राम कहाँ तक बताए। तुम स्वयं ज़रा होश में आकर ग़ौर करो, तो

पता लगे कि ये सब रेलें, तारें, तोपें, बंदूकें, स्टीम-इंजिन, कारखाने आदि जिनकी प्रशंसा में गद्गद हो रहे हो, एक इंच-भर भी पिछले लोगों की अपेक्षा आजकल के लोगों को अधिक आनंद नहीं दे रहे। सब ऊपरी हाहा-हूहू (vanity) ही है।

राम यह नहीं कहता कि पिछले समय का बहलियों और एक्कों को फिर नए सिरे से प्रचलित करो, और धुएँ वा बिजली की कलों को भारतवर्ष में पग न रखने दो। उसका म तव्य यह है कि इन नवीन पाहुनों को उचित मूल्य और मान पर लो। वह बात न हो कि घोड़ा मोल लिया था अपनी सवारी के लिये, उलटे हमको ही गिराकर वह रौंदने लग पड़े। बिल्ली के बदले पवित्र माता (ब्रह्म-विद्या) को न बेच दो। एक (अनावश्यक) दिल्लगी के खेल में अपने आत्मा और प्राण की बाज़ी मत हार दो। सुख की खोज में सुख के धुर्रे मत उड़ा दो। वर्षा-ऋतु में पपीहा पानी की बूँद के लिये अधीर होकर ऊपर को उड़ता है, किंतु बरसते जल में प्यासा रहता है, पानी की खोज ही पानी से वंचित रखती है। इस बरसाती जानवर-वाली दशा मत होने दो। रीछ की भाँति मित्र के मुँह से मक्खी उड़ाते-उड़ाते मित्र को थप्पड़ से प्राण-हीन मत करो।

अंकगणित में एक भिन्न (fraction) के अंश (numerator) को बढ़ा देने से रक़म का मूल्य बढ़ जाता है; किंतु यदि साथ ही हर (denominator) भी उसी निष्पत्ति (ratio वा संख्या) से बढ़ जाय, तो मूल्य वैसा का वैसा ही रहता है। जैसे ३/४ १२/१६ १५/२० ७५/१०० ३७५/५००। यही दशा पाश्चात्य कलाओं और आविष्कारों की है। वे अंश (विषय-भोग की सामग्री) को बढ़ाने की चिंता में हैं, और इस उपाय से 'आनंद' की राशि को अधिक किया चाहते हैं—

$$\text{आनंद} = \frac{\text{विषय-भोग की सामग्री}}{\text{तृष्णाओं का समुदाय}}$$

भारतवासियो! उनका अनुकरण तो करने लगे हो; किंतु देखना कि अंश (विषय-भोग की सामग्री) को बढ़ाते समय हर (तृष्णाओं का समुदाय) उसी निष्पत्ति (संख्या) से नहीं, वरन् उससे भी अधिक संख्या से बढ़ा जाता है। जैसे नशेबाज़ आनंद के लिये इधर अफ़ीम या शराब के सेवन को नित्यप्रति बढ़ाता जाता है, उधर नशे की तृष्णा भी वैसे ही अधिक होती जाती है। जो आनंद आरंभ में बहुत थोड़े परिमाण में प्राप्त होता था, वह आनंद अब अधिक परिमाण मे नहीं मिलता। आयु व्यर्थ में नष्ट हो जाती है। अफ़ीम या शराब का मुहताज बिना मतलब बनना पड़ता है। यों भी तो देखो, अंश को कहाँ तक बढ़ा लोगे। भोग के सामान कहाँ तक एकत्र करोगे। बाहरी सामान अपरिमित कभी नहीं हो सकते, सदैव भिन्न (fraction) कमी में ही रहेगी। इसी आनंद की राशि को बढ़ाने के लिये हिन्दुओं की शैली यह है कि तृष्णा को, जो हर के स्थान पर है, कम करना आरंभ कर दो। तृष्णा ज्यों-ज्यों सिमटती जायगी, आनंद बढ़ता जायगा। जब बिलकुल शून्य हो जायगी, तो अंश चाहे कुछ हो, चाहे न हो, समस्त राशि अनंत हो जायगी। और यह तृष्णा (हर) केवल ज्ञान के द्वारा ही मिट सकती है, और किसी उपाय से नहीं।

एक मनुष्य ने लैला-मजनूँ की कहानी पढ़ी। पढ़ते ही मजनूँ बनने की इच्छा उठ आई। अपनी स्त्री को त्यागकर लैला का एक चित्र बना लिया और छाती से लगाए फिरना आरंभ कर दिया। अब मजनूँ वाला प्रेम तो चित्त में था नहीं, पर हाँ, मजनूँ का प्रेम-पात्र तत्काल ले लिया। धिक्कार है ऐसे

मजनूँ बनने पर। न इधर के रहे, न उधर के रहे। आजकल के भारतवासी! यदि तुमको अँगरेज़ों का अनुकरण करना ही स्वीकार है, तो मेरे प्यारो! उनका प्रेम (साहस, दृढ़ता, एकता) ले लो, उनका जुनूँ (सनक) ग्रहण कर लो, किंतु उनकी प्रेम-पात्री लैला (संसार के नाशवान् भोग-विलासों) को मत ग्रहण करो। मजनूँ और फ़रेफ़्ता (अनुरक्त) बनना हो, तो अपने घर की अति तेजोमयी ब्रह्मविद्या (आत्मज्ञान) पर बनो। अपने पहलू से चन्द्रमुखी प्रिया को उठाकर संसाररूपी बुढ़िया के चित्र पर दीवाने और आसक्त होना तुम्हें कलंक लगायगा। हाँ, इस संसाररूपी बुढ़िया को अपनी चंद्रकांता (ब्रह्मविद्या) की एक तुच्छ दासी बना लेने में कुछ हर्ज नहीं है।

दीन गँवाया दुनी से, दुनी न चल्ली साथ।
पैर कुल्हाड़ा मारिया मूरख अपने हाथ॥
स्वगृहे पायसं त्यक्त्वा भिक्षामटति दुर्मतिः।

अर्थ—अपने घर की मलाई त्यागकर भीख माँगने को मूर्ख के अतिरिक्त और कोई नहीं जाता।

इतिहास साक्षी देता है कि शक्ति से भर देनेवाली ब्रह्मविद्या का भारतवासियों ने जब कभी तिरस्कार किया, तभी नीचा देखा; अपने स्वरूप के महत्त्व को भूलकर हिंदू लोग जब कभी स्वार्थपरता के वश में पड़े, मरे।

अभी समय है, सँभल जाओ, शरीर के कीचड़ से निकल आओ। अपने शुद्ध स्वरूप में डेरे लगाओ। शिवोऽहं शिवोऽहं की ध्वनि उच्च होने दो, और आनंद के कैलास पर पवित्र ॐ का फरहरा पताका) लहराने दो।

हरि सँग व्याह रचो रँग रँगना।
आओ रे बम्हना! बैठो मोरे अँगना।
खोलो रे पोथी, विचारो मोरे लगना॥

गाओ रे सोहले, देखो शुभ सगुना।
हरि सँग[1] गमन, हरी सँग सँग[2] ना[3] ॥

अद्वैत सिद्धांत (भगवान् शंकर) के अनुसार आत्मा में विकास या संकोच (संवृद्धि वा प्रतिवृद्धि) नहीं हो सकता, वरन् केवल माया में होता है।

जैसे घर की चहारदीवारी से उत्पन्न अंधकार उसी घर को छिपा देता है, जैसे सूर्य ही की तीक्ष्ण प्रभा सूर्य को देखने नहीं देती, जैसे नदी से उत्पन्न फेन नदी को आवृत कर लेता है, जैसे रज्जु ही में कल्पित सर्प-आकृति रज्जु को खपा लेती है; वैसे ही ब्रह्म में (स्वरूपाध्यास से) कल्पित माया (नाम-रूप) ब्रह्म को लुप्त कर देती है।

हुजूमे-जलवा हम यक्सर हिजाबे-जलवा हस्त ईं जा।
नक़ाबे-नेस्त दरिया रा मगर तूफ़ाने-उरयानी ॥

अर्थ—यहाँ ज्योति की अधिकता ही ज्योति का आवरण है; नदी को कोई परदा नहीं, वरन् उसके नंगेपन की आँधी (घटा) ही परदा है।

फिर जैसे नदी-जल फेन के बुर्क़े (परदे) में से शब्दायमान होता है, जैसे सूर्य मेघावरण को भासमान करके आवरण के बीच में से अपनी कांति की प्रभा विकीर्ण करता है, जैसे चंद्रमा अपने (ग्रहण के) घूँघट में से तेजोमय मुख को दिखाता है, जैसे रज्जु कल्पित सर्प में अपनी लम्बाई और मोटाई प्रवेश करती है, जैसे दीपक की ज्योति काँच के आवरण (चिमनी) के भीतर से आँखें लड़ाती है (संसर्गाध्यास); ऐसे ही ब्रह्म माया के आवरण में अपना तेज प्रविष्ट करता है, अर्थात् नाम-रूप संसार में सच्चिदानंद स्वरूप से विद्यमान होता है। जो वस्तु संसार में दृश्यमान होती है, उसके नाम-रूप की

१ साथ। २ लज्जा। ३ नहीं, अर्थात् हरि के साथ कोई लज्जा नहीं।

तह में वास्तविक सत्ता सच्चिदानंद की ही है। अद्वैत-सिद्धान्त के अनुसार इवोल्यूशन (विकास) इस माया ही में है। आत्मा में न्यूनाधिक (उन्नति-अवनति) कैसी ?

माया

निशांधकार की काली चादर छा रही है। तारे जगमगा रहे हैं। किसी की मजाल (शक्ति) क्या कि इनकी संख्या का अनुमान लगा सके ? वाह री अनेकता ! एक ही पलंग पर एक दूसरे की गर्दन में बाहें डाले दूल्हा-दुलहिन आराम में पड़े हैं। किन्तु दूल्हा तो लाहौर के टाउनहाल में परीक्षा के पर्चे लिख रहा है, और दुलहिन अपनी देवरानी या जेठानी से गिला-उलहना के लेन-देन में लगी है। ए लो, लड़ाई-झगड़ा आरंभ हो गया ! चुप रह बीबी ! चुप रह। तेरा पतिदेव परीक्षा के पर्चे लिख रहा है, कोलाहल बंद कर। उसको (disturb) डिस्टर्ब मत कर, अर्थात् उसका हर्ज मत कर। ए लो ! वह चौंक पड़ा। नींद उचाट हो गई। कैसी परीक्षा ? किसका टाउनहाल ? यहाँ तो सुकुमारी है और आप है। कमरे के बाहर आकर देखा, तो कोहरे-ही-कोहरे के ढेर लग रहे हैं। हाथ फैलाया नहीं सूझता। प्रभात का पेश-खेमा (आगमन का चिह्न) अभी दृष्टि-गोचर नहीं होता। अरे शुक्र ! तेरा नृत्य-गायन क्या हुआ ? तुम्हारे सखा और सहचर (तारे) शादी को भूल बैठे ?

दूल्हाराम ने नौकर को पुकारा। उत्तर न मिला। निकट जाकर देखा, तो नींद में खर्राटे भर रहा है। हमारे नवयुवक की छोटी सी छाती में हलचल मच गई। मन में एक क्षणिक आवेश उत्पन्न हो गया। मुखमंडल भयावनी निशा से भी अधिक भयानक बन गया। नौकर को अशिष्टता से जगाया और कान खींचकर ताकीद की कि अब आँख न झपके, हुशियार (सावधान) रहे, रात बड़ी डरावनी और भयानक है,

हर प्रकार का भय है, इत्यादि। इधर नौकर जगा और नाख़ुश हुआ। उधर मालिकराम पढ़ने के कमरे (study room) में घुसे। लैम्प रौशन करके (Bain's moral Science) बेन साहबकृत नैतिक विज्ञान पढ़ने लगे। कोई आधा पृष्ठ पढ़ा होगा कि आँख लग गई। पैर भूमि पर, कमर कुरसी पर और सिर पुस्तक के ऊपर मेज़ पर रक्खे बेहोश पड़े हैं। इनको तो नींद की गरम गोद में छोड़ो। अब बाहर ठिठुरते हुए नौकर की सुध लो। वह बेचारा बड़े झगड़े-झंझट में पड़ा है, बरन् लड़ाई-भिड़ाई दंगे में लगा है। किससे लड़ रहा है? क्या चोर घर में आ घुसे? नहीं। स्वप्न के संग्राम पर अड़ा है। नींद से ज़ोर-आज़माई (बल-परीक्षा) कर रहा है। आँखें मलता है, जम्हाइयाँ आती हैं, अँगड़ाइयाँ लेता है। हाय! कब पौ फटेगी, कब तड़का होगा, कब प्रभात मुँह दिखायेगा? बेर-बेर आकाश को तकता है। रात कटती ही नहीं। कभी टहलना आरंभ करता है, फिर मारे ठंड के चारपाई की शरण लेता है। हाँ, ख़ूब सूझी। गाना आरंभ करो। समय जान न पड़ेगा, सातों स्वर मिली हुई ध्वनि से गाने लगा।

नींद तोहि बेचोंगी आली, जे कोइ गाहक होय।
आए थे मोहना, फिर गए अँगना, मैं बैरन रही सोय॥
सूरदास प्रभु अब जो मिलोगे राखूँगी नैन समोय।
नींद तोहि बेचोंगी आली॥

गाने की आवाज़ सुनकर कमरे के भीतर बाबूजी जाग पड़े, और पढ़ने लगे। नौकर लहरा-लहराकर गा रहा है, अपनी ध्वनि में मस्त हो रहा है, सबेरे और शाम को बिलकुल भूल बैठा है।

अस्तु। उसे भूलने दो, किन्तु प्यारे पाठको! हम तो (हंस)

सूर्य भगवान् का शुभागमन नहीं बिसारेंगे। ताज़गी (प्रफुल्लता) देनेवाली रोशनी चुपचाप इस सौंदर्य के साथ सूर्य से भूमि पर गिरती जाती है, जैसे एक ऊँचे उड़नेवाले हंस का सफ़ेद पर झड़ा हुआ रह-रहकर धीरे-धीरे भूमि से आ लगता है। इस विचार के विरुद्ध जो लाँगफ़ेलो (Longfellow) ने निम्न-लिखित पद्यों में प्रकट किया है—

The day is done and the darkness
Falls from the wings of night
As a feather is wafted downward
From an eagle in his flight.

अर्थ—दिन बीत गया, अंधकार रात के बाहुओं से इस प्रकार बरसने (झरने या गिरने) लगा, जैसे उड़ते हुए हंस का पर नीचे गिरता है।

प्रभातकालीन कुक्कुट (मुर्ग़) से अपने हृदय और नेत्रों के तेजदाता के आगमन का संवाद सुनकर अगाध आनंद के कारण वसुधा के आँसू (ओस) निकल पड़े हैं, अथवा यों कहो कि हंस (सूर्य) के भोजन-निमित्त मोतियों के थाल भरकर प्रकृति रूप दुलहिन भेंट कर रही है। यह कुहरा और जल-वाष्प है कि दर्शन की प्रतीक्षा में वसुंधरा अपने हृदय का बुख़ार (जोश) निकाल रही है ? किन्तु ये गिले-उलहनों के ढेर तो प्यारे का ज्योतिर्मय स्वरूप देखने से पहले ही दूर हो जाते हैं।

दिल ढेर बुख़ारों के लगाता है क़फ़ा में।
उड़ जाते हैं ख़ुरशेद-सा जब रू नज़र आया॥

गुफ़्ता बूदम कि चू आई ग़मे-दिल बा तो बिगोयम् ;
चे कुनम कि ग़म अज़ दिल बिरवद चो तो आई ॥ १ ॥
उमरे - शुदाः रोजे - वस्ख़त सेर नदीदेम ।
ज़ीरा कि तो मे आई व मन मेरवम अज़ होश ॥ २ ॥

अर्थ—मैंने कहा था कि जब तू आयगा, तो हृदय का दुखड़ा तुझसे वर्णन करूँगा, मगर क्या करूँ कि जब तू आता है, तो मैं बेहोश हो जाता हूँ।

कहने देती नहीं कुछ मुँह से मोहब्बत तेरी।
लब पर रह जाती है आ आ के शिकायत तेरी॥
याद सब कुछ थे हमें हिज्र के सदमे ज़ालिम।
भूल जाता हूँ मगर देख के सूरत तेरी॥

गगन-मंडल का महारथी (सूर्य) किरणों के भाले हाथ में लिए अपने सुनहरे घोड़े को उड़ाता चला आता है। यह ख़बर पाते ही अंधकार की सेना के मनचले वीरों ने एकत्र होकर जी तोड़ संग्राम (despesate struggle) पर कमर बाँधी है। सर्दी समस्त रात्रि की अपेक्षा अधिक हो गई, नींद और आलस्य ने यद्यपि रात-भर कोई क़सर न उठा रक्खी थी, किंतु प्रभात के समय टैक्स वसूल करना इस बहानेबाज़ी से आरंभ किया कि संसार में कोई अमीर बचने न पाया। धुंध के दल-बादल ने अँधेरे की सहायता को आकर बड़े घमंड से डेरे डाल दिए। ए लो, बादल भी सारे उमंग के माथे में बल डाले आ उपस्थित हुए, आँखें दिखाने लगे और गरज-गरजकर डराने लगे। रात के आरंभ में क्या ही मनलुभावनी चाँदनी (उजियारी) छिटक रही थी। अब तह-दर-तह से अँधियारी छा रही है।

रिमझिम रिमझिम मेहा बरसे आ रे! बादर कारे।

आलस्य, अंधकार और धुंध आदि की सेनाएँ सूर्य के महत्त्व को नष्ट करने पर कैसी तुली हुई हैं! क्या सचमुच सूर्य के रथ को रोक लेंगी? यदि ऐसा हो गया, तो संसार की क्या दशा होगी! ईश्वर करे, सूर्य की जय हो! प्यारे! घबराओ नहीं, कहाँ तो अंधकार के अधिकारिवर्ग और कहाँ सूर्य! सामना ही क्या

है ? रातरानी के जंगी लाट लाख जोर मारें, सूर्य का बाल बाँका नहीं कर सकते। चना उछल-उछलकर भाड़ को नहीं फोड़ सकता। सूर्य और छुपा रहे? ख्याल में भी नहीं आ सकता। प्रकाशमान सूर्य और विरोध से उसका विगाड़ हो! बिलकुल निरर्थक है।

वह देखना! मेघों की तह-दर-तह परदों को काटकर कोहरे के कवच को चीरकर उसकी किरणों की कृपाण भूमि के वक्षःस्थल को लाल करने लगी। विजयी द्यौ-सम्राट् (सूर्य भगवान्) विराजमान हुआ।

नवीन रोशनी (ज्ञान) वालो! स्मरण रक्खो, अज्ञान की काली रात व्यभिचार का कारण होती है (Deeds of darkness are committed in the dark), अंधकार (मूढ़ता) के काम (व्यभिचारादि) अंधकार (मूढ़ता) में ही किए जाते हैं, और जब इसका अंत आने लगता है, तो बला का लड़ाई-टंटा करवाती है। किंतु यह लड़ाई-झगड़ा जाज्वल्यमान ज्योति (सूर्य) की अभिवृद्धि का कारण कदापि नहीं है। सूर्य को तो निकलना ही निकलना है, रुक नहीं सकता। रामानुज के मतानुसार तुम्हारे भीतर के सूर्य (हंस, आत्मा) ने सुस्ती की रुकावट को चीर-फाड़ और अज्ञान के परदों को छिन्न-भिन्न करके अंततः प्रकट होना ही है, इससे जीवात्मा का वेहद (असंख्य) भरा हुआ वल इवोल्यूशन (विकास) का कारण है। इस स्वाभाविक गुण के कारण से चींटी, बिच्छू, साँप, बिल्ली, बंदर आदि शरीरों की मंजिलों (योनियों) को पार करता हुआ यही जीवात्मा मानव-शरीर तक उन्नति पाता है, और यही आत्मा अपने स्वाभाविक प्रकाश के बल से अज्ञान के अंधकार को नाश करके ज्ञानवान् के रूप में सूर्य को इस प्रकार संबोधित करता है।

पूषन्नेकर्षेयम सूर्य्य प्राजापत्य व्यूहरश्मीन् समूह।

तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि योऽसावसौ
पुरुषः सोऽहमस्मि ॥ (ईशावास्योपनिषद् मं० १६)

अर्थ—हे पालन करनेवाले, एकर्षि (अकेला चलनेवाले), यम (न्यायी) और सृष्टि में सबसे श्रेष्ठ सूर्य ! हटा दे अपनी किरणों को, सँभाल ले अपने प्रकाश को, जिससे मैं तेरा सौम्य स्वरूप देखूँ तो सही। (अहा !) जो तेरा स्वरूप है, वही मैं हूँ।

जो तू है, सो मैं हूँ, जो मैं हूँ, सो तू है; वरन् मैं ही मैं हूँ, तू कहाँ है ?

ख़ाके-पस्ती से अगर दामन तेरा हमदम नहीं।
यह फ़ज़ीलत का निशाँ ऐ नैयरे-आज़म नहीं॥
आह ! तू अपनी तजल्ली का अगर मरहम नहीं।
हमसरे-यक ज़र्रए-ख़ाके-दरे-आदम नहीं॥
नूरे-मसजूदे-मलक ज़ेबे-तमाशा ही रहा।
तू सदा मिन्नत पिज़ीरे-सुबह फ़रदा ही रहा॥

इवोल्यूशन (विकास) के विषय भगवान् शंकर का श्रीरामानुज से इतना ही अंतर है, जितना ज्योतिष-शास्त्र में सूर्यकेंद्रक (Heliocentric) और भूकेंद्रक (Geocentric) के मध्य में है। जहाँ तक व्यवहार का संबंध है, भगवान् शंकर के यहाँ श्रीरामानुजवाली समस्त व्याख्या स्थिर रक्खी गई है, किंतु वास्तविक तत्त्व को छिपाए नहीं रक्खा, और बहुत ही सुस्पष्ट ढंग पर दिखाया है कि जैसे सूर्य रजनी-रूपी मुश्क (कपूर) को पलायित करता उदयाचल से मध्याकाश तक विकास करता और राशि-चक्रों में उन्नति करता प्रतीत होता है, किंतु वस्तुतः न कभी उदित होता है न अस्त, निकट आता है, न दूर जाता है, हिलता है, न जुलता है, सदा अपने तेज में एकसाँ आनंदित रहता है; वैसे ही वस्तुतः आत्मा कभी घटता है न बढ़ता है, उसमें इवोल्यूशन है न इनवोल्यूशन, उत्कर्ष है न पतन,

उन्नति है न अवनति, सदा एकरस अपनी महिमा में मस्त पड़ा है, यद्यपि अंधकार की पंक्तियों को तोड़ता और अज्ञान की सेना को पराजित करके प्रकाशमान दिन अर्थात् अपना सुंदर राज्य चारों ओर फैलाता मालूम देता है, किंतु यह इवोल्यूशन केवल माया में है। घूम तो रही है भूमि और गति समझी जा रही है सूर्य की; उठ तो रहा है प्राण प्यारे के मुख का परदा, किंतु विस्मित और प्रेम-विह्वल (आशिक़) की भावना में अपने प्यारे का चंद्र-मुख बढ़ और फैल रहा है; दौड़ तो रहा है मेघों का आवरण, किंतु बच्चे उसे चंद्रमा का चलना समझकर घंटों पड़े घूरते हैं—"वह देखो, चंद्रमा किस तीव्र वेग से दौड़ा जा रहा है", (तालियाँ बजाकर) अहाहा! वह मेघों से निकल आया! वह बादलों से निकल आया!!—

रुख़े-पुर ज़िया के नज़ारे ने मुझे बेदे-मजनूँ बना दिया ;
तेरे सदक़े सदक़े मैं नाज़नीं तूने बुर्क़ा मुँह से उठा दिया ।

यथा चंद्रिकाणां जले चंचलत्वं ।
तथा चंचलत्वं तवापीह विष्णो ॥ (शंकरसूत्र)

तात्पर्य—जैसे वास्तव में नदी की तरंगें तो कूदती-फाँदती, दौड़ती-भागती चली जाती हैं, किंतु जान पड़ता है कि चंद्रमा नाचता उछलता है; वैसे ही इवोल्यूशन (विकास) और उदय आदि तो माया में हैं, किंतु भूल से आत्मा में कल्पित होते हैं।

पानी ही में बुलबुले तैयार होते और नाश होते हैं। उनका दिखाई देना और रंग दिखाना यद्यपि सब प्रकाश ही प्रकाश है, किंतु फिर भी प्रकाश इन परिवर्तनों और रूपांतरों से पृथक् है।

हुबाब वार ज़ि बहरे-तमाशा आमदाएम ।
कि सर कशेम व निगाहे कुनेम व आब शवेम ॥

अर्थ—बुलबुले की भाँति हम तमाशा देखने आए हैं,

जिससे कि सिर ऊँचा करें, देखें और फिर वही पानी हो जायँ।

जीम—जाओना आओना नहीं ओथे। कोहाँ वाँग हमेश अडोल है जी॥
जिवें बद्लाँ दे चले चंद चलदा। लग्गे बालकाँ नूँ एह भूल है जी॥
चले देह इंद्रिय मन प्राण आदिक। ओह देखनेहार अडोल है जी॥
बुल्हाशाह सँभाल खुशहाल हूजे। ऐन आरिफा दा एहो बोल है जी॥

आत्मा के असंग होने को सांख्य-शास्त्र ने भी बड़े जोर से स्वीकार किया है—

"असंगोऽयं पुरुष इति" (सांख्यदर्शन १—१५)

अर्थ—यह पुरुष (आत्मा) संग (संबंध) रहित है।

शीन—शुबहा नाहीं ज़रा इक इसमें। सदा अपना आप सुरूप है जी॥
नहीं ज्ञान-अज्ञान दी ठौर ओथे। कहाँ सूर में छाँव और धूप है जी॥
पड़ा सेज के माँह है सही सोया। कूड़ स्वप्न का रंक और भूप है जी॥
बुल्हाशाह सँभाल जद मूल देख्या। ठौर-ठौर में वही अनूप है जी॥
बुल्हाशाह तूँ भूप अचल बैठा। तेरे आगे प्रकृति का नाच है जी॥

आत्मा के असंग होने और केवल प्रकृति के विकास और उन्नति पाने को पंडित ईश्वरकृष्ण ने आश्चर्य-जनक कवियों-जैसी सूक्ष्म विचारणा के साथ अपने प्रामाणिक ग्रंथ सांख्य-तत्त्वकारिका में दिखाया है—

रंगस्य दर्शयित्वा निवर्त्तते नर्त्तकी यथा नृत्यात्।
पुरुषस्य तथात्मानं प्रकाश्य विनिवर्तते प्रकृतिः॥ ५९॥

(कारिका)

अर्थ—बहुरूपिये लोगों का नियम है कि भेष बदलकर अमीरों को धोका देते हैं, किंतु बदले हुए वस्त्र और वेश के नीचे यह कामना उनके मन में अत्यंत प्रबल होती है कि तमाशा दिखाते ही जिस प्रकार बन पड़े, अपना असली रूप भी खोल दें। निदान यह देखकर कि अब चकमा चल गया, मंत्र काम

कर गया, चट प्रणाम करते हैं, और इस प्रकार आशीर्वाद देते हैं—"बड़े बड़े इक़बाल! अटल प्रताप! राज-पाट बना रहे, जोड़ों-जोड़ों की खैर (कुशल)! परमेश्वर बनाय रक्खे! इत्यादि।" यही दशा प्रकृति की है। पुरुष को धोका तो देती है, किंतु जी में यह ठाने है कि अपना आप छिपाया तो सही, अब ज्यों-त्यों करके दिखा भी दूँ, भेद खोल ही दूँ।

हाँ सच है, चींटी, बंदर आदि के शरीरों में यदि पुरुष ने नीचा देखा और दुःख पाया, तो प्रकृति के कारण; मनुष्य का चोला पहना, तो प्रकृति के कारण; ज्ञानवान कहलाया, तो प्रकृति के कारण; जब बंध और नीच दास होने के विचार का कुफ़र (भ्रम) टूटा और यह जान पड़ा कि 'मैं पृथक् हूँ, पवित्र हूँ, असंग हूँ, निर्लेप हूँ, स्वतंत्र हूँ'।—

'असंगोऽहमसंगोऽहमसंगोऽहं पुनः पुनः।'

तो यह भी प्रकृति ही के कारण।

इस ज्ञान के प्राप्त होने पर प्रकृति पुरुष को छोड़कर अपनी राह लेती है, और पुरुष आनंदघन अपने शुद्ध स्वरूप में रह जाता है, यही मुक्ति है। तात्पर्य यह कि प्रकृति सब कौतुक दिखा आप ही हट जाती है। ईश्वर करे, इस प्रकृति-पुरुष के वियोग की घड़ी शीघ्र प्राप्त हो। यह योगशास्त्र का उद्देश्य है।

उपर्युक्त कारिका का शब्दार्थ यह है—"जैसे कंचनी सभा में जब पूरा-पूरा नाच दिखा चुकती है, तो अपने आप ही हट जाती है, वैसे ही प्रकृति जब अपने आपको पुरुष के आगे प्रकट कर देती है, तब आप ही छोड़ जाती है।"

ठगिनी आस्तीन का साँप बनकर किसी के साथ जा रही हो, तो कपट-भरी बातों से बहुतेरा मन लुभाने का प्रयत्न करती है, पर जब उसे यह ज्ञात हो जाय कि इन्हें मेरे

ठगिनी होने का पता लग गया है, तो गधे के सींग की तरह लुप्त हो जाती है। ठीक इसी प्रकार प्रकृति (दुनिया) की क़लई खुल जाने पर पुरुष को तत्काल छुटकारा मिल जाता है।

अब नहीं मालूम हमारे महात्मा पं० ईश्वरकृष्णजी महाराज किस प्रकार इस व्यभिचारिणी वेश्या (प्रकृति) के खेलों की फ़ीस लेकर उसके वकील बन बैठे। आप कहते हैं—

नाना विधैरुपायैरुपकारिण्यनुपकारिणः पुंसः।
गुणवत्यगुणस्य सतस्तस्यार्थमपार्थं कं चरति ॥ ६० ॥

अर्थ—प्रकृति तो पुरुष की भाँति-भाँति की सेवाएँ करती है, किंतु उसके बदले में पुरुष कोई उपकार नहीं करता। प्रकृति गुणोंवाली है, पुरुष निर्गुण है, तभी तो प्रकृति की प्रशंसित गुणशीलता देखो, कृतघ्न (पुरुष) के पक्ष में कैसी यत्नवान् और तत्पर है। इस विषय को एक और पंडितजी महाराज ने अद्वितीय रीति से हिंदी-पद्य में पिरो दिया है। यद्यपि राम को आश्चर्य होता है कि वृद्ध पंडितों के यहाँ स्त्री का कुछ ऐसा साम्राज्य क्योंकर आ गया कि स्त्री (प्रकृति) के गीत गाते वे थकते ही नहीं। बात-बात में वहूजी को प्रधान बना दिया।

लखो यह दूल्हा दुलहिन कैसे।
अति बेमेल विचित्र भाव के कहूँ लखे नहिं ऐसे ॥
दुलहिन अति ही सुघर सुहावन जोवन उन एसे।
दूल्हा याहि लखत "चुप" को ह्वै बैठो उजबक जैसे ॥
दुलहिन अतिगुणवंत चतुर त्यों हाव-भाव हो वैसे।
दूल्हा गुण की बात न जाने पूरो गोबर-गणेसे ॥
सबकी एक दुल्हिन बहु दुल्हा, पर सबरे एक ऐसे।
दुल्हिन ही बहु नाचत गावत, वे सब जैसे के तैसे ॥

राम केवल इतना ही पूछता है कि महाराज वकील साहब! "मियाँ-बीबी राज़ी तो क्या करेगा क़ाज़ी।" जब प्रकृति स्वयं

अपना नाच-गाना, अपनी अठखेलियाँ, अपना सभी कुछ पुरुष की एक दृष्टिपात पर बेच देने को राज़ी है, तो आप कौन हैं उनकी सिफ़ारिश करनेवाले ? तलवे न बुलाए, वकील बन के आए (Unsolicited solicitor)। बस भूल से स्वतः पड़ जानेवाली एक दृष्टि ! और कुछ नहीं ! इस पर समस्त संसार (प्रकृति) के तन-मन-धन का सौदा हो गया (bargain struck)।

मस्त गश्तम अज़ दो चश्मे साक़िये-पैमाना नोश।
अलिफ़िराक़, ऐ नंगो-नामूस ! अलविदा, ऐ अक़्लो-होश ॥

अर्थ—मैं प्याला पिलानेवाले साक़ी की दोनों आँखों से मस्त हो गया हूँ, ऐ अपमान ! दूर हट और ऐ बुद्धि और होश ! दूर हो।

या रब ईं चश्मस्त या जादूस्त कज़ कैफ़ियतश ;
हम चो दरियाए-मुहीत ईं क़तरा अम आमद बजोश।

अर्थ—हे ईश्वर ! यह आँख है या जादू है कि उसकी कैफ़ियत (दशा) से यह मेरा बिंदु (आँख का आँसू) घेर लेनेवाली नदी की भाँति आवेश में आ गया है।

इस जोगी दे नैन कटोरे। बाज़ाँ वांगन लैंदे डोरे।
राँझा जोगी ते मैं जुग्यानी। उसदी ख़ातिर भरसाँ पानी।

हाय दृष्टिरूपी मंत्र ! ऐ उपद्रवी नेत्र ! तूने ग़ज़ब (आश्चर्य) किया। न केवल मारे मस्ती के प्रकृति को भाँति-भाँति के नाच नचाए, वरन् तेरी कृपा से कोमलता की मूर्ति (गोबर-गणेश) और शून्य-मुख (तूष्णी) पुरुष को प्रकृति के हृदय-यकृत और प्रत्येक रोम-रोम तक पदारोपण करना पड़ा।

कोठे से नज़ाकत तो उतरने नहीं देती।
तुम आँखों से दिल में मेरे क्योंकर उतर आये ॥

कोठे तों चढ़ पाइया झाती, दो नैनाँ दी रमज़ पिछाती।
धाय गया नी! जानी लूँ लूँ दे विच।
हाय धाय गया नी! सोहना लूँ लूँ दे विच।
साँनूँ ज़रा कु जलवा दिखा गया नी।

यह दृष्टिपात क्या बला थी। इधर प्रकृति में तिलमिलाहट डाल दी, उधर पुरुष बेचारा अपने नयन-बाण के साथ ही प्रकृति की प्रत्येक नस में जा गिरा। इधर जादू-भरी दृष्टि का भाला बेचारी प्रकृति के यकृत में चुभा, उधर पुरुष उसके हृदय में बंदी हो गया।

अबरुए-कहकशाँ भी अनोखी कमंद है।
बेक़ैद हो असीर जो देखूँ उधर को मैं॥

हाय एकान्त-कारावास!

अपना यह दावा, नहीं दिल में कोई तेरे सिवा।
उनका यह इलज़ाम! अच्छी क़ैदे-तनहाई हुई॥

यदि भोला-भाला पुरुष बेमुरव्वत (कृतघ्न) था, तो भी उसका पल्ला दोष से नितान्त मुक्त है, क्योंकि उसने अपने लिये दंड प्रकृति को आप बता दिया।

ज़िंदाँ में जो ज़िंदा भजना हो, अपने दिले-तंग में जगह दो।

ऐ पुरुष (यूसुफ़)! यह कैसा बंदीपन है! ज़ुलेखा का हृदय-दर्पण बंदीघर बना है।

नयायद ज़ुज़ ख़यालत दर दिले-मन। बजुज़ यूसुफ़ सरे-ज़िंदाँ कै दारद॥१॥
यूसुफ़े-गुम गश्ता रा बेरूँ मजोय। दर दरूने-चाहे-दिल यावी सुराग़॥२॥

अर्थ—तेरे ख़याल के सिवा मेरे दिल में और ख़याल नहीं आता है। यूसुफ़ के अतिरिक्त क़ैदख़ाने का विचार और कौन रखता है।

लुप्त हुए यूसुफ़ को बाहर मत ढूँढ़। हृदय के कूप में तू उसका पता पायेगा।

यह प्यारे की छाया (प्रतिबिम्ब) है, जो जुलेखा रूपी प्रकृति के भीतर प्रविष्ट होकर संसार-रूपी ऊधम मचाती है। यही प्रतिबिंब वीर्यबिंदु की भाँति प्रकृति के पेट (गर्भ) में स्थिर होकर सृष्टि के रूप में उत्पन्न होता है।

ज्ञान आने पर प्रकृति के कलोल बंद हो जाने को अनोखे ढंग से इस प्रकार वर्णन किया है --

प्रकृतेः सुकुमारतरं न किंचिदस्तीति मे मतिर्भवति।
या दृष्टास्मीति पुनर्न दर्शनमुपैति पुरुषस्य॥ (कारिका ६१)

अर्थ—मेरी सम्मति में प्रकृति अत्यन्त दर्जे की लज्जावती है, जब उसे तनिक भी संशय होता है कि मैं देखी गई हूँ, तो बस फिर पुरुष के सम्मुख भूले से भी नहीं आती।

व्याख्या—जैसे कोई राजकुमारी राजप्रासाद के झरोखे में बैठी शृंगार कर रही हो, तो जहाँ तक उसे यह विचार रहता है कि मुझे कोई पुरुष नहीं देख रहा है, अपने बनाव-शृंगार में लगी रहती है, ज्यों ही उसने यह समझा कि मुझे पुरुष ने देख लिया है, झट खिड़की बंद की और ऐसी चंपत हुई कि फिर सूरत नहीं दिखाती। यही दशा प्रकृति की है। जब यह जान पड़ा कि मेरा ज्ञान हो गया है, फिर नहीं रहती। ज्यों ही ज्ञानवान् ने उसे यों संबोधित किया कि—

ज़ाले-जहाँ शनो सख़ुन इश्वए-नाज़ुकी मकुन।
दिल बतो नेस्त मुब्तिला तन तलमला तला तला॥

अर्थ—ऐ जगत् की बुढ़िया (अर्थात् संसार)! बात सुन। नख़रे-टख़रे मत कर। मेरा दिल तुझमें फँसा नहीं। तन तलमला तला तला (सारंगी का स्वर)।

तत्काल अपनी जिह्वा से यह स्वर उच्चारण करती हुई—

"कि मन नेस्तम आँचे हस्ती तुई।
कि मन नेस्तम हरचे हस्ती तुई॥

हम इस्म तुई व हम मुसम्मा।
आजिज़शुदह अक़्ल ज़ीं मुइम्माँ॥

अर्थ—कि मैं नहीं हूँ, जो कुछ है, तू ही है कि मैं वस्तुतः कुछ नहीं, तू ही तू है। तू ही नाम और तू ही नामवाला है। बुद्धि इस रहस्य के जानने से व्याकुल हुई है।

पुरुष में विलीन हो जाती है। एक पुरुष ही पुरुष रह जाता है।

जाए-ख़ुद चूँ मोहरए-शतरंज ख़ाली मी कुनम।
दुश्मने-मन मी शवद दर ख़ानए-मा मेहमाँ॥

अर्थ—शतरंज के मोहरे की तरह जब मैं अपना स्थान ख़ाली करता हूँ, तो मेरा शत्रु मेरे घर में अतिथि हो जाता है।

दिखाया परकृती ने नाच पूरा,
सिले में उड़ गई, ऐ है! सितम है।
ग़लत गुफ़्ती, शिकायत की नहीं जा,
बनी ख़ुद पुरुष वह अ़दलो करम है।

तस्मिन्न बध्यतेऽसौ न मुच्यते नापि संसरति कश्चित्,
संसरति बध्यते मुच्यते च नानाश्रया प्रकृतिः॥ (कारिका ६२)

अर्थ—अतः निश्चयपूर्वक कोई भी व्यक्ति वस्तुतः न तो बद्ध होता है, न मुक्त और न आवागमन के अधीन होता है, प्रकृति ही सब पुरुषों के आगे फँसती है, स्वतंत्र होती है और जन्म-मरण में घिरती है।

व्याख्या—जैसे वस्तुतः सेना हारती-जीतती और लड़ती है किन्तु कहा यह जाता है कि राजा हारा-जीता और लड़ा, वैसे ही यद्यपि यों कहा जाय कि पुरुष (आत्मा) जीवन के बंधन में फँसा, मुक्त हुआ या आवागमन में रहा था, परंतु वस्तुतः प्रकृति बद्ध होती है, छुटकारा पाती है या दुःख सहती है; आत्मा कदापि लिपायमान नहीं होता।

जैसे नारियल की 'जलघड़ी' तो पानी में बँधी रहती है, तैरती है और डूबती है, पर उसके डूबते समय पिटता घड़ियाल है, गजर बजने लगती है; वैसे ही प्रकृति (शरीर आदि) तो प्रतिपालन (पुष्टि), बंध और छुटकारा में आती है, किंतु नाम पुरुष का होता है। मर तो गया शरीर, अनजान लोग कह उठते हैं कि अमुक पुरुष मर गया।

"पुरुष अनेक हैं" सांख्यवालों की यह भ्रांति जताने के लिये राम का केवल इतना ही प्रश्न है कि एकांत की उच्चता पर चढ़कर ज्ञान का दूरदर्शक यंत्र लगाकर तनिक बताओ तो सही "कभी अनन्त (अपरिच्छिन्न) भी एक से अधिक हो सकता है ?"

यहाँ पर इवोल्यूशन के संबंध में कुछ अक्षर और लिख देने उचित हैं।

मेरे प्यारे ! टिंडल, कोम्टे, हेल्महोल्टज (Tyndall, Comte and Helm-Holtz) को पढ़ते-पढ़ते यह प्यारा सिर आपका कुछ चकराया हुआ ज्ञात होता है; थकावट के लक्षण प्रकट हैं; आओ चित्त को प्रफुल्लित करने के लिये गंगा-किनारे की ठंडी-ठंडी हवा खाएँ। यह कैसी स्वच्छ तख्त के समान शिला है। इस पर विराजमान हूजियेगा। वायु कैसी रह-रहकर चल रही है।..

अँगरेजी पढ़ा हुआ (बैठकर), महाराज ! विज्ञान तो यही जनाता है कि बल और शक्ति से काम लेकर अपने अधिकारों को स्थिर रखना, अपनी महिमा को बढ़ाए जाना और जीवन का आनंद उठाना हमारा ठीक कर्त्तव्य है। ऐसा करने में यदि किसी को हानि पहुँचती है, तो वह अपनी नासमझी और दुर्बलता का दंड स्वयं पा रहा है, हमें क्या ?

राम—भगवन् ! एक बात में तो हिंदू-शास्त्र आपके विज्ञान के साथ बिलकुल सहमत हैं। शास्त्र भी आज्ञा देते हैं कि अपने

अधिकारों को स्थिर रखना और अपनी बड़ाई को बनाए रखना मनुष्य का सबसे महान् और सबसे प्रथम कर्त्तव्य है। दुःखों का दूर करना और परम आनंद का प्राप्त करना यही ब्रह्मविद्या का लक्ष्य है। सांख्यदर्शन के पहले ही सूत्र में तीनों प्रकार के दुःखों (बाह्य, आभ्यन्तर और शारीरिक) अर्थात् आधिदैविक, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक दुःखों को जड़ से दूर कर देना परम पुरुषार्थ (कर्त्तव्य) कहा गया है। यथा—

अथ त्रिविधदुःखात्यंतनिवृत्तिरत्यंतपुरुषार्थः। (सांख्य १-१)

हिंदू-शास्त्र भी मनुष्य-जीवन को ग़नीमत समझते हैं। वेदांत तो मरने के पश्चात् मुक्ति का भरोसा नहीं करता। इस विषय में ईश्वर से भी उधार नहीं, नक़द मुक्ति और परमानंद हाथोंहाथ लिए बिना उनका पीछा नहीं छोड़ता। उपनिषदें दर्शनी हुंडी से भी बढ़कर हैं। पाश्चात्य विज्ञान और ब्रह्मविद्या एकसाँ प्रयोजन को पूरा करने में कहाँ विरोध करते हैं।

पंजाब के देहात में नियम है कि नाई लोग सामान्य सेवकों का भी काम देते हैं। बहुत समय का वृत्तांत है कि एक गाँव के पटवारी ने अपने नाई को बुलाकर अति ताकीद से कहा कि "बहुत शीघ्र भोजन करके यहाँ से सात कोस पर मेरे समधी के गाँव में जाओ, अत्यंत आवश्यक संदेशा भेजना है।"

नाई बेचारे के तेज़ी-जल्दी से हाथ-पाँव फूल गये। घबराया-घबराया अपने घर गया। एक बासी रोटी अपनी स्त्री से लेकर एक अँगोछे के खूँट में बाँधी, इस विचार से कि कहीं रास्ते में खा लूँगा, और झट चलता बना। गया! गया! जल्दी-जल्दी पग बढ़ा रहा है, अपने स्वामी की आज्ञा किस सच्चे हृदय के साथ पूरी कर रहा है। किंतु ऐ भोले! तूने चलते समय संदेशा तो पटवारी से पूछा ही नहीं, समधी से जाकर क्या कहेगा?

नाई को इस बात का विचार ही नहीं आया। वह अपनी जल्दी ही की धुन में मग्न चला जाता है। जहाँ जाना था, वहाँ पहुँचकर पटवारी के समधी से मिला। वह व्यक्ति संदेशा न पाकर बड़ा व्याकुल हुआ। नाई को धमकाया या कुछ कटुवचन कहा ही चाहता था कि एक युक्ति सूझ पड़ी। तनिक देर मौन रहने के पश्चात् बोला—"अच्छा ! तुम पटवारी से तो संदेशा ले आये, ख़ूब किया ! अब हमारा उत्तर भी ले जाओ। किंतु देखो, जितनी शीघ्र आये हो, उतनी ही शीघ्र लौट जाओ। शाबाश !"

नाई—(जी में प्रसन्न होकर) जो आज्ञा जजमान !

पटवारी के समधी ने एक लकड़ी का शहतीर जिसको उठाना साहस का काम था, दिखाकर नाई से कहा कि यह छोटी शहतीर पटवारी के पास ले जाओ, और उनसे कहना कि "आपके संदेशे का यह उत्तर लाया हूँ।"......................

बेचारे नाई ने सब काम परिश्रम और ईमानदारी से किए, किंतु आरंभ ही में भूल कर जाने का यह दंड मिला कि शहतीर सिर पर उठाए हुए पसीना-पसीना हुए पग-पग पर दम लेते, हाँफते-काँपते लौटना पड़ा।

विज्ञान अत्यंत तीव्र गति से उन्नति की श्रेणी पर गो ऑन, गो ऑन, ऑन, ऑन, (go on, go on, on, on,) करता चला जाता है। कैसे शौक़ से पग बढ़ा रहा है। On, Science, on ! हल्ला शेरा ! दौड़े जा ! चला चल, चल चल ! शाबाश !

किंतु हाय ! जिसके काम को जा रहा है, उससे मिलकर तो आया होता ! रेलों, तारों, तोपों, खिल्लोनों को (जिनमें हवास की ख़ुशियाँ-विषयानन्द-अभिप्रेत हैं) आनंदघन आत्मा का समधी ठानकर उनकी ओर दौड़-धूप कर रहा है। किंतु कान खोलकर सुन ले ! इन बाहरी उलझनों, अड़ंगों और

झमेलों में संतोष और आनंद नहीं प्राप्त होगा, और देर में चाहे सवेर में (so called civilization) झूठी और नक़ली सभ्यता का शहतीर सिर पर उठाकर भारी बोझ के नीचे कठिनता से अपने स्वरूप आत्मा की ओर वापस लौटना पड़ेगा।

ऐ पृथ्वीतल के नवयुवको ! ख़बरदार ! तुम्हारा पहला कर्त्तव्य अपने स्वरूप को पहचानना है। शरीर और नाम के तौक़ (बंधन) को गर्दन से उतार डालो और संसार के बग़ीचे में हवास (विषयों) के दास बने हुए बोझ लादने के लिये बेगार में आवारा मत फिरो। अपने स्वरूप को पहचानकर सच्चे राज्य को सँभालकर पत्ते-पत्ते और कण-कण में फुलवारी का दृश्य देखते हुए निजी स्वतंत्रता में मस्त विचरण करो। वेदांत तुम्हारे काम-धंधे में गड़बड़ डालना नहीं चाहता, केवल तुम्हारी दृष्टि को बदलना चाहता है। संसार का दफ़्तर तुम्हारे सामने खुला है। (God is no where) इसको ईश्वर कहीं नहीं है, संसार ही संसार है, पढ़ने के स्थान पर (God is now here) ईश्वर अब यहाँ है, "जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है"—

"न मी गोयम कि अज़ आलम जुदा बाश;
बहर कारे-कि बाशी बा ख़ुदा बाश।

अर्थ—मैं नहीं कहता हूँ कि तू संसार से अलग रह (वरन् यह प्रेरणा करता हूँ) कि जिस काम में तू रह, ईश्वर के साथ रह, अर्थात् ईश्वर का ध्यान मन में रख"

ऐसा पढ़ो। वेदांत का प्रयोजन तुम्हारी चोटी मूँड़ना नहीं है; तुम्हारा अंतःकरण रंग देना उसका स्वभाव है। हाँ, यदि तुम्हारे भीतर इतना गाढ़ा रंग चढ़ जाय कि भीतर से फूटकर बाहर निकल आये, अर्थात् वैराग्य से कपड़े भी लाल गेरुए बना

दे; तो तुम धन्य हो, धन्य हो ! ऐ अर्थशास्त्र (पोलिटिकिल इकॉनोमी) ! तुम्हारी चेतना चकरा क्यों रही है वा तुम्हारे होश क्यों उड़ रहे हैं ? घबराओ नहीं, इन वेदांतनिष्ठ साधु लोगों का रहना (Unproductive expenditure of capital) पूँजी का व्यर्थ व्यय नहीं है। आध्यात्मिक अविनश्वर पूँजी का अथाह कोप ये साधु लोग हैं । इनके शुभ जीवन निमित्त पृथ्वी फलवती होती है; इनके अमृत-भरे नयनों के लिये तारे और सूरज चमकते हैं; इनके चरण-कमलों पर वारे जाने के लिये लक्ष्मी तड़पती है। सांसारिक पूँजी के ख़याल में मग्न रहनेवाले लोगो, क्या तुमको उनका अस्तित्व बुरा मालूम होता है ? डरो मत, और तो और, ये साधु परमेश्वर से भी कभी याचना नहीं करने के। शरीर रहे, तो अच्छा, नहीं तो बला से अभी कट जाय। उनका श्वास लेना, उनका चलना-फिरना प्रकृति के ऊपर सौ-सौ एहसान करना है।

स्वर्ग और वैकुंठ के सुखों को कौवे की बीट की तरह तुच्छ समझनेवाले यह अभिलाषा रखते हैं कि तुम उनके सिर पर फूलों के स्थान पर राख डाल दो। वे इस भस्म को मस्तक पर धारण करके प्रेम-भरी दृष्टि के साथ तुम्हारे मन को शांति से भर देंगे। ऐ पोलिटिकल इकॉनोमी (अर्थशास्त्र) के पढ़नेवाले ! कुछ खबर भी है ? यह भगवे कपड़ों में "ॐ" की चित्ताकर्षक ध्वनि उच्च करता हुआ मस्ताना चाल के साथ गली में से कौन निकल गया ? निकट जाकर देख। आँखें स्पष्ट कह रही हैं कि सारे संसार का महाराजाधिराज वेष बदले भिक्षा-पात्र हाथ में लिए सैर कर रहा है।

संग तंग के टुकड़े खाँदे, चाल चलें अमीरी में।
मेरा मन लगा फ़क़ीरी में ॥
राँझा जोगीड़ा बन आया।

न यह चाकर-चाक कहींदा, न इस ज़र्रा शौक़ मिहींदा !
न मुश्ताक़ है दूध दहींदा, न इस भूख - पियास कुड़े !
कौन आया पहन लिबास कुड़े !

प्यारे भारतवासियो ! अपने प्यारे बच्चों की शिक्षा "डी—ओ—जी=डॉग, डॉग माने कुत्ता" से आरंभ करने के स्थान पर "जी—ओ—डी=गॉड, गॉड अर्थात् परमेश्वर रूप ज्ञानियों के उपदेश "ॐ" से आरंभ कराओ।

अज़ रास्ती अस्त जाय अलिफ़ दरमियाने-'जाँ'।
वाव अज़ कजी हमेशा बुवद दरमियाने-'ख़ूँ'॥

अर्थ—सचाई के कारण से शब्द 'जान' के बीच अलिफ़ का निवास है, और टेढ़ेपन के कारण अक्षर 'वाव' सदैव शब्द 'ख़ून' के मध्य में आता है।

किंतु ऐसा नहीं कर सके, तो लड़कों को कॉलेज में प्रविष्ट होने से पहले किसी पूर्ण ज्ञानवान् के सत्संग में पूरे साल अथवा कुछ मासों के लिये छोड़ दो। यदि यह भी न हो सके, तो ऐ युनिवर्सिटियों के डिगरी-पाए नवयुवको ! ऐ विलायत से पढ़कर आनेवालो ! रुपया की नौकरी ग्रहण करने से पहले आओ किसी ब्रह्मविद्या के सच्चे आचार्य की खोज करो, जो न केवल वेदांत के प्रकरण-ग्रन्थों (theology) से ही परिचित हो, वरन् जो स्वयं वेदांत(religion)स्वरूप हो, जिसकी प्रत्येक क्रिया उपनिषद्रूप हो; जिसके रोम-रोम से यह गीत निकल रहा हो—

शृण्वंतु विश्वे अमृतस्य पुत्राः आयेधामानि दिव्यानि तस्थुः॥ १॥

....

वेदाहमेतम् पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय॥ (यजु०)

अर्थ—सुनो ! हे अमृतपुत्र, दिव्य स्थानों के वासियो ! सुनो, मैंने पाया है, मैंने पाया है। मैंने उस अनंत महान् पुरुष

को जाना है, जो अंधकार से सूर्य के समान पृथक् वा नितान्त परे है, उसी को जानकर मनुष्य मृत्यु पर अधिकार पाता है। यही विधि है मुक्ति पाने की, और कोई मार्ग नहीं, और कोई मार्ग नहीं।

क्या ऐसे ब्रह्मनिष्ट ज्ञानवान् महात्मा भारत में नहीं हैं? केवल उन्हीं के लिये नहीं हैं: जिन्हें सच्ची खोज नहीं। किसी ऐसे सत्य जीवन का प्राण फूँकनेवाले परमहंस के सत्संग के प्रभाव से तुम समस्त आयु द्रव्य के दास नहीं बने रहोगे, वरन् "दौलत गुलामे-मन शुदोइक़बाल चाकरम् (संपत्ति मेरी दासी हो गई और प्रभुत्व मेरा दास)" का मामला देखोगे। जीवन के बाजार में जिस ओर जाओगे, आनंद का स्वर (harmony) तुम्हें स्वागत करता हुआ मिलेगा, जिधर दृष्टि को डालोगे, सफलता हाथ मिलाने को विद्यमान होगी। तुम्हारे अधरों (ओष्टों) पर नवीन उत्पन्न हुई तरोताज़गी के साथ माधुरी मुस्कान सदैव के लिये उत्पन्न होकर शोभा दिखाएगी, और मस्तक पर ज्ञान का सूर्य सदा के लिये उदय होकर कांति की वर्षा करेगा।

ब्रह्मविदिव सौम्य ते मुखं भाति। (छांदोग्य०)

अर्थ—हे सौम्य! तेरा मुख ब्रह्मज्ञानी के समान शोभायमान हो रहा है।

हाय मेरे प्राण से बढ़कर प्यारो! तुम्हें कब पता लगेगा कि

हर कमाले कि मा सिवाय-हक़ अस्त।
दर हक़ीक़त ज़वाल मी दानम॥
अगर तन रा नवाशद दिल मुनव्वर ज़ेरे-ख़ाकश कुन।
नवाशद दर शविस्ताँ इज़्ज़ते-फ़ानूसे-ख़ाली रा॥

अर्थ—जो कमाल कि ईश्वर के अतिरिक्त है, उसको वास्तव में मैं ज़वाल निश्चय करता हूँ। यदि किसी शरीर का दिल

प्रकाशमान नहीं है, तो उसको मिट्टी-तले दबा दे, क्योंकि खाली फ़ानूस की कमरे में कोई महिमा नहीं होती ।

वर्तमान शित्ता-प्रणाली ने निस्संदेह कुछ लाभ पहुँचाया है, किंतु इसमें परिवर्तन और सुधार की बहुत आवश्यकता है। समस्त धर्मों का प्राण, तत्त्वज्ञान का मुकुट, विज्ञानों का विज्ञान वेदांत ही एक विद्या है, जो अज्ञान के भँवर में डूबनेवाले को बचा सकती है। बाल्यावस्था में जब कि हृदय का क्षेत्र प्रभाव को शीघ्र ग्रहण करनेवाला होता है, प्रायः भ्रान्तियाँ (भूलें) जो विद्यार्थियों को पुष्टिकर औषधि समझकर पिलाई जाती हैं, उनके रक्त में दोष उत्पन्न कर देती हैं, और उनके जीवन को कड़ुवा बनाए रखती हैं। जैसे वर्तमान शित्ता-विभाग की पुस्तकों के निम्न-लिखित पद्य कि—

खुबसे-नफ़्स न गर्दद बसालहा मालूम ।
सगे रा लुक़मए हरगिज़ फ़रामोश ।
न गर्दद गर ज़नी सद नौबतिश संग ॥
वगर उमरे नवाज़ी सिफ़लए-रा ।
बकमतर चीज़े आयद बा तो दर जंग ॥

अर्थ—अहंकार का नीचपन बरसों नहीं मालूम होता। कुत्ता ग्रास को कदापि नहीं भूलता है, चाहे सौ बेर उसको। तू पत्थर मारे। और यदि समस्त आयु तू कमीने मनुष्य पर दया करे, तो वह थोड़ी सी बात पर तेरे साथ लड़ाई के लिये तत्पर हो जायगा।

बर तवाज़ाहाय-दुश्मन तकिया कर्दन अब्लहीस्त ।
पायबोसे-सैल अज़ पा अफगनद दीवार रा ॥
न दानिस्त आँ कि रहमत कर्द बर मार ।
कि आँ ज़ुलमअस्त बर फ़रज़ंदे-आदम ॥
संगीन दिलस्त आँकि बज़ाहिर मुलायमस्त ।
पिनहाँ दरूने-पम्बा निगर पम्बा दाना रा ॥

अर्थ—शत्रु के मान-सत्कार पर भरोसा करना मूर्खता है; क्योंकि नदी का चरण-तल छूना दीवार को गिरा देता है। जिस व्यक्ति ने साँप पर कृपा की, उसने यह नहीं जाना कि मनुष्य-जाति पर (यह कृपा) अत्याचार है। जो कि देखने में सुकोमल स्वभाव है, वह भीतर से कठोर-हृदय है, रुई के भीतर बिनौले को छिपा हुआ देखो।

ऐसे उपदेशों से मनुष्य का हृदय संशय और दुर्भावों का घर बन जाता है, और उसकी आँखों में ऐसा रोग समा जाता है कि जिधर देखता है, मूर्तिमान् शत्रुता से सामना करना पड़ता है। यद्यपि वास्तव में इसके अपने दुर्भाव और खटके ही भेंट करने-वालों के अंध-हृदय हो जाने का कारण होते हैं, वेदांत का यह अनुशासन है कि 'नीच' शत्रु, पाषाण-हृदय, पिशाच कोई है ही नहीं, मेरा पवित्र स्वरूप ही समस्त रूपों में प्रति समय शोभाय-मान है, अपने आपका कोई अनिष्ट नहीं करता, अतः मेरा अनिष्ट करनेवाला कौन है ? अन्य तो कभी विचार-गर्भ में भी उपस्थित नहीं हुआ। अविश्वास त्याग दो। भेद-दृष्टि वा द्वैत-दृष्टि का पाप तोड़ो, झूठ से मुँह मोड़ो।

यदि ऊपर से संखिया की भाँति कोई व्यक्ति मेरे निकट आया है, तो अवश्य किसी कुष्ट को दूर करेगा। इस विष की आवश्यकता ही थी। यदि नश्तर के स्पष्ट ढंग में मिला है, तो अवश्य विक्षिप्तता (उन्माद) की नाड़ी की फस्द खोलकर मेरे स्वास्थ्य का कारण होगा, धन्य है। यदि काँटेवाला अस्तुरा बनकर आया है, तो अवश्य मेरा खत ही बनाएगा, अच्छा हुआ। सब शरीर मेरे हैं, मेरे अपने आपसे अवश्य मुझको हानि का भय नहीं। बाहरी विरोध वास्तविक नहीं, केवल देखने-मात्र है, जैसे प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि कभी मुझमें बाल्यावस्था थी, फिर युवावस्था बीती, आगे बुढ़ापा बीत जायगा, किंतु बाल्यावस्था, जवानी, बुढ़ापे

आदि के होते हुए भी मेरा स्वरूप वही का वही रहा है; परिवर्तन (विकारों) के साक्षी मेरे स्वरूप में कुछ भी अंतर नहीं आया। ये सब सामयिक विकार केवल दिखावा-मात्र थे, वास्तविक नहीं। ठीक इसी प्रकार मनुष्यों के पारस्परिक भेद भी केवल दिखाई ही दिखाई देते हैं, वस्तुतः नहीं।

विज्ञान बताता है कि सर्दी और गरमी दोनों ताप के नाम हैं, केवल परिमाण (दर्जों) का अंतर है। बर्फ़ को ठंडा कहते हैं, किंतु बर्फ़ की ठंड भी ताप का एक परिमाण (दर्जा) है। भाप को गरम कहते हैं, वह भी ताप का आविर्भाव है। बर्फ़ की ठंड यदि ताप ही का तमाशा न होती, तो पिघलती हुई बर्फ़ को 'बिंदु सेंटी ग्रेड' से बहुत नीचे उतार सकना कोई अर्थ न रखता।

अँधेरा और उजाला भी एक ही प्रकाश के अलग-अलग दर्जों के नाम रक्खे हुए हैं। रात का समय मनुष्य के लिये अँधेरा है, किंतु बिल्ली, चीता आदि के लिये उजाला है।

इसी प्रकार बल और दुर्बलता भी एक ही अवस्था के परिमाणों के नाम हैं। अज्ञान और ज्ञान भी एक दूसरे के विरोधी वास्तव में नहीं। पाँच वर्ष का बालक, मूर्ख और वही बीस वर्ष की आयु में एम्० ए० होकर बुद्धिमान् (विद्वान्) कहलाता है। फिर यही एक (Lybnitz) लाइबनिट्ज़ के सामने पाठशाले का शिशु (मूर्ख) गिना जायगा। वैसे ही वेदांत दिखाता है कि ऐ अपने आपको भला कहनेवाले! जब बुरा मनुष्य दिखाई पड़े, तो तू निश्चयतः जान ले कि वह तेरा ही छुटपन का नन्हा और प्यारा अपना आप है। घृणा क्यों? दस साल में तेरी दशा और की और हो जानी है, तब क्या इस समय के अपने आपको तू व्यर्थ आदमी, जो किसी काम का न हो, कहलाना स्वीकार करेगा? नहीं। अतएव इवोल्यूशन

(विकास) की नसेनी (सीढ़ी) के अलग-अलग सोपानों पर चलनेवाले महाशयों को बुरा या भला होने का दोष मत लगा। उनकी निजी एकता (प्रत्यभिज्ञा) को हार्दिक दृष्टि से देखकर प्रेम का प्याला पान कर।

कुछ लोगों का यह ख़याल है कि अपने विरोधियों को नीचा दिखाना ही अपनी प्रतिष्टा (honour, self-respect) को स्थिर रखना है। ऐसे व्यक्तियों को वेदांत यह सम्मति देता है कि 'इस प्रकार के विचारों को त्याग दो, अन्यथा नीचा देखोगे'। बदला लेना, दंड देना और ईर्षा-भाव की पुष्टि करना वह गिद्ध है, जो स्पष्ट बता रहा है कि तुम्हारे भीतर अज्ञानता का शव सड़ रहा है। बिना शव के क्रोध का गिद्ध कभी आता ही नहीं। स्वप्न में किसी ने गाली दी, उसको अपने से पृथक् मानकर बदला लेने के लिये तत्पर होना स्पष्ट जतला रहा है कि तुम स्वयं अज्ञानता की नींद में सोए हुए हो, अविद्या के वश में हो, अतः बदले का ख़याल तो तुम्हारी सच्ची प्रतिष्ठा को मिट्टी में मिलाता है।

कुछ लोग अपनी चतुरता और धोका देने की योग्यता पर लट्टू होते हैं, धूर्त-शिरोमणि होने का अभिमान करते हैं, टेढ़ी-तिर्छी चालबाज़ी से अपना मतलब बनाने को बड़ी बात समझते हैं। उनकी करुणा करने योग्य दशा पर द्रवित होकर वेदांत यह अटल बात सुनाता है कि देर में चाहे सवेर में, कड़ुए अनुभव द्वारा, मारे तमाचों के गाल लाल करके माता प्रकृति उन्हें यह पाठ अवश्य पढ़ावेगी कि "धोकाबाज़ केवल अपने आपको धोका दे सकता है, अन्ततः अन्य को धोका देना बिलकुल असंभव है।" अग्नि चाहे ताप को कभी छोड़ भी दे, किंतु कपट स्वयं कपटी को भली भाँति सेंके (तपाये वा दुखाये) बिना कदापि नहीं छोड़ सकता।

व्यावहारिक द्वैतबाज़ (मक्कार या कोई और पाप करनेवाला) अपनी चाल से एकता के नियम को भंग करता है, सच्चाई के सूर्य (अद्वैत) को आँखों में नोन डाला चाहता है। ऐसे के लिये कहीं आश्रय नहीं। एकता के नियम को तोड़ना पाप है। और अनेकता में एकता (Unity in plurality) देखना, फिर धीरे - धीरे अनेकता के ख़याल का नितान्त नाश कर देना मानवीय जीवन की सर्वोत्तम जाँच है। जैसे साधारण मनुष्य को पत्थर, गाय, भैंस दृष्टिगोचर होती है, उसी ज़ोर से आनंद घनअद्वैतस्वरूप का सबमें अनुभव करना अमर होना है।

सायंकाल के समय वाटिका के कोने से पूर्ण प्रेम-भरे स्वर में इस भजन के गाने की ध्वनि आ रही है—

मैं अपने राम को रिझाऊँ।
जंगल जाऊँ, वृत्त न छेड़ूँ, न कोई डार सताऊँ।
पात पात में है अविनाशी, वाही में दरस कराऊँ॥ मैं०
औषध खाऊँ, न बूटी लाऊँ, न कोई वैद बुलाऊँ।
पूर्ण वैद मिले अविनाशी, ताही को नवज़ दिखाऊँ॥ मैं०
मैं अपने राम को रिझाऊँ—आदि आदि।

गानेवाला कौन है?—भक्त कबीर।

एक नवयुवक (रामदास) चित्त में खुभ जानेवाला गाना सुनकर वैराग्य से भर आया। नेत्रों में जल भरकर कबीरजी के चरणों पर सिर रख दिया और हाथ जोड़कर प्रार्थना की, "आप सब शक्ति रखते हैं, मुझे भी भगवान् के दर्शन कराओ।" कबीरजी रामदास के सच्चे भक्ति-भाव को देखकर इनकार न कर सके, कुछ देर बाद परसों दर्शन कराने का वादा कर लिया और तैयारी के लिये सामान पहुँचाने के लिये भी रामदास को खूब समझा-बुझा दिया।

दूसरे दिन रामदास ने ख़ुशी-ख़ुशी अपनी संपत्ति बेचकर

उसके चाँवल, खाँड़, घी, मैदा, दूध आदि ख़रीद लिए। नियत दिन को बहुत उत्तम भोजन तैयार किये गये, और साधु लोग निमंत्रित किये गये। इधर भाँति-भाँति के स्वादिष्ट भोजन तैयार धरे हैं, उधर महात्मा लोग आ-आकर अपने-अपने भजन-पाठ में लगे हैं। रामदास परम प्रेम और भक्ति के साथ एकांत में पूजा कर रहा है इस आशा पर कि अभी भगवान् के दर्शन हुए कि हुए।

रामदास को दर्शन होने के बाद सब महात्मा पंगत में सम्मिलित होंगे। सब लोग आँख फाड़-फाड़कर उत्तम मुहूर्त्त के ध्यान में हैं।

लो दोपहर ढल गई, रामदास को अभी तक दर्शन नहीं हुए, तीसरा पहर हो गया, दर्शन नहीं हुए।

कुछ नवयुवक साधुजनों की अँतड़ियाँ परमेश्वर को कुछ का कुछ कहने लगीं कि हाय! हमारे उदर और सुस्वादु पदार्थों के मध्य में व्यवधान (partition) क्यों बना है! कुछ पर निराशा छा गई, कुछ कबीर को दोष देने लगे, कुछ रामदास को पागल समझने लगे कि किस बात प रीझ पड़ा। कुछ प्रेमी इस आनंद-भरे विचार से बग़लें बजाते थे कि कदाचित् रामदास के चरणों की कृपा से हमें भी दर्शन प्राप्त हों। निदान आशा और प्रतीक्षा में प्रत्येक का—"चूँ गोशे-रोज़ादार बर अल्लाहु अकबर अस्त"—रोज़ा खोलने के लिये अल्लाह अकबर की बाँग सुनने पर रोज़ादार के कान लगे हुए का सा मामला हो रहा था।

इन लोगों को तो अपने-अपने विचारों में लीन छोड़िए, उधर भोजन आदि की सुध लीजिए। पवित्र रसोई (चौके) में यह क्या घमसान मचा है। इस जगह यह भैंस किधर से आ गई ? खीर के बर्तन औंधे पड़े हैं, कड़ाहों में हलुवे को भैंस का मुँह लगा हुआ है, मालपुए सब जूठे हैं, दाल-बाल के देगचे

फूट रहे हैं, भैंस ने सींगों से चूल्हे भी तोड़ दिये हैं, सारे स्थान को जहाँ-तहाँ खुरों से खराब कर दिया है, जगह-जगह गोबर कर दिया है, अब भैंस थूथनी उठाकर अड़ाने लगी।

आशा के विरुद्ध भोजन बनाने के कमरे में यह आवाज़ सुनकर सब साधु चौंक पड़े। दिन-भर की भूख के कारण आकुल-चित्त तो पहले ही हो रहे थे, खाने-पीने पर साफ़ चौका और सब आशाओं के सिर पानी फिरता देख उनकी क्रोधाग्नि आवश्यकता से अधिक भड़क उठी, और तमोगुण की उन्नति अकथनीय।

उधर से रामदास भी पागल की तरह लठ हाथ में लिए आ गया। साधुओं ने भैंस को घेर रक्खा और रामदास ने भैंस की गत बनानी आरंभ की। मार-मारकर सब खाया-पिया निकाल दिया।..........

कोई कबीरजी पर फबतियाँ गढ़ रहा था, कोई ठेने-ठप्पे (उलाहने) सुना रहा था, कोई तेज़ और कड़वे वाक्य चुस्त कर रहा था।

भैंस ज़ख्मी होकर रक्तरंजित शरीर लिए लँगड़ाती-लँगड़ाती दुःख-भरी ध्वनि से फ़रियाद करती कठिनता से अपने प्राण बचाकर बाग़ के उस कोने की ओर आ निकली, जहाँ कबीर ठहरा हुआ था। पीछे-पीछे रामदास और साधु लोग भी कबीरजी की खूब खबर लेने को उसी ओर आ रहे थे। आकर क्या देखते हैं कि मारे सहानुभूति के भक्त कबीर भैंस के गले लिपटकर विह्वल रो रहा है—"हे भगवन्! हाय! आपको आज वह चोटें आईं, जो रावण से लड़ते समय भी नहीं आई थीं। हाय! आपको आज वह कष्ट सहना पड़ा, जो कंस से संग्राम करते समय भी नहीं सहना पड़ा था। हाय! आपको आज..."

कबीर भक्त के रोने-धोने ने समस्त दर्शकों की दशा यकायक

बदल दी। जैसे आग के साथ जो वस्तु छू जाती है, आग हो जाती है, वैसे उस अवसर पर कबीर के प्रभाव से रामदास आदि के अंतःकरण ऐसे निर्मल हो गये कि आनंदघन अद्वैतरूप के अतिरिक्त कुछ न रहा। द्वैत भावना एकदम मिट गई। दुई का पर्दा उठ गया। हर स्थान पर, हर वस्तु में, एक ही आत्मा पाया—

मन ऐसो निर्मल भयो जैसे गंगा-नीर।
पीछे-पीछे हर फिरे कहत कबीर कबीर॥

दुःख और शोक, विषयों की भावनाएँ, शरीर की सब वासनाएँ दूर हो गईं। अपना एक शरीर होने के स्थान पर समस्त शरीर ख़ास अपना आप दिखाई पड़ने लगे, और यह ख़ास अपना आप संसार का सुख स्वयं राम ही था। विचित्र दर्शन हैं कि दर्शन करनेवाला और दर्शन देनेवाला दो नहीं रहते। अपने आप तमाशा और अपने आप तमाशा देखनेवाला, आश्चर्य है! हर (परमेश्वर) का यही दर्शन है कि हर (पशु, पक्षी, मनुष्य, संसार सब) में ही हूँ।

ऐ सांसारिक विद्या के विद्वान्! क्या तू संसार-वाटिका के अंगूरों के पत्ते गिनने, बीज जाँचने, रस तोलने और चाक़ू से उसके टुकड़े काटने में (Botanists) वनस्पति-विद्या के ज्ञाताओं की भाँति अपनी आयु खो देगा? इन चित्र-विचित्र अंगूरों में अंगूर-रस का एक बेर तो स्वाद चख, फिर चाट लग ही जायगी।

निगाहे-यार जिस दिन से निगाहों में समाई है;
मेरी आँखों में काँटा-सा खटकता कुल ज़माना है।

यह तेज़ अंगूर की पुत्री (प्रेम-मद) मुँह को लगी हुई तुझे अपने प्यारे नख-शिख सुंदर के घूँघट को हटाने की हिम्मत देगी। इसी उत्तम मदिरा ने परमहंस रामकृष्ण को भंगियों की झोंपड़ी में जगदंबा काली के दर्शन कराये। अपने

सिर के लंबे बालों से झोंपड़ी का......साफ़ करने लगे। इसी अद्वैतरूपी मदिरा की तरंग में महाप्रभु चैतन्य गौरांग ने अपने शरीर को जगदंबा पाया, और ममता के मारे जो सामने आया, उसको झट गोद में उठाया। हाय! हाय रे! मातृ-प्रेम गाय की भाँति अपने बच्चों को चाटने लगे।

ऐ चमड़े तक रह जानेवाले विज्ञान! दूर हो जा मेरी आँखों के सामने से। ऐ फ़िलासोफ़ी की ओट! हट जा मेरे आगे से। मैं देखूँ तो सही, यह न्याय और व्याकरण का प्रोफ़ेसर (चैतन्य) कहाँ भागा जाता है। ए लो! कृष्ण के गले जा लिपटा और प्रेम से विह्वल रो रहा है।

कृष्ण के! यह कृष्ण कहाँ है?—यह तो एक नामी बदमाश कलालख़ाना से शराब पीकर जा रहा था।

ऐ अपने भीतर बदमाश देखनेवाली भेद-बुद्धि-युक्त द्वैत दृष्टि! भिंगेपन को हटा। उपनिषद् के हस्पताल में आँखें बनवा। फिर तू इस मामले में सम्मति देने के योग्य होगी। अभी तो अपने बदमाश की दशा देख! वह अपने प्रत्येक अंदाज़ से, प्रत्येक कथनी और करनी से स्पष्ट बोल रहा है कि "मैं कृष्ण हूँ।" उसका बदमाशपन तभी तक था, जब तक चैतन्य की तत्त्व-दर्शी दृष्टि उस पर नहीं पड़ी थी। सच्चे मसीह ने एक ही दृष्टि में पाप के कोढ़ को सदा के लिये हटा दिया। अनाथ पापी से त्रिलोकीनाथ कृष्ण बना दिया।

क़ुरबाने-निगाहे-तो शवम बाज़ निगाहे।
क़ुरबाने-निगाहे-तो शवम बाज़ निगाहे॥

प्रवाहैरश्रूणां नवजलदकोटी इव दृशौ,
दधानं प्रमद्र्यापरमपद कोटीः प्रहसनम्।
वसन्तं माधुर्यैरमृतनिधि कोटीरिव तनु-
च्छटाभिस्तं वन्दे हरिमहह संन्यासकपटम्।

अर्थ—वह जिसकी आँखें नवीन मेघों की भाँति लगातार पानी बरसा रही हैं, जिसके प्रेम का प्रकाश लोगों के मनों में स्वर्ग और देवलोक से घृणा उत्पन्न करा रहा है, सौंदर्य और माधुर्य के कारण जिसके शरीर से अमृत का समुद्र निकल रहा है, यह कोई और नहीं है, अहाहा ! संन्यास के वेप में परमेश्वर ही है। जय ! जय !! जय !!!

वह देखना, इस वन में यह निकम्मी झोंपड़ी किसने बना रक्खी है ? आओ, देखें तो सही।

अजी जाने भी दो, यह तो किसी बहुत नीच जाति की है। भीतर चले गए, तो फिर नहाना पड़ेगा। तुम भी तो किस बात के पीछे पड़े हो। अब छोड़ो भी। खैर, राम के मारे-बाँधे झोंपड़ी में घुसते हैं। ऐं ! यह कौन ? साँस दबाकर रह जाते हैं।

पाठक, समझे ? इस झोंपड़ी में कौन बैठा है ? पहचानते हो या नहीं ? कौन हिंदू या मुसलमान है, जिसने दशहरे के दिनों "बोल राजा रामचंद्र की जय" नहीं सुनी होगी, और अति सुन्दर सजावटवाली पालकी में सवार महाराज के दर्शन नहीं किये होंगे ? वही राजा रामचंद्र अब इस फटी-पुरानी चटाई पर सीताजी के साथ बैठे हैं। क्या उदास हैं ?

उदास कैसे ? महा आनंदित हैं।

चटाई से नीचे भूमि पर एक नीच जाति की भीलनी (शबरी) बैठी है। उससे घुल-घुल के कैसी बातें कर रहे हैं। भीलनी बेरों की ऋतु में जंगल से बेर चुनकर लाई थी। उसने सबको चख-चखकर मीठे अलग रख दिए थे और शेप सब खा गई थी, वह भीलनी के चखे हुए और इस समय सूखे हुए मीठे बेर हाथ बढ़ाकर मीठी-मीठी वाणी से माँग रहे हैं।

मर्यादा-पुरुषोत्तम राजा रामचंद्रजी की यह दशा देखकर भी भारतवर्ष में साम्प्रदायिक झगड़े और पक्षपात की गंध शेष रह जायगी ?

भीलनी का टूटा-फूटा घर देखकर चित्त कदाचित् उकता गया होगा। आओ, अब दिल्ली की सैर करायें, ब्राह्मणों और राजाओं-महाराजाओं का प्रभुत्व दिखायें। यज्ञ की धूम-धाम में कहीं साथ न छोड़ देना। आहा ! यह क्या ? यह पैर किन कोमल उँगलियों ने पकड़ लिये ? यह चरण कौन धोने लगा ?

पाठक, कुछ पता लगा ? पृथ्वीमंडल के वज्रबाहु महाराजाधिराज इधर जिसके श्री-चरणों की रज प्राप्त करने के लिये वैसे ही तड़पते थे, जैसे कि उधर चंद्र-मुख और चाँदीवत् सुन्दर देहधारी सुंदरियाँ उसके अधरामृत के चुंबन के लिये; वही कृष्ण, जिसकी विश्वविमोहिनी वंशी की मधुर ध्वनि इधर प्रेमियों के दिलों में वैसे ही चुटकियाँ भरती है, जैसी कि उधर उसकी गीता बुद्धिमानों को गुदगुदाती है; वही श्रीकृष्णचंद्र महाराज हर छोटे-बड़े के पैर धोने की ड्यूटी (कर्त्तव्य) दिली उमंग से अंगीकार किये हुए हैं; उसी ने पैर पकड़े थे। कृष्ण के प्रेम की जब यह दशा है, तो भारतवासियो ! तुम्हारा क्या कर्त्तव्य है ? तुम्हीं बताओ।

पिदरम् रौज़ए-रिज़वाँ बदो गंदुम बफ़रोख़्त।
नाख़लफ़ बाशम अगर मन बजवे न फ़रोशम॥

अर्थ—मेरे पिता ने स्वर्ग की फुलवारी को दो दाने गेहूँ के लेकर बेच दिया, मैं असल का नहीं हूँ, अर्थात् मैं नाख़लफ़ हूँगा, यदि उसे एक जौ के बदले न बेच दूँ।

प्रश्न—क्यों महाराज ! जब तक वेदांत के रंग नहीं चढ़े थे, तो बिलकुल सादे वस्त्र पहनते थे, अब त्याग-वैराग्य की विद्या

आने पर सिर से पैर तक रेशमी वस्त्र तन को शोभा बढ़ाने लगे। और देखो, दरज़ी दो रज़ाइयाँ कैसी चमाचम लाया है, एक चमकीले हरे रेशम की है, दूसरी अत्यंत सुन्दर लाल रेशम की।

राम—स्त्री सती होते समय पूरा शृंगार लगाती है, आँखों में सुरमा, ओठों पर पान की लाली, गले में हार, निदान सब प्रकार भूषणों से सुसज्जित होती है; पर इस तैयारी के क्या अर्थ ? बस अभी, अभी आग में कूदेगी।

महाशय ! इस महाराज की सजावट-बनावट तो सती का शृंगार है। अभी एक व्यक्ति सिद्ध कर देता है कि रज़ाइयों की लागत लगभग साठ रुपया जो दी गई, तो बिलकुल अंधेर किया; यथार्थ मूल्य कठिनता से लगभग ३०) होना चाहिये, दरज़ी और बज़ाज़ खा गये। महाराज (आँख में आँसू भरकर) "हाय, बिलकुल तुच्छ रुपया के लिये, तीस या साठ या सौ रुपया के लिये, मैं अपनी तत्त्वदृष्टि को जान-बूझकर फोड़ लूँ ? परमेश्वर को दोष लगाऊँ ? अपने आपसे अविश्वासी हो जाऊँ ? प्रेम के नियम को तोड़ दूँ ? कैसा रुपया ? कहाँ का दरज़ी ? ओं ! ओं !! ओं !!!...। अत्यन्त दुःख और दर्द के साथ ये वाक्य निकले थे कि उपदेष्ट्री काँप उठा, पानी-पानी हो गया। इस ज्योतियों के ज्योतिःस्वरूपमय भाव ने अपने आप बज़ाज़ और दरज़ी के दिलों में प्रविष्ट होकर उन्हें जगा दिया। दोनों ने आकर अपने आप अपराधों को स्वीकार किया, और पश्चात्ताप किया।

क्या जो वस्तु परमार्थ में ठीक उतरे, वह व्यवहार में कभी धोका दे सकती है ? कदापि नहीं। युक्ति में दुरुस्त और व्यवहार में अयुक्त, (दाँत) खाने को और, दिखाने को और, न्याय (तर्क-शास्त्र) इसका खंडन करता है।

वह विज्ञान, जो एक ही चपत से द्वैतवाद का (जो ईश्वर को

अपने से पृथक् बताता है) मुँह फेर देता है, दाँत बाहर निकाल देता है; वह विज्ञान, जो भयानक पहाड़ की भाँति द्वैत के सिद्धांत पर टूटकर उसे चीनी के बर्तनों की तरह चकनाचूर कर देता है, वही विज्ञान अद्वैत-सिद्धांत के दरवाज़े की बुहारी देता है। ऐसे ही वेदों का प्रत्येक पृष्ठ इस अद्वैत के सौंदर्य का प्रकट करने-वाला है। यह अद्वैत (एकता) का सिद्धांत परमार्थ की उच्च कोटि पर बिलकुल सच है, नहीं-नहीं, सत्यस्वरूप है; और यही अद्वैत-सिद्धांत व्यवहार की कोटि पर निरंतर प्रेम बनकर प्रकट होता है, व्यावहारिक जीवन में सच्ची प्रीति के नाम में प्रकट होता है, कारोबार के बाज़ार में समान प्रेम का चोला पहनकर स्पष्ट होता है; अतः यह अद्वैत-सिद्धांत, जो वस्तुतः प्रकाश-स्वरूप है, व्यवहार में प्रीति-स्वरूप बना हुआ हमें किस प्रकार धोका दे सकता है ?

भेड़िया, साँप, बिच्छू आदि जिनको पीड़क (मूज़ी) प्राणी माना गया है, यदि हमारे चित्त में इनके लिये अत्यन्त प्रेम होगा, तो क्या ये हमें न काटेंगे ? हाँ, नहीं काटेंगे।—

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः। (योगदर्शन)

अर्थ—अहिंसा के दृढ़ता-पूर्वक स्थापित हो जाने से आस-पास भी वैर नहीं फड़क सकता है।

यके दीदम अज़ अरसए-रोदबार।
कि पेश आमदम बर पलंगे-सवार॥
चुनाँ हौल ज़ाँ हाल बर मन निशस्त।
कि तरसीदनम् पाये-रफ़्तन बबस्त॥
तबस्सुम कुनाँ दस्त बरलब गिरिफ़्त।
कि सादी मदार आँचे दीदी शिगिफ़्त॥
तो हम गर्दन अज़ हुक्मे-दावर मपेच।
कि गर्दन न पेचद ज़ि हुक्मे-तो हेच॥

चरा अहले - दावा वदीं नगरवंद ।
कि अब्दाल दर आबो-आतश रवंद ॥

अर्थ—रोदवार के मैदान में मैंने एक मनुष्य को देखा कि वह चीते पर सवार होकर मेरे पास आया। उस दशा को देखकर मुझ पर ऐसा भय छा गया कि भय ने मेरे चलने का पाँव बंद कर दिया। उसने मुस्कराते हुए होंठ पर हाथ रक्खा, अर्थात् आश्चर्य करने लगा कि ऐ सादी ! जो कुछ तूने देखा, इसका आश्चर्य मत कर, ईश्वर की आज्ञा से तू गर्दन मत फेर, ताकि तेरी आज्ञा से कोई गर्दन न फेरे। जो लोग (ऐसी घटनाओं के न होने का) दावा करते हैं, वे क्यों नहीं देखते कि अब्दाल (महापुरुष) पानी और आग में चले जाते हैं।

परोपकारमूर्ति दुर्गा माता नरसिंह की पीठ पर क्यों काठी न डालेगी ? सतोगुण के पुतले विष्णु के लिये महाविषधर शेषनाग नरम शय्या का काम देता है, और अपने विषैले फनों को उस प्रसन्नात्मा की छतरी बनाता है। तीक्ष्ण और उन्मत्त साँप वरदाता शिवजी के आभूषण बने हुए हैं, और प्रेम से व्याल भूषण के चहुँ ओर लिपटकर शांति के प्रभाव को प्रमाणित कर रहे हैं।

अँगरेज़ी-पठित जिसको श्रीगंगा की शिला पर बिठाया था (घड़ी देखकर)—थैंक यू ! थैंक यू !! (आपको धन्यवाद देता हूँ), आपने बड़ी कृपा की, कैसे-कैसे सब्ज़ बाग़ दिखाए, किंतु मुझे तो ठंडी हवा में बैठे-बैठे ज़ुकाम लग चला है, क्षमा कीजिएगा, आज्ञा माँगता हूँ।

राम—अच्छा, तशरीफ़ ले जाइएगा।

अँगरेज़ी-पठित उठकर खड़ा होता है।

राम—श्रीगंगा में उसकी छाया की ओर संकेत करके कहते हैं—तनिक खड़े-खड़े इधर गंगा में झाँकना, यह आपका निकट

का नातेदार (relation) रूप और आकृति में तो बिलकुल आपके समान है, किंतु यह क्या ? पड़ी इसने कोट के दाहिने ओर लटका रक्खी है, यद्यपि जेंटिलमैन को आपकी तरह बाईं ओर रखनी चाहिए; और देखो! आपके और इसके पाँव तो इकट्ठे हैं, किंतु आपका क़द ऊपर को बढ़ रहा है और इसका क़द नीचे को फैल रहा है। यह ऐंटीपोडीज़ (antipodes पाताल-निवासी) ऐसे निकट क्योंकर आ गये ?

यह कहकर राम खड़ा हुआ, और बातें करते-करते दोनों श्रीगंगा के किनारे टहलने लगे।

राम—आप स्वाधीन हैं, यह छाया पराधीन, आप बुद्धिमान् हैं, यह अबुद्धिमान्—

अक्से-गुल में रंग है गुल का व लेकिन बू नहीं।

श्रीगंगा में जो महाशय (जेंटिलमैन) देखा है, वह प्रत्येक बात में उल्टा ही है। इसका दायाँ बायाँ है और बायाँ दायाँ है। इसके पैर ऊपर को हैं और सर नीचे को। लहरों पर सारा शरीर अस्थिर और चंचल है। पर जब उस छाया के पैर से ऊपर चढ़कर देखा, तो असली बाबू साहब के पाँव पाए। फिर तो दायाँ दायाँ ही था और बायाँ बायाँ ही। सिर ऊपर ही को था और शरीर भी कंपित और क्षुब्ध नहीं था। अच्छे भले निष्कंप असली मनुष्य से सामना पड़ा।

अब देखिए, जड़ जगत्, वनस्पति जगत् और प्राणिजगत् माया (प्रकृति) रूपी नदी के दर्जे और मंज़िलें हैं। प्रकृति के नियम के अनुसार इनमें पुरुष (चैतन्य) का प्रतिबिंब पड़ना ही चाहिए। विकास के लिये, अर्थात् ऊपर चढ़ने के लिये सिर को नीचे और पैर को ऊपर रखना पड़ेगा। क्षुब्ध और चंचल छाया उन्नति और उच्चता को केवल यों ही पा सकती है कि संकल्प-विकल्प-युक्त रूप और विषमता-युक्त शैली से झगड़ा-

बखेड़ा करे। अतः शांति और प्रेमवाले रंग-ढंग तथा शैली-प्रथा जो असली पुरुष चैतन्य की पूर्व दशा-प्राप्ति (restoration) के निमित्त आवश्यक है, उसके विरुद्ध वनस्पतिवर्ग और पशुओं में उल्टी रीति (लड़ाई-झगड़ा) ही विकास का द्वार ठहरता है।

अज्ञानी जीव के शरीर में वास्तविक पुरुष (चैतन्य) के पैर और उल्टी छाया (प्रतिबिम्ब) के पैर आ मिलते हैं। अब मनुष्य की निजी महिमा की स्थिति (अर्थात् उन्नति और विकास का कारण) वह नहीं रहेगी, जो पशु आदि के शरीरों में उल्टी छाया की उन्नति का कारण थी। लड़ाई-टंटा मनुष्य के शरीर में आकर उसको ऊपर नहीं चढ़ायेगा, वरन् बंदरों, लंगूरों और भेड़ियों आदि का सहचर और सखा बनायेगा। मनुष्य-देह में आकर इस पुरुप को शांति, प्रेम और मैत्री का ढंग वर्त कर अपना असली स्वरूप ज्यों का त्यों कर लेना शोभा देता है। अपने सच्चे सिर को सँभाल लेना ही आवश्यक होता है, चंचल छाया से अलग हो जाना ही उचित है, माया की लहरों से स्वतंत्र होकर तरंगें मारना ही आवश्यक है, भ्रांति से छुटकारा पाना ही अनिवार्य है, अज्ञान के दासत्व से मुक्ति पाना ही उचित है।

अब देखिए, अद्वैत-सिद्धांत के कुछ तत्त्ववेत्ताओं की दृष्टि से अविद्या में चैतन्य के प्रतिबिंब का नाम जीव है। यह अविद्या विक्षेप शक्तिवाली है, अर्थात् बहते जल की भाँति गतिशील (चंचल) है; वट के बीज के समान परिवर्तनशील उन्नति की संभावना रखती है। चैतन्य की किरणों को गर्भ में लेकर गर्भवती स्त्री की तरह अथवा सिंचित भूमि की तरह फलने-फूलने की शक्ति रखती है।

तरहे-रंग आमेज़ी दर फ़स्ले-ख़िज़ाँ अंदाख़्ता।

अर्थ—ईश्वर ने शिशिर-ऋतु से वसंत-ऋतु की नींव डाली है।

घन सुषुप्ति—यह अविद्या (प्रकृति) जड़ जगत् के रूपों में गाढ़ी घन सुषुप्ति के खर्राटे ले रही है, घोड़े वेचके घूक नींद में पड़ी है। इस अवस्था में देश, काल, वस्तु का संकल्प बीज में वृक्ष के समान अव्यक्त रूपी माता की गोद में है। तमोगुण के काले परदे ने प्रकृति के दर्पण को मलीन किया हुआ है। इसलिये पुरुष (चेतनात्मा) के प्रकाश को प्रकट करने की योग्यता उसमें नहीं। रंगारंग की सज्जित श्रेणियों (पाँतों) में से अब कोई भी विद्यमान नहीं।

सुषुप्ति—वनस्पतिजगत् के स्वरूप में प्रकृति ने करवट बदला, गले में बाहें डाले हुए पुरुष को तनिक अनुभव किया; किंतु बेहोशी की नींद (सुषुप्ति) अभी नहीं हटी, अलबत्ता घन सुषुप्ति किसी अंश में नरम सुषुप्ति हो गई। देश, काल, वस्तु ने बेहोशी की दशा से तनिक सिर निकाला। देखिए, ये पौदे (tropics) अयन-रेखान्तर्गत देश में उगते हैं; केसर और तुलसी पतझड़ की ऋतु में रंग लायगी; गेंदा वसंत-ऋतु में नहीं फूलेगा; लाजवंती आदमी का हाथ लगने से लज्जा के मारे मुरझा जायगी; देवदार ऊँचे पहाड़ों पर मिलेगा; धान (चावल) वर्षा की उपज है, इत्यादि। प्रकृति के दर्पण का कड़ा काला आवरण अब धुँधले (smoky) रंग से बदल गया है। हरे वस्त्र पहनकर प्रकृति निकली है। क्या संकेत-पूर्वक यह कह रही है कि मैंने पुरुष को ग्रहण कर लिया ?

स्वप्न—पशुवर्ग के वेष में प्रकृति पर स्वप्नावस्था है, स्वप्न का सा सब काम-धंधा, प्रत्येक वस्तु अस्थिर (hazy-dizzy), समस्त शृंखला व्याकुल, समस्त वस्तु के पारस्परिक संबंध सुस्त, संबंध सभी ढीले; इस दशा की सब-की-सब वस्तुएँ अस्थिर,

अदृढ़ और अशृंखल होती हैं। देश, काल, वस्तु अव्यक्त से प्रकट हुए हैं, किंतु अभी नन्ही-नन्ही जानें हैं, कमज़ोर पौदों के समान हैं, हर ओर ढल सकते हैं, मोड़-तोड़ के वश में हैं, विचित्र प्रकार के परिवर्तनशील हैं।

स्वप्न (१) "अनारकली में घोड़ी पर सवार जा रहे हैं, यह जम्मूँ आ गया। उतरकर दीवानख़ाने में प्रविष्ट हुए, घोड़ी भी साथ है, किंतु नहीं, वह तो एक रूपवान् मनुष्य बन गई।"

स्वप्न में अन्तरिक्ष (देश) भी विचित्र ढंग का होता है। यह है देश और वस्तु-परिच्छेद की दशा।

(२) स्वप्न में बहुत समय बीत गया। जागकर देखा, तो बहुत ही अल्प समय था। इस विषय में आस्तिक लोगों को योगवासिष्ठ में राजा लवन की कथा या ऐसी कई आख्यायिकाओं का उल्लेख कर देना पर्याप्त है। उच्च पदों पर नियुक्त बाबू लोग नए सिरे से परीक्षा-स्थानों में सुपरिंटेंडेंटों के निरीक्षण के नीचे लेखनी दौड़ाते हैं। बाहर से कोई शब्द चार या पाँच सेकंड तक आता रहा! स्वप्न में एक लंबी-चौड़ी घटना तैयार हो गई, जिसने इस शब्द को अत्यंत उचित समय पर रख दिया।

स्वप्न में कई बेर ख़ूब उड़े, क्या पक्षियों के जन्मवाला स्वभाव फिर उदय हो आया? यह दशा स्वप्नावस्था के 'समय' की है।

(३) स्वप्न की वार्तालाप भी बड़े आनंद की होती है। बुद्धि हमारी इच्छानुसार होती है। गणित के अत्यंत कठिन प्रश्न कई बेर स्वप्न में हल हो गये, किंतु उठकर देखा, तो प्रक्रिया में भूल पाई। स्वप्न में फड़कती हुई ग़ज़लें लिखीं, किंतु जागने पर मालूम हुआ कि शेरों में सक्ता पड़ता है,

मात्रा-भंग हैं, विचार भद्दे हैं; निदान स्वप्नावस्था का 'मनुष्य' स्वप्न की दशा में विचित्र ढुलमुल स्वभाव रखता है।

ऐ जागनेवाले! ध्यान से देख, जाग्रत् अवस्था का स्वप्न के साथ क्या संबंध है, नींद कैसी अत्यंत आवश्यक है। रस्सी से बँधी हुई बुलबुल इधर-उधर झपटकर, उछल-कूदकर, दौड़-फाँद-कर अंततः अपने अड्डे खूँटी पर आ बैठती है; वैसे ही जाग्रत अवस्था में मन और इंद्रिय शोभा देखते हैं, चुहल-पुहल के आनंद लूटते हैं, पर अंततः थक-हारकर अपने स्वप्न के निवास-स्थान में आकर आराम करते हैं।

यदा वै पुरुषः स्वपिति प्राणं तर्हि वागप्यते प्राणं चक्षुः प्राणं मनः प्राणं श्रोत्रं। स यदा प्रबुध्येते प्राणादेवाधि पुनर्जायन्ते।

(शतपथ ब्राह्म)

अर्थ—जब मनुष्य सोता है, वाणी प्राण में लय हो जाती है, दृष्टि प्राण में, मन प्राण में, श्रोत्र प्राण में; और जब वह जागता है, तो प्राण ही से ये सब उत्पन्न हो आते हैं।

निगाह हरजा रवद आख़िर ब मज़गाँ बाज़ मी गर्दद।
कि आज़ादी गिरफ़्तारीस्त मुर्गे-रिश्ता बर पारा॥

अर्थ—दृष्टि जिस जगह भी जाती है, अंततः वह पलकों की ओर लौट आती है, क्योंकि पाँव से बँधे हुए मुर्ग़ के लिये स्वतंत्रता भी बंधन है।

निस्संदेह स्वप्न से जाग्रति वैसे ही प्रकट होती है, जैसे सवेरे में से दोपहर प्रकट हो आती है, जैसे नन्हे पौदे में से एक बहुत बड़े फैलाव का पेड़ (gigantic tree)। क्यों जी, बचपन की अवस्था भी एक स्वप्न का समय ही तो होता है, जिसमें युवापन की जाग्रत् अवस्था क्रमशः प्रकट होती जाती है। जाग्रत् अवस्था की जड़ अनुभव के संत्रित्रय (देश, काल, वस्तु) को भली भाँति देखो और फिर उनकी स्वप्नावस्था के देश, काल, वस्तु से तुलना

करके बताओ कि जाग्रत् की दृढ़ और कठोर हड्डियाँ (देश, काल, वस्तु) स्वप्नावस्था के नरम-नरम ढीले-ढाले देश, काल, वस्तु से वही संबंध और नाता रखती हैं कि नहीं कि जो जवानी को बचपन से होता है ?

यहाँ पर सब पक्षों को लेकर सविस्तर प्रमाण से इस विषय को अधिक विस्तार देना उचित नहीं ; इस समय इतना ही पर्याप्त होगा कि इस आशय का एक सामान्य सूचनापत्र संसार में वितरित किया जाय कि प्रत्येक व्यक्ति को उचित है कि एकांत के सदर स्थान में अपने आपको पहुँचाकर उल्लासपूर्ण होकर सुने। वहाँ दिल का ढोल पीटकर, अनहद नाद का नगाड़ा बजाकर, प्रकाश यह घोषणा (manifesto) कर रहा है कि घनसुषुप्ति के पहाड़ों पर मिथ्या अज्ञान (अविद्या, माया, मूढ़ता) रूपी बरफ़ की (स्थिर, जड़) झील चेतन (आत्मा) की तीक्ष्ण किरणों से अपने आप पिघलकर, स्वप्नावस्था के छोटे-छोटे तागों के समान नाले बनती हुई, जाग्रत् अवस्था में भारी नदी होकर बहने लगती है।

तम आसीत् तमसा गूढमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमाइदं।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत् तपस्तन्महिना जायतैकं ॥ ३ ॥
(ऋग्वेद मंडल १०, सूक्त १२६)

अर्थ—(जगत् के प्रादुर्भाव से) पहले अँधेरे से ढपा हुआ अँधेरा था। यह सब कुछ अनियुक्त चिह्नहीन द्रव के समान अवस्था में पड़ा था। यह जो कुछ फैला हुआ है, उस समय तुच्छ (असत, अव्यक्त) के आवरण में था, (फिर) वह एक तत्त्व की तीक्ष्ण शक्ति से अस्तित्व में आया।

अतः संसार के बड़े-बड़े नाम और चित्ताकर्षक रूप तथा कर्त्तव्यविमूढ़ता में डालनेवाली भाँति-भाँति की वस्तुएँ,

इस एक ही घनसुषुप्ति का पसारा हैं, अज्ञान के अन्धकार का अंकुर हैं, अविद्या (अव्याकृत) की घटाटोप घुप अँधेरी रात में काल्पनिक भूत-प्रेत हैं। यह सब भ्रम वा भ्रांति की बहुलता है, भयानक द्वैत केवल स्वप्न-मात्र है। वासनाएँ और उनके विषय धोका हैं, बढ़े हुए स्वप्न हैं। ऐ मनुष्य! तेरा स्वरूप इस अविद्या और इस अविद्या की इवोल्यूशन (विकास) से श्रेष्ठतर है। जब यह अविद्या घन सुषुप्ति के पहाड़ (कारण शरीर) पर स्थित झील के रूप में काई-रूप आवरण से ढकी होती है, तेरा प्रकाश, तेरे स्वरूप का तेज उस पर वैसा ही चमकता होता है, जैसा कि उस सूरत में, जब कि वह स्वच्छ-निर्मल पहाड़ी नालों की तरह स्वप्नावस्था में बहती है, या जैसा कि उस रूप में जब कि यह अविद्या बलशाली धारा बनकर जाग्रत् अवस्था में कलकलाती हुई नदी की शोभा दिखाती है।

ऐ सूर्यवत् प्रकाशमान पुरुष! तू अविद्या की नदी में डावाँ-डोल प्रतिबिम्ब अपने आपको मत मान। माना कि लाखों तरंगों पर तेरा प्रतिबिम्ब पड़ रहा है, पर अस्थिर लहरों के कारण अपने आपको टुकड़े-टुकड़े समझ बैठना क्या अर्थ रखता है? हाय मेरे प्राणप्रिय!

क़त्ल बेशमशीर तुम तो हो गए। आइना दिखला दिया दो हो गए॥

भला इतना तो बतलाओ कि "तुम हो कि नहीं हो?" हाय! मैं न्योछावर! शत्रुओं को 'नहीं'। 'नहीं' कहनेवाले की जिह्वा पर फफोले पड़ें! तुम हो, अवश्य हो, यदि अविद्या के दम में आकर तुम्हारे मुँह से बहकी-बहकी बातें निकलने लग पड़ें और तुम बोल उठो कि "मैं नास्ति हूँ, केवल शून्य हूँ, मैं नहीं हूँ, इत्यादि," तो तुम्हारे ऐसा कहने ही से तुम्हारा अस्तित्व सूर्यवत् प्रकाशमान है। "मैं सोया हूँ" कहने से स्पष्ट पाया जाता

है कि वक्ता जागता है। जरा विचार तो कर देखो कि 'मैं नहीं हूँ' इस विचार का प्रकाशक तुम्हारा अपना आप ज्यों का त्यों स्वतः विद्यमान रहेगा। अतः यदि तुम्हारा अपना आप 'है' और नहीं को नहीं सह सकता, तो तुम अवश्य सदा विद्यमान निराकार सूर्य ही हो, प्रतिबिंब किसी प्रकार नहीं हो सकते, क्योंकि प्रतिविम्ब मिथ्या है, झूठ है, भ्रम और भ्रांति है।

अय आँ कि तू ख़ुदा रा जोई हर जा। चे तू ख़ुदा नई? ख़ुदाई ब ख़ुदा॥

अर्थ—ऐ मनुष्य! तू हर स्थान पर ईश्वर को ढूँढ़ता-फिरता है, क्या तू स्वयं ईश्वर नहीं है? ईश्वर की सौगंद, तू ईश्वर है।

Some thousand thousand times or more
Unto myself I witness bore;
"Gladly gives Nature all her store." She
Knows not kernel, knows not shell
For she is all in one.
But thou,
Examine thou thine own self well
Whether thou art kernel or art shell.
(Goethe)

अर्थ—हज़ारों वरन् लाखों बेर मैंने अपने भीतर अनुभव किया (या अपने आपके विषय में साक्षी दी) कि प्रकृति प्रसन्नता से अपने स्वामी मनुष्य को अपनी समस्त पूँजी अर्पण करती है, वह बाहर के छिलके और भीतर के गूदे में कोई भेद नहीं करती, क्योंकि वह सब एक में है, अर्थात् वह क्योंकि सब स्थानों में सब रूप और प्रत्येक रूप में परिपूर्ण है, इसलिये वह बाहर के नाम-रूप और भीतर की आत्मा आदि का पृथक्करण नहीं करती, किंतु तू

ऐ मनुष्य! अपने गिरेबान में मुँह डालकर देख (अपने आपका भली भाँति निरीक्षण कर) कि तू स्वयं भीतर का गूदा (आत्मा) है या बाहर का छिल्का (नाम-रूप) है। (गेटे) निमकहरामी (treason, राजद्रोह), सम्राट् को गाली देना और लांछन लगाना बड़ा अपराध माना गया है, तो क्या राजराजेश्वर, सम्राटों के सम्राट् अपने पवित्र स्वरूप परमेश्वर को कलंक लगाना पाप न होगा?

हक़ दानमो-हक़ गोयमो दर राहे-अनलहक़।
मंसूर सिफ़त सर बसरे-दार फ़रोशम॥

अर्थ—मैं हक़ (तत्त्व) जानता हूँ और तत्त्व कहता हूँ और अनलहक़ (शिवोऽहं) के मार्ग में मंसूर (आत्मज्ञानी) की भाँति फाँसी के ऊपर अपना सिर बेचता हूँ।

पश्चात्ताप करो, सेवक बनने से न अपने आपको नाशवान् और परिच्छिन्न मानो, और न शरीर के जेलखाने में सज़ा भोगो।

सृष्टि की सीमा में जड़ जगत् और वनस्पति जगत् के परतों (तबक़ों) से होकर प्रकृति का प्राणी के शरीर रूपी वस्त्रों को ओढ़ना मानों स्वप्नावस्था में अवतरण करना है। योरपियन लोग चाहे उसे विकास ही से अभिहित करें। इस अवसर पर देश, काल, वस्तु का जाला मस्तिष्क में तनना आरंभ हो जाता है। प्रकृति के विकारों में सफ़ाई आते आते यहाँ तक दशा हो जाती है कि जर्मन लैंप पर चीनी की हँडिया (Globe) के समान अर्द्ध-स्वच्छपन (Translucency) निकल आता है; और पुरुष का प्रकाश रह-रहकर कुछ प्रकट होने लगता है, कुछ रुका रहता है।

मख़फ़ी नहीं है चेहरए-जानाँ नक़ाब में।
महताब आ गया है हिजाबे-सुहाब में॥

है चश्म नीम बाज़ अजब ख़्वाबे-नाज़ है।
फ़ितना तो सो रहा है, दरे-फ़ितनाबाज़ है॥

साँवली सखी (कृष्ण) बारीक साड़ी पहनकर आ जाती है और घूँघट की आड़ में से आँखें मार-मार बुद्धि और विचार को गोल-माल करना आरंभ करती है। पर यह भी कोई बात है भला ?

ब हर रंगे कि ख़्वाही जामा मे पोश।
कि मन आँ क़दे-मौज़ूँ मी शिनासम॥

अर्थ—जिस रंग में तू चाहे, कपड़े पहन, मैं तो वही तेरा मौज़ूँ क़द पहचानता हूँ।

क्यों ओहले बह बह झाकीदा; एह पर्दा किस तों राखीदा।

जाग्रत्—चलिए, स्वागत की तैयारी कीजिए। वह मनुष्य जी महाराज पधारे। स्वागत ! स्वागत !! प्रकृति अब खरी ख़ासी जागी हुई है। देश-काल और वस्तु व्यक्तित्व के अंड को फोड़ चुके, और जिधर देखो, उधर ही बाहु फैलाए उड़ रहे हैं। प्रकृति के मादे में सफ़ाई की यह दशा है कि अब उसकी चीनी की हँडिया से नहीं, वरन् स्वच्छ शीशे की चिमनी से तुलना कर सकते हैं। पुरुष का प्रकाश साफ़-साफ झलक रहा है। क्या परदा बिलकुल टूट गया ?-पुरुष नंगा है ? जान तो ऐसा ही पड़ता है। भला देखें तो सही। ए लो ! प्रेम के पतंग ने पुरुष रूपी ज्योति की ओर मुख किया। उसकी समझ में कोई अवरोधक नहीं। प्राण समर्पण करनेवाला किस शीघ्रता से आ रहा है। हाय भाग्य (हाय क़िस्मत) टक्करें मार-मारकर रह गया।

ख़ाक बर जाने - हवादारिये- फ़ानूस फ़िताद।
कि अज़ो शमा जुदा सोज़द व परवाना जुदा॥

अर्थ—फ़ानूस की इस ख़ैरख़्वाही पर धूलि पड़े कि उसके कारण ज्योति अलग जलती है, और पतंग अलग।

पुरुष अभी प्रकृति की चहार दीवारी में घिरा है, मुक्त नहीं हुआ। मुक्त तो जब हो, जब अद्वैत का पतंग उसके साथ एक प्राण हो सके, अभी तो अहं, मम की दीवार प्रेम (अनन्य प्रेम) को रोके खड़ी है।

वन सुषुप्ति (खनिजवर्ग और वनस्पतिवर्ग) स्वप्न (प्राणिवर्ग) और जाग्रत् (मनुष्यवर्ग) की अवस्थाओं को प्रकृति की स्थूलता (मलिनता) के भेद से क्रमशः तमोगुण, रजोगुण और सतोगुणवाली वर्णन किया गया है, और हाँडी चिमनी आदि पदार्थों के रूप की उपमा दी गई है, पर यह न समझ बैठना कि स्वप्नावस्था (प्राणिवर्ग) और जाग्रत् अवस्था (मनुष्यवर्ग) में पुरुष रूपी ज्योति के लिये प्रकृति अपनी आकृति भी हाँडी और चिमनी की-सी रखती है; और न यह ख्याल करना कि स्वप्नावस्था (प्राणिवर्ग) और जाग्रदावस्था (मनुष्यवर्ग) में प्रकृति शुद्ध सतोगुण और शुद्ध रजोगुणवाली होती है, वरन् प्रत्येक दशा में तीनों अवस्थायें बर्तती हैं, जहाँ वाक् और वाणि की दाल नहीं गलती, वहाँ अलंकार से थोड़ा बहुत काम निकल सकता है, अलंकार की भाषा (metaphorical language) में प्रकृति की अपनी आकृति चाहे स्थूल (तम, रजवाली) रहे, चाहे चिमनी के समान सूक्ष्म (सतोगुणवाली), किन्तु प्रकृति की आकृति और बनावट (Crystallization बिल्लूर, स्फटिक) सदैव एक तिकोन स्फटिक (Prism त्रिपार्श्व, क्रकचायत) की सी रहती है, जिसके तीन पार्श्व (पहलू) तो सत, रज और तम हैं और दोनों सिरे नाम व रूप। जैसे सूर्य का प्रकाश तिकोन स्फटिक से निकलकर भाँति-भाँति के रंग दिखाता है, वैसे सत्-चित्-आनन्द पुरुष की ज्योति (कांति और तेज) अविद्या के स्फटिक (prism) में से निकल कर चित्र-विचित्र हो जाती है और नानात्व का रंग जमाती है, संसार बनकर दिखाई देती है।

मग़रबी आँचे आलमश ख़्वानंद।
अक्से-रुख़सारे-तुस्त दर मरआत्॥

अर्थ—ऐ मग़रबी (कवि)! जिसे संसार कहते हैं, वह शीशे में केवल तेरे मुखमंडल की छाया है।

तेरे रूप अनूप के प्यारे! हैं सबमें चहकारे।
ऐ प्यारे—कहीं गुल बन के हो ख़न्दाँ कहीं हो बुलबुले-नालाँ।
झलकता है यहाँ सबमें तेरा रंगे-तरहदारी॥
तेरी सूरत को जब देखा हुआ हैरान आईना।
ग़रज़ की गुलशने-हस्ती में तूने ख़ूब गुलकारी॥

जाग्रति में यह स्फटिक बहुत स्वच्छ-निर्मल होता है, इसलिये सारे रंग (देश, काल, वस्तु) आदि अत्यंत तीक्ष्ण और तेज़ (चटक) दिखाई पड़ते हैं। स्वप्न में यह स्फटिक धुँधला-सा होता है, पहले की अपेक्षा मलिन होता है, प्रकाश बाहर निकलता तो है, किंतु रंग (देश, काल, वस्तु) मद्धिम और पतले-पतले होते हैं। घनसुषुप्ति में स्फटिक बिलकुल काला और स्थूल होता है, इसलिये कोई रंग बाहर नहीं आता, संसार नहीं बनता।

प्रकाश स्वच्छ-निर्मल वस्तुओं पर पड़कर न केवल (१) वार-पार हो जाया करता है, जैसे लैम्प की चिमनी या स्फटिक में (इसका नाम प्रकाश-प्रत्यावर्तन refraction है), वरन् (२) अनेक अवसरों पर शीशे के पार नहीं जाता और लौटकर स्वच्छ वस्तु के पहले ही ओर रहता है, जैसे आरसी या पानी में जेंटिलमैन की छाया के समान (इसका नाम प्रतिबिंब—reflection है)। प्रतिबिम्बित मुख दिखाई तो पानी या दर्पण के बीच में देता है, किंतु वह प्रकाश वस्तुतः रहता पानी या शीशे के बाहर ही बाहर है। इसका हेतु प्रत्येक गणितज्ञ सविस्तर बता सकता है। वह छाया, जो पानी या दर्पण के बीच में दिखाई पड़ती है, सत्य नहीं होती, अतः गणितज्ञों की परिभाषा

में वह मिथ्या छाया या वर्चुअल इमेज (virtual image) कहलाती है। (३) और प्रकाश वस्तुओं में शोषित भी हो जाया करता है, जिसके कारण आरसी, पानी आदि स्वयं दिखाई देते हैं। कई बार ये तीनों क्रियाएँ इकट्ठी प्रकट होती देखी जाती हैं।

(अविद्या) नाम-रूप काँच स्वयं दृष्टिगोचर होता है। यहाँ तो पुरुप पुरुषोत्तम का प्रकाश मायामय होकर भास रहा है।

स्वप्न में वस्तुओं का दृष्टिगोचर होना और जाग्रति में संसार का भान होना, यह पुरुष का प्रकाश माया के स्फटिक में से गुज़र जाने (refraction) के कारण से है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, चित्र-विचित्र रंग (आभास) क्या हैं ? केवल पुरुपोत्तम के प्रकाश का आविर्भाव माया के स्फटिक (prism) में से वार-पार गुज़रा हुआ। ये स्फटिक अनंत हैं, अर्थात् शरीर (मनुष्य) बहुसंख्यक हैं, किंतु पुरुषोत्तम (सूर्य) एक ही है। प्रत्येक व्यक्ति के अंतःकरण से उस एक ही पुरुषोत्तम का प्रकाश निकलकर भाँति-भाँति की शोभा बना रहा है।

अब आइए, प्रकाश के प्रतिबिंब (reflection) अर्थात् पार हो जाने के स्थान पर पिछली ओर मुड़ने की दशा देखिये। यह घटना (phenomenon) केवल मनुष्य-दशा में दिखा देना पर्याप्त होगा। देखना, सुनना, सूँघना, छूना, बोलना, खाना, पीना, चलना, फिरना, लेना, देना आदि कर्म होते समय इस प्रश्न के उत्तर में कि इनका मूल कौन है, एक "मैं" का विचार (ego) इंद्रियों और शरीर में विशिष्ट झलक मारता है, "मैं शरीर का स्वामी, इंद्रियों का स्वामी" यह कर रहा हूँ, यह भोग रहा हूँ, चलता हूँ, गाता हूँ, रोता हूँ, आदि। वह काम असुक व्यक्ति ने किया, वह कर्म किसी और से हुआ, यह कर्म किसी तीसरे मनुष्य से दृष्टि में आया, मैं भिन्न

हूँ, यह और हैं, मैं और हूँ, आदि। इस प्रकार शरीर और प्राण में बन्धायमान जो "मैं" का ख़याल है, यह अहंकार रूप "मैं" वेदांतवालों के यहाँ "चिदाभास" कहलाता है, अर्थात् चैतन्य का अंतःकरण में मिथ्या (virtual) आभास; इसी का नाम "जीव" भी लिखा है।

अब देखिए, भिन्न-भिन्न कर्म और चेष्टाएँ तो क्या सुषुप्त्यवस्था में, क्या स्वप्नावस्था में और क्या जाग्रदवस्था में, केवल पुरुषोत्तम के समक्ष तीन गुणोंवाली प्रकृति (अविद्या) के एर-फेर, परिवर्तन और नाच-कूद के कारण से दृष्टिगत हो रहे हैं। किंतु "मैं करता हूँ, मैं भोगता हूँ", "मैं मैं, मैं", इस धोकेबाज़ "मैं" के गले पर छुरी, यह "मैं" का ख़याल अपने आप ही पल्ला पकड़ता जाता है। इस "मैं" (अहंकार) के जाल में फँसे हुए महाशयो ! यदि तुम (चिदाभास) ही सब कुछ करनेवाले हो, तो सुषुप्ति को अपने ऊपर क्यों प्रभावशाली (ग़ालिब) होने देते हो। यह अवस्था तो तुम्हारे "मैं, वैं" को एक प्रकार उड़ा ही देती है, उस समय तो कर्त्ता भोक्ता "मैं" का पता ही नहीं मिलता।

ऐ परिच्छिन्न "मैं"! तनिक देख तो सही, न तो निद्रा ही तेरे वश में है, न जाग्रति। रक्त-संचलन, अभिवृद्धि, नसों, पट्ठों और हड्डियों आदि का प्रतिपालन भी इस परिच्छिन्न 'अहं' भाव के कब वश में है ? शरीर में प्रतिक्षण कार्य-संग्राम जो गरम रहता है, ऐ तुच्छ अहंकार ! तुझे उसका पता ही क्या है ? ऐ चिदाभास ! यदि शरीर तेरा है, तो इसे मरने ही क्यों देता है, वरन् इसके रोग-ग्रस्त होने के समय ही क्यों चिंता में पड़ जाता है ?

आह ! भुलावा देनेवाली प्रकृति (अविद्या) के दाँव में आकर 'परी' शीशे में उतर आई, नहीं इंद्र स्वयं ईश्वरता छोड़कर

अहंकार में आ गिरा, जीव और दास कहलाया। ऐ आत्मदेव इंद्र! तुम्हारा अपना सच्चा राज-पाट बना रहे; बद्ध जीव, दास बनना क्या प्रयोजन? तुम प्रतिबिम्ब तो नहीं हो?

बिया बर आस्माने-दिल चो ख़ुरशेद।
ज़े कौकब पाक कुन लौहो समा रा॥
सुलेमाना! बियार अंगुश्तरी रा।
मुती-ओ-बंदाकुन, देवो परी रा॥

अर्थ—हृदयाकाश पर सूर्य की भाँति आ। हृदय-पटल और हृदयाकाश को नक्षत्रों से स्वच्छ कर (अर्थात् ज्ञान के बल से संशय-संदेह को मिटा दे)। ऐ सुलेमान! अपनी अँगूठी ला, और देव तथा परी को दास बना।

प्रश्न—यह तो मान लिया कि शरीर आत्मा नहीं है, पर क्या आत्मा कर्त्ता, भोक्ता नहीं है, और आत्मा इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, प्रयत्न और ज्ञान इन षट् लिंगोंवाला नहीं है? यथा—

इच्छाद्वेषप्रयत्न सुखदुःख ज्ञानान्यात्मनो लिंगमिति।
(न्याय, सू० १०)

और क्या आत्मा जन्म-मरण में भी नहीं आता है?

राम—सूक्ष्म शरीर (प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय कोश) के गुण, कर्म, स्वभाव को आत्मा में आरोपने से जीवपन आता है। जैसे स्थूल शरीर आत्मा नहीं है, वैसे सूक्ष्म शरीर (प्राणमय, मनोमय और विज्ञानमय कोश) भी आत्मा नहीं है। इतनी बात तो सहज ही समझ में आ जाती है कि 'स्थूल शरीर' मैं नहीं, किंतु 'सूक्ष्म शरीर' मैं नहीं, इसको समझने में कुछ अधिक विचार व विवेक की आवश्यकता है।

यह भगवे रंग की रेशमी कफ़नी पड़ी है; इसके पास बिल्लौर (स्फटिक) का टुकड़ा धरा है। बिल्लौर भगवा दिखाई देता है। (१) पर क्या यह बिल्लौर सचमुच भगवा है? नहीं।

आपने क्योंकर जाना कि बिल्लौर भगवा नहीं ? बिल्लौर को भगवी कफ़नी से झटपट अलग कर दिया, तो बिल्लौर का भगवा रंग जाता रहा, जिससे तत्काल ज्ञात हो गया कि बिल्लौर का रंग केवल उपाधि के कारण भगवा था। (२) क्या कफ़नी भगवी है ? हाँ यह तो है।

मेरे प्राणप्रिय! कफ़नी भी भगवी नहीं। कफ़नी के रेशमी परमाणुओं के निकट भगवे रंग के परमाणु वैसे ही पृथक् पड़े हैं, जैसे बिल्लौर के निकट कफ़नी अलग पड़ी थी। धो देने से यह रंग उतर भी सकता है, अर्थात् तनिक परिश्रम से रंग के भगवे परमाणुओं को रेशम से वैसे ही पृथक् करके दिखा सकते हैं, जैसे कफ़नी को बिल्लौर से पृथक् करके दिखाया था। तनिक और ध्यान से देखो, तो रंग-चंग सब सूर्य ही की माया है। प्रत्यक्ष भगवे बिल्लौर का वस्तुतः रंगीन न होना तो सहज में समझ में आ गया था, किंतु प्रत्यक्षतः भगवी कफ़नी का भी रंगीन न होना तनिक देर से और कठिनता के साथ समझ में बैठा। ठीक उसी प्रकार स्थूल शरीर का आत्मा न होना तो झटपट समझ में आ जाता है, किंतु सूक्ष्म शरीर का आत्मा न होना सामान्य मनुष्य की समझ में तत्काल नहीं आता। इसका कारण यही है कि अंतः-करण को वैराग्य के पानी से धोकर द्वैत का कल्मष उतारना लोग स्वीकार नहीं करते।

आपत्ति—आपके मत से तो जाग्रति स्वप्न में से प्रकट होती है, किंतु हम नित्य देखते हैं कि स्वप्न उन्हीं बातों से संबंधित होते हैं, जिनसे जाग्रति में प्रयोजन रहता है। जैसे चमार को कभी यह स्वप्न नहीं आता कि मैं गंगा-तट पर संध्या कर रहा हूँ। भारत के आठ वर्ष के बालक को कभी यह स्वप्न नहीं आता कि मैं सेंटपीटर्सबर्ग के बाज़ार में घूम रह

राम—कुछ विद्वानों के निकट प्रथम तो यह बात आज तक पूर्ण रूप से प्रमाणित नहीं हुई कि स्वप्न सदैव जाग्रत् काल की बीती हुई घटनाओं से बनते हैं (क्योंकि कुछ स्वप्न भविष्य के संबंध में सत्य भी निकला करते हैं, और मनुष्य कई बार ऐसा स्वप्न भी देखता है कि मैं उड़ रहा हूँ, आकाश में उड़ रहा हूँ, आदि)। अस्तु। इस बात को यदि मान भी लिया जाय कि स्वप्न का विषय सदैव भूतकालिक घटनाओं के एर-फेर पर निर्भर होता है, तो फिर भी इससे पूर्व-लिखित वेदांत-सिद्धांत पर कोई आपत्ति नहीं आ सकती। बीज सदैव वृक्ष से उत्पन्न होता है, बीजवाला फल वृक्ष ही में लगता है, किंतु इसमें भी कुछ संदेह नहीं कि वृक्ष बीज से उत्पन्न होता है, समस्त वृक्ष बीज में समाया होता है; वैसे ही मान लिया कि स्वप्न में जाग्रत् के संस्कार होते हैं, किंतु ऐसा होते हुए भी बीज से वृक्ष की भाँति स्वप्न से जाग्रति का फैल आना ठीक ही रहता है। जब स्थूल शरीर मर जाता है, तो स्वप्नावस्था-वाला सूक्ष्म शरीर बीज की भाँति कारण-शरीर (या अविद्या) की भूमि पर आत्मा-रूपी सूर्य के प्रकाश में नए सिरे से उग आता है, अर्थात् एक नूतन स्थूल शरीर धारण कर लेता है। जैसे दूसरे जन्म के समय सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर की उत्पत्ति का कारण होता है, वैसे ही छोटे पैमाने पर प्रतिदिन स्वप्न का सूक्ष्म शरीर जाग्रत् के स्थूल से प्रथम होता है।

कुछ लोग स्वप्न और सुषुप्ति को जाग्रत् की थकावट का परिणाम मानते हैं। उनको केवल यह स्मरण करा देना है कि यदि स्वप्नावस्था थकावट से आती है, तो जाग्रत् भी स्वप्न की थकावट ही से आती है। सोए-सोए थक जाते हो, तो जाग आ जाती है।

सब धर्मों के कथन सत्य हैं। जाग्रदवस्था के पश्चात् स्वप्नावस्था सदैव आया करती है, स्वप्न से फिर जाग्रति उदय हुआ करती है, मानो मृत्यु से फिर पुनरुत्थान (resurrection) हुआ करता है। स्वप्नावस्था के विषय प्रायः वही होते हैं, जो दिन-भर ध्यान को खींचते रहे हों। अर्थात् जो विचार जाग्रवस्था में सूक्ष्म शरीर को प्रवृत्त रखते रहे हों, प्रायः वही स्वप्नावस्था में प्रकट हुआ करते हैं। जो कार्य प्रतिदिन होता देखने में आता है, वही बड़े पैमाने पर मृत्यु के पश्चात् होता दीखता है। एक सच्चा और पक्का कर्मकाण्डी (उपासक) जो पचास वर्ष के जीवन के समस्त दिन-भर में बचपन से लेकर बुढ़ापे तक पाँच समय नमाज़ पढ़ता रहा इस विश्वास के साथ कि "जब मृत्यु की रात पड़ेगी, मुझे स्वर्ग की प्राप्ति होगी, अप्सरायें और गंधर्व का आलिंगन मिलेगा, अमृत-जल पीने को, नंदन-कानन विचरने को, उत्तमोत्तम प्रासाद रहने को मिलेंगे।" निस्संदेह मृत्यु की रात पड़ने पर ऐसे मोमिन (कर्मकाण्डी मुसलमान) के सूक्ष्म शरीर को ये सब वस्तुएँ मिलनी चाहिएँ।

जो व्यक्ति समस्त आयु के जागते दिन में मंदिरों में हाथ जोड़-जोड़कर और माथे रगड़-रगड़कर यह निश्चय पकाता रहा है कि मुझसे रासलीला और श्रीकृष्ण परमात्मा के दर्शन कभी न छूटें, ऐसे विश्वासी भक्त को मृत्यु के पश्चात् अवश्य गोलोक मिलेगा।

जो व्यक्ति प्रत्येक रविवार और बुधवार को गिरजा में सच्चे दिल से प्रार्थना करता रहा है, प्रत्येक प्रभात और संध्या को घुटने के बल बैठकर या खड़े होकर सिर झुका और हाथ उठाकर नमाज़ चुकाता रहा है, और मरते समय अपने उद्धारक के ध्यान में स्थूल शरीर छोड़ता है, वह क्यों मृत्यु के समय ईश्वर के दाएँ हाथ को हज़रत ईसा की छत्रच्छाया में न जा बैठेगा ?

जो व्यक्ति समस्त आयु मुक्त शिला पर लट्टू रहेगा, वह मृत्यु रूप स्वप्न में मुक्त शिला अवश्य गढ़ लेगा और उसको अपना सिंहासन बनायगा।

जिसके मन में यह खूब जँच गया है कि मैं अपराधी, नीच, पापी हूँ, नरक के योग्य हूँ, वह स्वाभाविक ही नरक रूप स्वप्न का अधिकारी है।

प्रश्न—तुमने सब धर्मों के उद्दिष्ट लक्ष्य वा उद्देश्यों को केवल स्वप्न-विचार ही बना दिया, उनका उपहास कर रहे हो?

राम—नहीं प्यारे! राम के तो सब अपना आप ही हैं। वह किसी से लगावट की बात नहीं करता, मगर किसी भय और आशंका से झिझककर सत्य को छिपाना भी वह नहीं जानता। स्वर्ग, नरक आदि भोगते समय वैसे ही सत्य और वास्तविक प्रतीत होंगे, जैसे इस समय भूमि सत्य और वास्तविक दृष्टि में आ रही है। स्वप्न आते समय किसी को स्वप्न कभी झूठ भी ज्ञात हुआ है?

मतावलम्बियों को परस्पर लड़ने-झगड़ने की कुछ आवश्यकता नहीं कि हमारा स्वर्ग सच्चा है और तुम्हारा झूठा है, इत्यादि। जैसे एक ही कमरे में लेटे हुए दस मनुष्यों के लिये दस पृथक् - पृथक् संसार विद्यमान होते हैं और एक दूसरे में प्रवेश नहीं करते, और न एक दूसरे के बाधक होते हैं, वैसे ही ईसाइयों को अपने कल्पित स्वर्ग, मुसलमानों को अपनी इच्छा के अनुसार स्वर्ग, सच्चे प्रेमियों और विश्वासी भक्तों को गोलोक और वैकुंठ का आनंद, "मैं अधम, गुनहगार, पापी, अपराधी" के विचार में निमग्न महाशयों को नरक बिना खटके और बिना रोक-टोक प्राप्त होगा। जब अपने-अपने स्वर्ग या नरक के आनंद ले चुकेंगे, तो फिर पुनर्जाग्रति (resurrection) होगी; अपने-अपने कर्मों के अनुसार

स्थूल जगत् में नया जन्म होगा। किंतु सच पूछते हो, स्वर्ग और नरक भी तुम्हारा एक खेल है, और यह स्थूल जगत् भी तुम्हारी एक क्रीड़ा है, एकमेवाद्वितीयम् रूपी ज्ञान की मदिरा के मतवाले तो स्वर्ग की वाटिका, प्रज्वलित नरक और समस्त धरती-मंडल को तीन ग्रास करके आप ही आप रह जाते हैं।

दोज़ख बद रा बहिश्त मर नेकाँ रा।
जानाँ मारा व जाने-मा जानाँ रा॥ १॥

अर्थ—नरक बुरों (पापियों) के लिये है, और स्वर्ग अच्छों (पुण्यवानों) के लिये; पर प्यारा हमारे लिये और हमारा प्राण प्यारे के लिये है।

न हरफ़े-शिकवा मी ख़्वानम् न वस्ल अज़ हिज्र मी दानम्।
दिले-बेआरज़ू अफ़साना ओ अफ़सूँ चे मी दानद॥ १॥
ज़ुबाने - बुलबुलाँ आनाँकि मी दानंद मी दानंद।
कि ज़ाग़े-शूम दुश्मन नाज़ए-मौज़ूँ चे मी दानद॥ २॥
तपीदनहा चे मी दानद दिले - अफ़सुर्दा - ए - ज़ाहिद।
अदाए कावशे - नश्तर रगे - बेख़ूँ - चे मी दानद॥ ३॥
फ़लातूँ इल्लते - बेताबिए - मजनूँ चे मी दानद।
तो ईं हिकमत ज़ि लैला पुर्स, अफ़लातूँ चे मी दानद॥ ४॥
तग़ाफ़ुलहाय यूसुफ़ या ज़ुलेख़ा दीदमो - गुफ़्तम्।
कि तिफ़्ले-नाज़ परवर लज़्ज़ते-शबख़ूँ चे मी दानद॥ ५॥
गरामी खुमनिशीनी दीगरस्तो खुमकशी दीगर।
तू असरारे-ख़ुम अज़ मन पुर्स, अफ़लातूँ चे मी दानद॥ ६॥

अर्थ—न तो मैं कोई शिकायत की बात कहता हूँ, न मिलाप और वियोग में कोई विवेक करता हूँ, निष्काम चित्त भला जंत्र-मंत्र को क्या जानता है ? १॥

बुलबुलों की भाषा जो व्यक्ति जानते हैं, वे ही समझते हैं,

और अभागा कौवा (बुलबुल की) उपयुक्त ध्वनि को भला क्या जानता है ॥ २ ॥

संयमी पुरुप का बुझा हुआ दिल तड़पने को भला क्या जानता है, अर्थात् नहीं जानता। नश्तर के चुभने की अदा (चेष्टा) रक्त-हीन नस भला क्या जानती है ? ३ ॥

अफ़लातूँ मजनूँ की विह्वलता का कारण भला क्या जानता है, इस बुद्धि को तू लैला से पूछ, अफ़लातूँ भला क्या जानता है ? ४ ॥

मैंने यूसुफ़ की लापरवाहियाँ ज़ुलेख़ा के साथ देखीं और कहा कि नाज़परवर (लाड़ला) लड़का ख़ून की रात का मजा क्या जान सकता है ? ५ ॥

ऐ गरासी ! मटके पर बैठना और है और सोम (सुरा)-पान करना और, अर्थात् प्रेम का नाम लेना और है और प्रेम करना और है। तू मटके (प्रेम) का हाल मुझसे पूछ; अफ़लातूँ भला क्या जानता है ? ६ ॥

आवागमन—लाहौर के एक मनुष्य को स्वप्न आ रहा है कि "मैं गंगा-किनारे वाटिका में लेटा हूँ, सुगंधित वायु की लपटों से मस्तिष्क आमोदित हो रहा है, वासंती वायु के झोंके हृदय-कलिका को खिला रहे हैं, सितार-तबूरे के साथ रबाबी (गायक) लोग ज्ञान के गीत गा रहे हैं, गंगा-ध्वनि के साथ मिला हुआ उनका शब्द अत्यंत प्रफुल्लित प्रभाव डाल रहा है। विचित्र समा बँध रहा है। इस आनंद में उसकी आँख लग चली है, गुलाबी नींद में अर्धोन्मिषित लोचनों से राम के दर्शन हो रहे हैं। लो, अब मीठी नींद आई, बिलकुल सो गया। यह स्वप्न में स्वप्न है। फिर जाग पड़ा। सामने वही राम है, वही वाटिका है, वही गंगा, वही राग-रंग।" इतने में स्त्री ने आकर कंधा हिलाया। क्या देखता है कि लाहौर में अपने महल के एक कमरे में बिछौने पर सोया पड़ा हूँ।

स्वप्न के भीतर स्वप्न में उसके ख़याल का समष्टि अंग (object) जो गंगा, वाटिका, राग-रंग और रास के रूप में प्रकट था, बना रहा; किन्तु उसके खयाल का व्यष्टि अंग (subject) जिसकी बदौलत वह एक व्यक्ति (मनुष्य) बना हुआ था, लीन हो गया। स्वप्न में जाग पड़ने पर यह व्यष्टि अंग फिर प्रकट हुआ, तो समस्त व्यापार (गंगा, रास, वाटिका इत्यादि) को ज्यों का त्यों पाया। और जब स्त्री ने कंधा हिलाया तो समष्टि अंग (object) में जो व्यष्टि अंग (subject) था, वे दोनों स्वप्न और ख़याल-मात्र हो गये।

इस प्रकार जाग्रत् अवस्था में यह पर्वत, तारे, नदी आदि तुम्हारे खयाल की समष्टि अवस्था हैं, और 'मैं एक मनुष्य हूँ' तुम्हारे खयाल की व्यष्टि अवस्था है। जब अज्ञानी पुरुष मरता है, तो उसके ख़याल की समष्टि दशा (मूल-अविद्या) स्थिर रहती है, किंतु व्यष्टि दशा (तूल-अविद्या) लीन हो जाती है; इसलिये फिर जहाँ जन्म लेता है, वही भूमि, वही आकाश, वही पंचभूत विद्यमान पाता है। आवागमन के चक्कर में लगा रहता है। किंतु ज्ञानवान् वह है, जिसको श्रुति भगवती ने "एतद्वैतत्, एतद्वैतत्—यह वही है, यह वही है।" कहते-कहते कंधा हिलाकर जगा दिया है। उसके लिये व्यष्टि (तूल-अविद्या) और समष्टि (मूल-अविद्या) दोनों स्वप्न तथा खयाल-मात्र हो गए। यह "मेरा शरीर और है और यह संसार और है।" दोनों ही रेल की तरह उड़ गए, नहीं-नहीं शशक-शृंग हो गए। ऐसा महात्मा मुक्त है।

जिसके भीतर तेजस्वरूप 'अहं ब्रह्मास्मि' की अग्नि सदैव प्रज्वलित है। इस अग्नि-कुंड पर सिद्धासन जमाए हुए अचल भाव से विराजमान है, भीतर से यदि कोई द्वैत की फुरना या संकल्प उठता है, तो झट इस अग्नि की आहुति कर देता है,

बाहर से मन रूपी अश्व को चारों ओर खुला छोड़ दिया है। इस अश्व के पीछे अपने सेनापति विवेक (Discrimination) को भेज दिया है कि जहाँ-जहाँ से घोड़ा निकलता जाय, वह देश विजित होता जायगा। यदि कोई इस घोड़े को बाँध रक्खे, अर्थात् किसी वस्तु पर चित्त चलायमान हो, तो इसको "तत्त्वमसि" के तीरों से जय किया जायगा। जहाँ-जहाँ मन (घोड़ा) फिरा, वहाँ-वहाँ अपना आप देखा। राजा हो या दंडी हो, मर्द हो या रंडी हो, प्रत्येक का आत्मा, प्रत्येक का परमप्रिय अपना आप हो गये। धीरे-धीरे समस्त संसार को विजय कर लिया, कोई वस्तु भिन्न न रहने पाई, सब अपने हो गये। "सब मेरे, सब मेरे, और मैं सबका" यह मामला हो गया। मुझसे कुछ भी पृथक् न रहा। सब कामनाएँ आप-ही-आप मिट गईं—

यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः।

अर्थ—जहाँ-जहाँ मन जाता है, वहाँ-वहाँ समाधि लगती जाती है।

ज़े फ़र्श ता ब फ़लक कुजा कि मी निगरम्।
करश्मा दामने-दिल मीकशद कि जाय ईं जास्त॥

अर्थ—धरती से आकाश तक जहाँ मैं देखता हूँ (तेरी माया का) खेल मेरे मन के पल्ले को खींचता है और कहता है, अर्थात् समस्त जगत् मेरे ध्यान को खींचकर यह पाठ पढ़ाता है कि उस प्यारे सुहृद् का स्थान यहीं है।

इस प्रकार देश-विजय और विश्व-विजय करते-करते जब सेनापति (विवेक) और घोड़ा (मन) थककर घर आये, तो 'अहं ब्रह्मास्मि' की अग्नि से तनिक न हिलनेवाले पुरुष ने अपने इस अनुपम घोड़े को अत्यंत आनंद के साथ बलि देने के लिये काटना आरंभ किया, और मन रूपी घोड़े का अंग-अंग उसी

ज्ञानाग्नि में स्वाहा होता गया। ऐसा यज्ञ करने से संसार के राजे तो क्या, समस्त देवता, इंद्र, ब्रह्मा आदि भी वश में आ गये। आश्चर्य का अश्वमेध-यज्ञ था।

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
समं पश्यन्नात्मयाजी स्वराज्यमधिगच्छति॥ मनु०

अर्थ—सबमें अपने आपको देखनेवाला और अपने आपको सबमें देखनेवाला, ऐसा तत्त्वदर्शी जो आत्म-यज्ञ में लगा है, स्वराज्य का छत्र और स्वामित्व लाभ करता है।

किते वेसर चूड़ा पाई दा किते जोड़ा शान हुँडाई दा।
किते माथे तिलक लगाई दा किते सानूँ भी भुल जाई दा॥
क्या वाह वा रँग वटाई दा पर किस थीं आप छुपाई दा॥ १॥
वृंदावन में गऊ चरावें लंका चढ़के नाद बजावें।
मक्के दा बन हाजी आवें आपे ढौं ढौं ढोल बजावें॥
क्या वाह वा रँग वटाई दा पर किस थीं आप छुपाई दा॥ २॥
मंसूर तुसां वल आया है तुसां सूली पकड़ चढ़ाया है॥
मेरा वीर न बावल जाया है? तुसीं खून देयो मेरे भाई दा॥
हुन किस थीं आप छुपाई दा किस गल्लों रंग वटाई दा॥ ३॥
बुल्हाशाह हुन सही सँझाते हो हर सूरत नाल पिछाते हो।
किते आते हो, किते जाते हो हुन मैथों भुल न जाई दा॥
हुन किस थीं आप छुपाई दा।

जगत् को सच देखनेवाले प्यारो! जिस तराज़ से तुम संसार की वस्तुओं को तोलते हो, वह तराज़ू परमात्मा को नहीं तोल सकता; इस भारी वस्तु को तोलते समय वह टूट जाता है। ज्ञानी के वाक्य पर मन-वाणी से विश्वास लाओ, पूरा-पूरा निश्चय करो। ज्योतिषियों ने शास्त्र-दृष्टि से जब यह कह दिया कि पृथ्वी घूमती है, तो बच्चों को चाहे अपने आप घूमती हुई न भी दिखाई दे, फिर भी उनका यही पढ़ना-पढ़ाना उचित है कि

"भूमि गतिशील ही है"। जब अधिक शिक्षा पायँगे, अपने आप पूरे प्रमाणों के साथ क़ायल हो जायँगे। भूल का प्रचार बढ़ाना किसी प्रकार से भी ठीक नहीं।

शंकाकारक—हे राम ! यह तुम क्या ग़जब करते हो कि अच्छे-भले प्रत्यक्ष दिखाई देते संसार को तुम कहते हो कि मिथ्या है। जगत् के ब्याह, शादी, काम-धंदे, जवानी, रंग-ढंग आदि सबके सिर पर खड़े होकर 'राम राम सत्य है, हरि का नाम सत्य है।' यह शंख-ध्वनि करते हो। यदि जगत् नहीं, तो सामने दिखाई ही क्यों देता है ?

राम—मृगतृष्णा को देखकर अनजान मनुष्य कहा करते हैं कि यदि यह पानी नहीं है, तो दिखाई ही क्यों देता है ? कहीं रस्सी पड़ी हुई थी। एक मनुष्य को अँधेरे में भ्रांति के कारण साँप का अनुमान हुआ। वह कहता है कि यदि साँप नहीं, तो सामने दिखाई ही क्यों देता है ? ज्ञानी पुरुष का यह उत्तर है कि प्यारे, साँप तुझको इसलिये दिखाई देता है कि रस्सी तुझको दिखाई नहीं देती। वैसे ही "जगत् नहीं तो सामने दिखाई ही क्यों देता है ?" इस वाक्य का उत्तर यह है—"क्योंकि परमात्मा है, पर तुमको देखने में नहीं आता।" जब परमात्मा दिखाई देगा, तो जगत् अपने आप न रहेगा। चाहे भ्रांत मनुष्य को साँप ही दिखाई दे और रस्सी न दिखाई दे, पर वस्तुतः तो साँप कभी हुआ ही नहीं; वैसे ही प्यारे ! यद्यपि इस समय तुझे जगत् दिखाई दे, पर वास्तव में तो एक ब्रह्म ही ब्रह्म ज्यों का त्यों बिना परिवर्तन के निर्विकार और अपने निज तेज से प्रकाशमान है।

हिंदुओं के जितने संप्रदाय जगत् को सत्य मानते हैं, उनसे पहले यह प्रश्न है कि बताओ, किसी बात में अंधे की साक्षी अधिक विश्वास-योग्य होती है या आँखवाले की ?

प्रश्न दूसरा—आनंद-स्वरूप मुक्त पुरुष अंधे की भाँति होता है कि वास्तव में नेत्रवाला होता है ? फिर यह पूछना है —

प्रश्न तीसरा—यदि मुक्त पुरुष वास्तव में नेत्रवाला होता है, तो उसकी साक्षी (गवाही) निस्संदेह अधिक विश्वास-योग्य होगी कि नहीं ?

अब देखिए, सांख्य-शास्त्र के अनुसार मुक्त पुरुष के लिये 'कैवल्य' में जगत् कहाँ ?

योगशास्त्र के अनुसार मुक्त पुरुष के लिये 'असंप्रज्ञात' समाधि में जगत् कहाँ ?

न्यायशास्त्र के अनुसार मुक्त पुरुष के लिये 'अपवर्ग' में जगत् कहाँ ?

वैशेषिक शास्त्र के अनुसार मुक्त पुरुष के लिये 'निःश्रेयस' में जगत् कहाँ ?

अतः जब आँखें बन जाने पर, अर्थात् मुक्त अवस्था में जगत् नहीं रहता, तो बस मिथ्या ही है।

एक बालक को किसी ने दर्पण दिखाकर कहा कि इसमें 'काका' नन्हा (गीगा) रहता है। जब बच्चे ने दर्पण में दृष्टि की, तो तत्काल लड़का दिखाई दिया, जब दर्पण हाथ से छोड़ दिया, तो काका (नन्हा) कहीं न पाया। चित्त में संशय हुआ कि इस छोटे से दर्पण में लड़का किस प्रकार आ सकता है ? कदाचित् धोका ही हुआ हो। फिर देखा, तो दर्पण में मुखड़ा दिखाई दिया। अब तो पूर्ण विश्वास हो गया कि इसमें अवश्य लड़का रहता ही है।

किसी पढ़े-लिखे नातेदार ने आकर बताया कि दर्पण में कोई लड़का सचमुच नहीं रहता, यह केवल तुम्हारा भ्रम है। तब तो वह लड़का बड़े लाड़ और अभिमान के साथ जोर से कहने लगा

(दर्पण में झाँककर)—"यह लो, सम्मुख दिखाई दे रहा है कि नहीं ? प्रत्यक्ष । तुम कैसे कहते हो नहीं । हाथ कंगन को आरसी क्या है" ? शिक्षित नातेदार ने प्यारे बच्चे को यों समझाया ।

प्यारे ! जब तुम देखते हो, तो दर्पण में लड़का प्रकट हो जाता है, तुम इधर कहते हो "यह देखो, दर्पण में लड़का" उधर वह दर्पण में पड़ जाता है । दर्पण में लड़का दिखाना ही उसमें लड़का डाल देना है । तुम दर्पण में मत झाँको और लड़का दिखाओ तो सही ।

वैसे ही उन लोगों से जो प्रति समय मन-वचन से कूकते रहते हैं कि संसार बिलकुल सत्य है, प्रत्यक्ष ! राम बड़े प्यार से यह पूछता है कि प्यारो ! तुम अपने विचार को उस ओर मत ले जाओ और फिर संसार का एक परमाणु ही कहीं दिखा दो ।

तुम्हारा हाथ से संकेत करके अभिमान के साथ यह कहना— "वह देखो, सामने दिखाई दे रहा है", यह (कर्म) ही संसार को विद्यमान कर रहा है । तुम्हारा दिखाना और देखना ही संसार उत्पन्न करना है । तुम्हारे अस्तु से सब कुछ दिखाई देता है ।

जब तुम किसी सूक्ष्म विषय की छान-बीन में मग्न होते हो, तो यद्यपि आँखें खुली हों, सामने से चाहे जो निकल जाय, दिखाई नहीं देता ; कान बंद न हों, पर हल्ला-गुल्ला सुनाई नहीं देता । कारण यही कि तुमने उस ओर ध्यान नहीं दिया, तुम्हारी ओर से 'अस्तु' नहीं बोला गया । यदि रूप और शब्द तुमसे अलग कुछ अस्तित्व रखते हों, तो आँखें जो खुली थीं और कान भी जो खुले थे, दिखाई क्यों न दिए ? सुनाई क्यों न दिए ?

कुछ अनुयोगी महाशय जब सोते हैं तो आँखें खुली रहती हैं, कान तो सबके खुले रहते ही हैं, पर सामने की दीवार, छत, पेड़ आदि खुली आँखों को दिखाई नहीं देते ; साथ में साँप लेट जाय, मालूम नहीं पड़ता ; नक़्क़ारे बज रहे हों, सुनाई नहीं देते; कारण

यही कि ऐ आपत्तिकारक ! सबका अस्तित्व तेरे स्वरूप पर स्थिर है, तेरे 'अस्तु' का भिखारी है।

बाल्यावस्था में आँखें, कान और सब ज्ञान-इंद्रियाँ खुली होती हैं, किंतु छत, दीवार, घर, बाग, पुरुष, स्त्री, पशु, पक्षी आदि नाम-रूप कुछ नहीं होते, सुगंध और दुर्गंध कुछ नहीं। यदि ये वस्तुएँ साक्षी से भिन्न अस्तित्व रखती हों, तो बच्चे पर भी अपना अस्तित्व प्रकट कर देतीं। पर नहीं, हमारा साक्षी बनना और उनका विद्यमान होना दोनों सापेक्षक हैं, तुम्हारा देखना ही सृष्टि का प्रत्यक्ष होना है, दृष्टि ही में सृष्टि है, ज्ञाता और ज्ञेय पृथक्-पृथक् नहीं।

समीक्षक—(पत्थर को अँगूठे से दबाकर) यह देखो, शिला कैसी कठोर है, क्या मैंने इसे कठोर बनाया ?

उत्तर—हाँ ! तुम स्वयं इसे अँगूठे से बल के साथ दबाने में अपनी वृत्ति का जोर मार रहे हो, और कहते हो "कठोरता मुझसे पृथक् है"।

प्रश्न—हम मेडिकल कॉलेज में अनाटोमी (anatomy-शरीर-व्यवच्छेद-विद्या अथवा देह-संस्थान शास्त्र) पढ़ते हैं, तो क्या मनुष्य-देह में हड्डियों, पट्ठों आदि की बनावट हम बना आते हैं ? वह तो पहले ही विद्यमान होती है।

उत्तर—(१) मनुष्य-देह तुम्हारा है, किसी अन्य का तो नहीं। इस देह में हड्डियों, पट्ठों, स्नायुओं, नाड़ियों और मस्तिष्क की बनावट तुमसे हुई है कि कोई अन्य दख़ल देनेवाला था ? वही तुम प्रत्येक देह में हड्डियों, स्नायुओं, नसों और मस्तिष्क की बनावट के कारण हो। जब लाश को चीर-फाड़कर कॉलेज में अनुभव और निरीक्षण करते हो, तो अपने ही लगाए हुए बाग़ को आप देखते हो, अपने ही घर की स्वयं परीक्षा करते हो।

(२) अस्तु, इस बात को जाने दीजिए। खूब ध्यान करके बताओ कि रक्त का हरएक बूँद और शरीर की बोटी-बोटी, हड्डी का किनका-किनका, चमड़े का खंड-खंड तुम्हारे खयाल (वृत्ति) और ध्यान से निकलते हैं कि मरे हुए शव से ?

एक मनुष्य के हाथ में लालटैन (lantern) थी। वह जहाँ जाता था, उजाला-ही-उजाला कर देता था। आनकर कहने लगा कि सड़क पर तो रंग-रंग की मीनाकारी हो रही है। वैसे ही प्यारे ! जब तुम वनस्पति-शास्त्र आदि पढ़ते हो, तो सब पौदों और फूलों में शोभा तुम्हारी लालटैन से आ जाती है। तुम्हारा ही प्रकाश, रंग-रूप चौकोर, गोल होकर दिखाई देता है। कैलिक्स (Calyx-पुष्प गर्भ वा पुष्प कोष) दृष्टिगत हुआ, तो तुम्हारी ही वृत्ति थी; कोरोला (Corolla-पुष्प का भीतरी गर्भ वा कोष) निकला, तो तुम्हारी लालटैन से ; स्टेमन (Stamen, केसर) दिखाई दिया, तो तुम्हारा ही विकास था, स्टाइल (Style-पुष्प-शलाका) और पोलन (Pollen-पराग) को निरीक्षण करते समय तुमने अपना प्रकाश तनिक आगे बढ़ा दिया। समस्त सुमन तुम्हारा खयाल था, अंश तुम थे, संपूर्ण तुम थे।

चमन में सरव कहते हैं तुम्हारे साया-ए-क़द को।
फ़लक पर चाँद रक्खा नाम अक्से-रूए-ताबाँ का॥

इस वास्तविक बात (Stern reality, patent fact) को भूल जाना, अपने आपसे बेसुध होकर बाहरी वस्तुओं का दीन होना किसलिये ?

प्रश्न—तो क्या आदि-अंत, महाप्रलय भी मैं बना आया हूँ। मैं परिमित जीव क्या कर सकता हूँ, कुछ समझ में नहीं आता।

उत्तर—स्वप्नावस्था में स्वप्न का भूत और भविष्य तुम्हारे

ख़याल में होता है कि बाहर से किसी और शक्ति के अधीन होता है ? स्वप्न में एक व्यक्ति से भेंट हुई, उसके पिता-माता सात पीढ़ी तक तुम बनाते जाओगे, किंतु वे सब तुम्हारे ख़याल में विद्यमान हैं। इसी प्रकार जो कुछ दृष्टिगोचर होता है, यह तुम्हारा ख़याल है सहित उसके भूत और भविष्य के।

स्वप्नावस्था की वस्तुएँ उसी समय उत्पन्न होकर दृष्टि-गोचर होने लगती हैं, पर स्वप्न देखनेवाले को ऐसी भान होती है कि मेरी उत्पत्ति से वे पहले की हैं। यद्यपि वे उसी समय उत्पन्न होती हैं, पर भ्रांति से ऐसा समझा जाता है कि पहले पैदा हुई थीं। ठीक इसी प्रकार जाग्रत् अवस्था के सामान और उनका ज्ञान भी दोनों एक ही समय उत्पन्न होते हैं, किंतु अविद्या के ज़ोर से उन वस्तुओं के संबंध में यह ख़याल भी साथ ही उत्पन्न होता है कि इन वस्तुओं को थिरता है, अर्थात् यह ख़याल कि ये वस्तुएँ वे ही हैं, जो पहले देखी थीं।

हिंदुस्तान का नक़्शा स्कूल के कमरे में लटकाकर विद्यार्थी देख रहे हैं, बदरिकाश्रम उत्तर में है, शृंगेरी दक्षिण में है, जगन्नाथ पूर्व में है, द्वारका पश्चिम में है, गंगा बंगाल की खाड़ी में गिरती है, सिंधु अरब के समुद्र में, इत्यादि। प्यारे विद्यार्थियो ! कहीं इंस्पेक्टर साहब (परीक्षक) के भय के मारे इस बात को न भूल जाना कि नक़्शे पर के काशी, हरद्वार, रामेश्वर आदि केवल तुम्हारे ख़याल से कल्पित हैं, और न केवल ये स्थान काग़ज़ के तख़्ते पर कल्पना किए हुए हैं, वरन् उनके सम्बन्ध, दूरी, उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम, रेखांश (Longitude) और अक्षांश (Latitude), थल, जल आदि भी नक़्शे में कल्पित हैं। पाठक ठीक इसी रीति पर जाग्रत् अवस्था का नक़्शा खोलते ही न केवल चित्र-विचित्र वस्तुएँ तुम्हारी माया से प्रकट हो आती हैं, वरन् उनके संबंध जैसे 'पहिले पीछे होना', 'कारण और कार्य

होना', 'नया या पुराना होना', 'निकट या दूर होना', ये भी साथ के साथ ही 'प्रकट हो आते हैं'। 'यह पाँच सौ वर्ष का वट का वृक्ष है', इसमें न केवल वट तुम्हारी दृष्टि से पैदा होता है, वरन् उसके पाँच सौ या सात सौ बरस भी तत्काल ख़याल से झरते हैं। इस रीति पर न केवल संसार तुम्हारा ख़याल-मात्र है, वरन् संसार का आरंभ (आदि-अनादि) भी तुम्हारी कल्पना है; नहीं-नहीं! जगत् तो अनादि है, इसका आरंभ तो कभी हुआ ही नहीं, निस्संदेह जगत् अनादि है, प्यारे! स्वप्न की दृष्टि को कभी स्वप्नावस्था आरंभवाली भी मालूम हुई है? स्वप्न देखते समय स्वप्नावस्था सदैव अनादि होती है। ज्ञान की सच्ची जाग्रति आने तक जगत् ठीक स्वप्न की भाँति अनादि प्रतीत होता है। और क्यों न हो? जगत् स्वप्न ही तो है।

इश्क़ चूँ सायबाँ बसहरा ज़द।
अज़ अज़ल ता अबद कशीद तनाब॥

अर्थ—जब इश्क़ (प्रेम) ने अपना डेरा जंगल में लगाया, तो उसने आदि से अंत तक रस्सी तानी।

एक काग़ज़ पर नदी का चित्र है, इधर-उधर अत्यंत सुन्दर हरे-भरे किनारे हैं, बीच में नाव चल रही है, नाव में राजा साहब बैठे हैं, राग सुन रहे हैं, छोटा कुँवर राजा साहब के बग़ल में खेल रहा है। अब देखिए, कुँवरजी के पिताजी तो महाराज हैं, किंतु क्या कुँवर और क्या महाराज, क्या नाव और क्या नदी, सबका पिता (उत्पन्न करनेवाला) चित्रकार का ज़िहन (ख़याल) है। इसी प्रकार संसार का बाबा तो आदि मनु या आदम ही सही, किंतु प्यारे! सृष्टि और उसके बाबा आदम की इस सब चित्र का बाबा तू है, संसार की नौका तेरे अंतःकरण (ख़याल) में है, और नौका का माँझी तेरी आज्ञा (अस्तु) से प्रकट होता है।—

मैंने माना दहर को हक़ ने किया पैदा, वले ।
मैं वह ख़ालिक़ हूँ मेरी कुन से ख़ुदा पैदा हुआ ॥

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ।
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक् साम यजुरेव च ॥
(गीता, ९-१७)

I am—of all this boundless Universe—
The Father, Mother, Ancestor, & Guard !
The end of Learning ! That which purifies
In lustral water ! I am Om ! I am
Rig-Veda, Sama-Veda, yajur-Veda ;
(Sir Edwin Arnold)

अर्थ—मैं इस अनंत सृष्टि का पिता, माता, पितामह और रक्षक हूँ, और ज्ञान तथा पवित्रता का परिणाम हूँ, या जानने योग्य और शुद्ध करनेवाला जो 'ओ३म्' (प्रणव) है, वह मैं हूँ; ऐसे ही ऋक्, साम और यजुर्वेद मैं हूँ (या ऐसे ही ऋचाएँ वैदिक गीत और यजुस् मंत्र सब मैं हूँ) ।

मनोदृश्यमिदं द्वैतं यत्किंचित्सचराचरम् ।
मनसो ह्यमतीभावे द्वैतं नैवोपलभ्यते ॥ (गौड़पाद)

अर्थ—यह सब और चर-अचर रूपी द्वैत तभी तक है, जब तक मन देखनेवाला बना है, मन के शांत हुए द्वैत की गंध शेष नहीं रहती ।

अनेन जीवेनात्मनाऽनुप्रविश्य नामरूपे
व्याकरवाणीति ॥ (सामवेद छांदोग्योपनिषद्)

अर्थ—इन शरीरों में प्रविष्ट होकर जीवात्मा के भेद से भिन्न-भिन्न नाम-रूपों को प्रकट करूँ ।

भारी शंका—टेनिसन (Tennyson) ने एक स्थान पर लिखा है—

I am a part of all that I have met, अर्थात् "जो

कुछ मैंने देखा या सुना, मैं स्वयं उसका एक उत्तमांग था।" निस्संशय यह वाक्य तो स्वीकार-योग्य है, क्योंकि कोई वस्तु अनुभव नहीं हो सकती, जब तक कि हम उसके अस्तित्व में एक वृहत् अंश (ज्ञाता) न बनें। किंतु तुम्हारा यह कहना कि जो दिखाई देता है, सब "मैं ही मैं हूँ" विश्वास का पल्ला तोड़ता है। देखिए! वस्तुओं के दृष्टिगोचर होने में न केवल तुम्हारा देखना आवश्यक है, वरन् तुम्हारे शरीर से बाहर किसी अस्तित्व का विद्यमान होना भी अत्यन्त आवश्यक है। यदि सम्मुख कुछ न होगा, तो तुम्हें पत्थर, नदी, मकान आदि कभी दृष्टिगोचर न होंगे। यदि तुम्हारी श्रवणशक्ति पर कोई बाहर से प्रभाव डालनेवाली शक्ति विद्यमान न होगी, तो लाख कान खोल-खोलकर पड़े ध्यान धरो, कुछ सुनाई नहीं देने का; यदि तुम्हारा ही खयाल सब कुछ है, तो पानी का ध्यान जमाने से प्यास क्यों नहीं बुझा लिया करते? प्रकृति का नियम है कि जब कहीं किसी प्रकार की क्रिया (action) होती है, तो साथ उसकी प्रतिक्रिया (re-action) भी अवश्य होती है। जब तुम पत्थर को दबाते हो, तो उधर आपकी उँगली भी उतनी ही दबती है। घोड़ा गाड़ी को चलाता है, गाड़ी घोड़े के अंगों और नसों को हिलाती और शिथिल कर देती है, झट थका देती है। रगड़ से जब आग निकलती है, तो दियासलाई डिबिया की रेग पर काम करती है, डिबिया की रेग दियासलाई पर वैसी ही प्रतिक्रिया करती है। एक हाथ से ताली भी तो नहीं बजा करती। कुरसी तुम्हारे शरीर पर काम कर रही है, गिरने से रोक रही है, दबाव के कारण तुम कुरसी पर प्रतिक्रिया कर रहे हो, उसे कमज़ोर और ढीला कर रहे हो।

गर हुस्न नहीं, इश्क़ भी पैदा नहीं होता।
बुलबुल गुले-तस्वीर पै शैदा नहीं होता॥

रंगा-रंग के चित्र-विचित्र पदार्थ दिखाई देने में भी (action) क्रिया और (re-action) प्रतिक्रिया दोनों का होना आवश्यक है। यदि कान, आँख, नाक आदि पर बाहर से कुछ प्रभाव न पड़े, तो भी कछ अनुभव न होगा। और यदि भीतरी शक्ति काम न करे, तो भी भाँति-भाँति की वस्तुएँ महांधकार में रहेंगी। जैसे इधर डिबिया की रेग और उधर दियासलाई के मसाले की रगड़ से आग प्रकट हो आई, वैसे ही यह सरू का बूटा सरू के रूप में बाहर-भीतर से क्रिया और प्रतिक्रिया की बदौलत मौजूद हो आता है।

राम—आपके मुख में गुलाब देकर बात काटता है—नहीं, आपकी बात को पूरा करता है। सुनिये, शक्ति की खान वा इनर्जी (चेतनता) के स्रोत को "चेतन" नाम दिया गया है।

ईद का चाँद चाँद के रूप में तब प्रत्यक्ष होता है, जब मेरा खयाल वहाँ लड़ता है, किंतु खयाल लड़ने से पहले चाँद के स्थान पर कुछ न कुछ अवश्य था, जिसने दृष्टि पर प्रभाव डाला।

क्या यह चाँद था ? कदापि नहीं; चाँद तो ख़याल लड़ने के पीछे प्रकट हो आया, ख़याल लड़ने से पहले इसके अस्तित्व के विषय में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि यह प्रभाव (तासीर वा संस्कार) का स्रोत है, अतः इसको चेतन कहना ठीक है (ईद का कारण तो चेतन ही है)।

इसी तरह मन्दिर मन्दिर के रूप में तब विद्यमान होता है, जब तुम्हारी ओर से प्रतिक्रिया (re-action) ध्यान के रूप में होती है, नहीं तो वस्तुतः पहले चेतन ही चेतन है।

कीर्तन कीर्तन के रूप में कब पैदा हुआ ? जब तुमने खयाल का श्वास फूँका। क्या पहले यह नहीं था ? नहीं; क्रिया का कर्त्ता वा स्रोत चेतन ही चेतन था।

सुमन और सुगन्ध सुमन और सुगन्ध के रूप में कब प्रत्यक्ष हुए ? जब तुमने सूँघा, अन्यथा वास्तव में चेतन ही चेतन था।

सेब और अंगूर सुस्वादु कब थे ? जब तुमने ध्यान किया, अन्यथा चेतन ही चेतन है।

रेशम इतना नरम और साफ़ कैसे हुआ ? तुम्हारे स्पर्श के कारण, अन्यथा चेतन ही चेतन है।

प्रश्न—माना कि हमारे ध्यान देने के बाद चाँद या गंगा दृष्टिगोचर हुई, किंतु हम क्योंकर कह सकते हैं कि चाँद और गंगा पहले से ही विद्यमान न थे ?

उत्तर—पदार्थ पदार्थ के रूप में तब उपस्थित हुआ, जब बाहर से चेतन की क्रिया का तुम्हारे भीतर से (ध्यान और वृत्ति के रूप में) उत्तर मिला। जैसे शीशे में छाया केवल तब प्रत्यक्ष हुई, जब शीशे में मुँह देखा गया। शीशे में मुँह देखने से पहले तुम्हें कोई अधिकार नहीं कि दर्पण में कपोलों के अस्तित्व की कल्पना कर लो।

पंजाब के एक गाँव के बाहर रात के समय देहाती लड़कों ने खेलते-खेलते बाज़ी बदी कि जो लड़का इस समय मरघट में जाकर एक खूँटी गाड़ आये, उसको बहादुरी मानेंगे। एक बनिये का लड़का शेखी के मारे तैयार हो गया और मरघट की ओर चला। चला तो सही, पर मारे भय के जान मुट्ठी में आ रही थी। हृदय धड़क रहा था। पहले तो समाधियों (क़ब्रों) के कत्तों को अँधेरे में देखकर डरा, जंगल की सनसनाहट से भयभीत हुआ। फिर जब लकड़ी (खूँटी) को पत्थर से ठोंकने लगा, तो भय और गड़बड़ाहट ने व्याकुल कर दिया था, उसकी धोती का पल्ला खूँटी की नोक में फँस गया। खूँटी को ठोंकते-ठोंकते धोती भी भूमि में धँसती गई। जब अत्यंत शीघ्रता से लौट जाने को उठा, तो कपड़ा बड़ी कड़ाई से खिंचा। भ्रम से

भयानक रूप तो पहले ही आँखों के सामने नाच रहे थे, कपड़ा पकड़ा गया देखकर विवश हुआ चिल्लाने लगा, ज़ोर से चीखें मारने लगा, पर मुँह से केवल भू .....भू .. ..ही निकला था कि मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। यह भूत बाहर से आया कि भीतर से ?

ऐ ग़रीब ! भूत का स्वामी (शिवशंकर) तू ही है। जिन्न तेरी आँख से उत्पन्न हुआ, तेरे संकेत से विद्यमान हुआ है, कपड़ा भी किसी अन्य ने नहीं पकड़ा, तूने स्वयं भूमि में गाड़ा है, अपनी की हुई करतूत पर हल्ला मचाना क्या अर्थ रखता है ? यही हाल उन लोगों का है, जो अज्ञान की अँधेरी रात में विषयों की समाधियों पर शेख़ी (vanity) के मारे खूँटी गाड़ना चाहते हैं, भीतर से चित्त विस्मित हुआ जाता है, इन्द्रियाँ शिथिल हुई जाती हैं, तथा उधेड़-बुन में हैं, पर बाहर से चोट पर चोट लगाये जाते हैं, मोह और काम की खूँटी गाड़े जाते हैं, यह देखते ही नहीं कि ऐसा करने से अपनी सच्ची प्रतिष्ठा को मिट्टी में मिला रहे हैं और अपने आपको स्वयं बन्धायमान कर रहे हैं। पत्तों की खरखराहट से, हवा की सरसराहट से दम में दम नहीं रहने पाता। कभी-कभी चौंक पड़ते हैं "हाय राम ! हे भगवान् ! मारे गए ! लूटे गए !" और विषयों के समाधिस्थान (क़ब्रस्तान) से लौटते समय तो मानो भारी वसोट और रगड़ से दुःख पाते हैं।

ऐ ब्रह्मज्ञान के उत्तराधिकारियो ! तुम अपने ही भ्रम की कील से मत जकड़े जाओ। तुम्हें कोई खींचनेवाला नहीं। यह पंचभूत (पंचतत्त्व) तुम्हारे बनाये हुए हैं। झिझक और भय को दूर कर दो, तुम्हारे खूँटी गाड़ते-गाड़ते भूत प्रत्यक्ष होता गया, पहले कोई भूत न था।

प्रश्न—जब हमने देखा, तो चाँद या गंगा दिखाई दिये, अब क्या हम अनुमान से नहीं कह सकते कि वहाँ पहले भी चाँद और गंगा ही मौजूद थे ?

उत्तर—अनुमान यहाँ क्योंकर चल सकता है, व्याप्ति (middle term) कहाँ से लाओगे ? उदाहरण कैसे उत्पन्न करोगे ? जो वस्तु है, वही चेतन है, तुम्हारे देखने से वस्तु बनी है।

प्रश्न—आप क्योंकर कह सकते हैं कि यह दीवार मेरे ख़याल (प्रतिक्रिया) के कारण बनी है, और केवल "दृष्टिरेव सृष्टिः"—दृष्टि ही सृष्टि है ? मैं इसको हाथ से अनुभव कर सकता हूँ, इसे थपकारकर आवाज़ सुन सकता हूँ, जीभ से चाट सकता हूँ, नाक से सूँघ सकता हूँ।

उत्तर—आँख की राह तुम्हारी वृत्ति दीवार का रूप बनती है, त्वच् के रूप में तुम्हारी वृत्ति कोमल या कठोरपन हो आती है, श्रोत्र के रूप में तुम्हारी वृत्ति दीवार की आवाज़ बन निकलती है, घ्राण की अवस्था में तुम्हारी वृत्ति ही गन्ध अनुभूत होती है। इसी प्रकार रस रस के रूप में बाहर से नहीं आता।

प्रश्न—यदि हमारे ख़याल से सब प्रकट हो आता है, तो हम जहाँ चाँद देख रहे हैं, हमारे कहने से वहाँ सूर्य क्यों नहीं दिखाई देता ? जिसको आज हमने कॉलेज देखा है, वह कल गंगा क्यों नहीं नज़र आता ?

उत्तर—(१) यही तो आप कहते हैं न कि "जिस स्थान पर चाँद नज़र आता है, उस स्थान पर सूर्य क्यों नहीं दिखाई देता ?" इस वाक्य (proposition) का तनिक व्यवच्छेद (analyse) कीजिये। आपके इस वाक्य से स्पष्ट पाया जाता है कि "स्थान" (देश) हमारे विचार से बाहर कोई वस्तु है, स्थान को आपने पृथक् काग़ज़ समान स्वीकार किया है, जिस पर ख़याल के चित्र हमारी वृत्ति (मस्तक) से निकल सकती हैं।

इसी प्रकार "जो आज कॉलेज है, वह कल गंगा क्यों नहीं हो जाता ?" इससे स्पष्ट है कि आपने काल (आज या कल

आदि) को हमारे अधिकार से बाहर स्वीकार किया है और केवल संकल्पित पदार्थों का हमारे ख़याल में होना माना है।

अतः यह प्रश्न आपका स्पष्ट कर रहा है कि आपने वेदान्त के सिद्धान्त को समझा ही नहीं। वेदान्त तो यह बतलाता है कि न केवल चाँद न सूर्य और कॉलेज व गंगा मेरे अन्तःकरण से निकलते हैं; वरन् स्वयं देश और काल भी मेरी दृष्टि-सृष्टि प्रत्यक्ष हैं।

अपनी ओर से तो आपने वेदान्त का सिद्धान्त (मन्तव्य) अतीव असंगत (preposterous) समझकर प्रश्न किया था, किन्तु इस प्रश्न से आपकी भ्रांति टपकती है। यह भ्रांति नहीं कि आपने जो वेदांत के मत (सिद्धान्त) का अंदाज़ा (तख़मीना) लगाया, वह असली सिद्धान्त से अधिक है; वरन् भूल यह है कि आपका अंदाज़ा सच्चे सिद्धान्त से बहुत ही कम है, और इसी भ्रांति पर निर्भर आपका प्रश्न है। यदि वेदान्त का सिद्धान्त वास्तव में वैसा ही परिच्छिन्न (देश-काल के बन्दीघर के भीतर स्वाधीन होने का) हो, जैसा कि आपके ध्यान में आया है, तब तो आपका प्रश्न चल सकता है; किन्तु इस तत्त्व के साम्राज्य में तो चूँ-चरा (क्यों-कब) की गति नहीं।

वेदान्त यह उपद्रव नहीं करता कि सर्वशक्तिमान् का अर्थ करे वह देश-काल से परिच्छिन्न जीव, जो अन्य (देशकालानवच्छिन्न) सजातियों पर मेट (mate टिंडैल) का अधिकार रखता हो। मैं तो वह सर्वशक्तिमान्, अपरिच्छिन्न, पवित्र आत्मा हूँ कि न केवल चाँद, सूर्य, गंगा, कॉलेज को आँख की झपक में उत्पन्न करता हूँ, वरन् इनका आदि, अंत, अन्य शरीर और उनके पारस्परिक संबंध तथा ये सब प्रश्न और उत्तर, समस्त देश-काल, क्यों और कब, मैं ही मैं हूँ। आश्चर्य और विस्मय-स्वरूप यह सब संसार मेरा चमत्कार है।

इस रहस्य को न समझने का कारण प्रायः यह होता है कि शब्द 'मैं' का लक्ष्यार्थ सर्व-साधारण की समझ में झटपट नहीं आता; वे बार-बार इस शब्द 'मैं' के अर्थों में गड़बड़ कर जाते हैं। 'मैं' का अर्थ जूती और पगड़ी के बीच में विद्यमान नहीं है। 'मैं' की सीमा साढ़े तीन हाथ नहीं, 'मैं' की चौहद्दी निस्सीम है। जैसे स्वप्न में इस 'मैं' के भीतर इधर एक व्यक्ति भिक्षुक या सम्राट् बन जाता है (व्यष्टि), उधर देश, मैदान, पर्वत और नदी उपस्थित हो जाती है (समष्टि); वैसे जाग्रत् में इस एक 'मैं' के भीतर इधर (subject) एक व्यक्तिपन (individual) प्रकट हो जाता है, उधर सारा संसार (object) प्रकट हो जाता है। इधर देश काल वस्तु (forms of thought) एक व्यक्तिमात्र (subject) के भीतर (मस्तिष्क में) उग पड़ते हैं, उधर संसार-भर में मौजूद हो आते हैं।

स्वप्न में यदि आप सिंह से दब जाते हो, तो क्या सिंह आपका स्वप्न-विचार नहीं था? इधर अधीन (दबा हुआ) शरीर आपका ख़याल था, उधर आक्रमणकारी सिंह आपका स्वप्न था। वस्तुतः आपके अपने आपमें सब कौतुक कल्पित है। जागो, अपने आपमें तुम्हीं सर्वशक्तिमान्, शुद्ध, चेतन, देश, काल के कर्त्ता-हर्त्ता हो।

प्रश्न—बात-बात में आप तो एक स्वप्न का उदाहरण ठूँस देते हैं। योरपियन फ़िलासफ़र तो इसको पसंद नहीं करते।

उत्तर—अच्छा! हम स्वप्न की चर्चा न किया करेंगे। आप और आपके गुरु योरपियन पण्डित स्वप्नावस्था में प्रतिदिन निरन्तर मारे-मारे फिरना ही बन्द कर दें।

बड़े आश्चर्य की बात है। आठ-नौ बजे तक तो प्रतिदिन स्वप्न में झूठ को सच मानकर कहीं के कहीं, व्याकुल और फ़ुटबाल के गेंद की तरह लुढ़कते फिरते हैं, और दस बजे जागकर

फिर दूसरे स्वप्न (संसार) के चक्कर में ऐसे फँसते हैं कि वाह्य विषयों (empirical phenomenon) की भूल-भुलैया में ग्रस्त होकर एक वास्तविक बात (stern reality, solid fact) का नाम लेना भी अंगीकार नहीं कर सकते। स्वप्न में यदि ऐसा मालूम हो जाय कि यह स्वप्न है, तो वह स्वप्न नहीं रहता, जाग आ जाती है। सर्व-साधारण योरपियन लोग और उनके चेले-चाँटे कुछ हिंदू यदि इन्द्रिय-जन्य विषयों के स्वप्न और ख़याल-मात्र होने का चर्चा सुनकर हँस देते हैं, तो उसके ये अर्थ हैं कि उनको जागना बुरा जान पड़ता है। स्वप्न का शशक बनने में स्वाद लेते हैं, रात से विशेष प्रीति रखते हैं और अँधेरे में चलना-फिरना पसंद करते हैं।

आधे संसार पर सब समय रात रहती है, और आधे जगत् में दिन। दूसरे शब्दों में आधा जगत् प्रति समय स्वप्न में रहता है। और, स्वप्न तथा सुषुप्ति का साम्राज्य विश्वव्याप्त होने से कुछ संशय नहीं। बड़े आश्चर्य की बात है कि योरपवालों ने आत्मा का तत्त्व-वर्णन करते समय स्वप्न और सुषुप्ति को किसी गणना और पंक्ति में नहीं लिया, और अपूर्ण (hypotheses, data) बुन्याद पर अपने पुराने तत्त्व-ज्ञान को चलाना चाहा है। प्रश्न की शर्तों को अधूरा रखकर तात्त्विक ग्रन्थि को हल किया चाहते हैं। जाग्रत् के स्थूल शरीर और प्रत्यक्ष संसार में पाश्चात्य लोगों की दौड़-धूप निस्संदेह एक दृष्टि से प्रशंसा-योग्य है, किंतु मानसिक संसार और सूक्ष्म शरीर में उनके अनुसंधान का बहुत कम प्रवेश है। आत्म-अनुभव और आत्म-साक्षात्कार का उनके यहाँ पता नहीं मिलता। धर्म का पैग़म्बर (Prophet) योरप में अभी तक एक भी उत्पन्न नहीं हुआ। संसार के जितने धर्म के पैग़म्बर (नेता वा संस्थापक) हुए हैं, सब के सब एशिया से ही निकले हैं।

निदान, विशेष समयों पर सच तो प्रत्येक की जिह्वा से निकल ही जाता है। शेक्सपीयर (Shakespeare) कहता है—

"We are such stuff as dreams are made of"

अर्थात्, हम उस तत्त्व से बने हुए हैं, जिससे स्वप्न बने हैं।

टेनिसन (Tennyson) लिखता है—

"Dreams are true while they last, and do we not live in dreams ?"

अर्थात्, स्वप्न सच्चे या असली होते हैं, जब तक कि वे रहते हैं, अर्थात् जब तक स्वप्न की अवस्था वर्तमान रहती है, वह स्वप्न सच्चा वा असली ज्ञात होता है, और क्या हम स्वयं स्वप्न में नहीं रहते ?

प्रश्न—देश, काल, वस्तु तो नित्य और स्थिर हैं। अन्य वस्तुएँ परिवर्तित होती हैं, ये परिवर्तित नहीं होते। शेष सब वस्तुयें देश, काल, वस्तु के द्वारा वर्णन की जाती हैं। सब व्यवहार इत्यादि का निर्भर इन्हीं पर है। आप देश, काल, वस्तु को अन्य वस्तुओं के समूह में क्यों गणना करते हैं ?

उत्तर—आप यह बतलाइए, तुम्हारे देश, काल, वस्तु का नित्य और स्थिरपन स्वप्न और सुषुप्ति में कहाँ जाता है ? जाग्रत् के अनुभव को सत्य स्वीकार करते हो, पर क्या सुषुप्ति तुम्हारी वैसी ही, वरन् जाग्रत् से भी बढ़कर बलवान्, अवस्था नहीं है ? सुषुप्ति का तुम पर क्या अधिकार नहीं है ? जितनी देर जाग्रत् अवस्था रहती है, लगभग उतनी ही देर सुषुप्ति का राज्य रहता है। बाल्यावस्था का काल तो सब-का-सब एक लंबी सुषुप्ति होता है, मृत्यु के पश्चात् बहुत देर सुषुप्ति का राज्य रहता है। इस सुषुप्ति के अनुभव को किसी गणना-पंक्ति में न लाना न्याय की हत्या करना है। सुषुप्ति तुम्हारी मुश्कें कसकर, हाथ-पाँव बाँधकर

यह पाठ नित्य पढ़ाती है कि देश, काल, वस्तु सत्य नहीं, सत्य नहीं, केवल देखने-मात्र हैं, दिखावटी हैं।

पोल निकाल्यो जगत् का, सुषुप्त्यवस्था माँहि।
गाल रूप संसार की, जाँहि गंध भी नाँहि॥

यदि स्वप्न और सुषुप्ति के अनुभव को आप जागकर कह देते हो कि यह झूठ है, तो जाग्रत् के अनुभव को भी झूठ कह देना आवश्यक है; क्योंकि स्वप्न और सुषुप्ति के विश्वास से यह भी उड़ जाता है। जाग्रत् का जगत् यदि सच्चा होता, तो सुषुप्ति अवस्था में भी बना रहता, क्योंकि 'सत्य तो वह है, जो सदा एक रस, स्थिर और विद्यमान रहे'।

"एकरूपेण ह्यवस्थितो योऽर्थः स परमार्थः।"

(शांकर शारीरिक भाष्य २-१-११)

यह जो आपने कहा कि अन्य वस्तुओं की अपेक्षा देश, काल, वस्तु नित्य और स्थिर हैं, इसी से तो कैंट (Kant) ने सिद्ध किया है कि देश, काल, वस्तु केवल कल्पित (खयाली) हैं। हाँ, यदि व्यवहार में इनके अन्य पदार्थों की अपेक्षा नित्य और स्थिर मान लिया जाय, तो उस पर सुनिएगा—

रेखागणित (Analytical Geometry) में समस्त बिंदु, समस्त रेखाएँ, समस्त धरातल और समस्त पदार्थों के भुजयुग्म सीमाएँ (Coordinates) कल्पित अक्षों (axis) के विचार से स्थिर और नियत होते हैं। सब साध्य और प्रश्न इन्हीं अक्षों पर निर्भर होते हैं। सब प्रश्न इन्हीं अक्षों (axis) की बदौलत हल होते हैं। रेखागणित के समस्त अभ्यास इन्हीं अक्षों पर अवलंबित होते हैं। यह सब कुछ तो सही, किंतु बोर्ड पर डस्टर (झाड़न) फेरा, तो "जित्थे गई सोहनी ओथे महींवाल" मजेदार हिंदसों के आकार, चित्र-विचित्र वक्र रेखाएँ (Curves), शंकुच्छिन्न (Conic Sections), कातन्वली (Catenary),

घाताङ्कगणन (Logarithms), अवलूत, अनवलूत (evolutes, involutes) अर्थात् अनुवक्र कैन्द्रिक, वक्र कैन्द्रिक, सर्पिल (spirals), ये सब-के-सब अक्षों (ध्रुवों) को अपने साथ ही ले मरे। जहाँ नाव डूबी, खेने के औज़ार चप्पा, बाँस आदि भी साथ ही निमग्न।

मेरे प्राणप्रिय! तेरे श्यामसुंदर स्वरूप के बोर्ड पर अविद्या की खरियामिट्टी से अनेक प्रकार के रूप (चित्र) खिंचे हुए हैं, कई प्रश्न हल हो रहे हैं, कई अज्ञात रूप क्ष, त्र, ज्ञ संचित हैं, असंख्य ज्ञात परिमाणों (known quantities) की भरमार है। अन्ततः हल करते-करते गणित के तत्त्वशास्त्र ने सिद्ध कर दिया है कि—

क्ष (देश) = १
त्र (काल) = १
ज्ञ (वस्तु) = १

हाँ ठीक है, बिलकुल दुरुस्त है। देश-काल-वस्तु का भेद मुक्त देशकालानवच्छिन्न और सर्व-क्रिया-रहित में कहाँ?—

सत्यमित्येतावदिदं सर्वमिदं सर्वमसि।

ऋग्वेद की श्रुति का उपदेश है—"इस वाणी से सच कहा जाता है, जो कुछ कि यह सब है, यह सब तू है।" अब सुख से बग़लें बजाओ. आनंद करो। बोर्ड को साफ़ करो और ध्रुवों (अक्षों) को भी साथ ही मिटा दो। चलो पास! पास हो गये। धन्य हो! यद्यपि पास तो पहले ही थे, दूरता का तो पता ही न था।—

ऐ कि उमरे-दर पए ओ मे दवीदम सू बसू।
नागहानिश याफ़्तम् बा दिल निशस्ता रूबरू॥ १॥
आख़िरुल-उमरश बदीदम मोतक़िफ़ दर कूए-दिल।
गर्चे बिसयारी दवीदम दर पए ओ कू-ब-कू॥ २॥

दिल गरिफ़्त आराम चूँ, आरामे-दिल दर बर गरिफ़्त ।
जाँ चूँ जानाँ रा बदीद आसूदा गश्त अज़ जुस्तजू ॥ ३ ॥
ऐ कि उमरे आर्ज़ूए-वस्ले-ओ बूदत चरा ।
अज़ पए आँ आरज़ू न गुज़श्ती अज़ हर आरजू ॥ ४ ॥
ता बके सर चश्मए-ख़ुद रा बगिल अंपाशतन ।
जूए-ख़ुद रा पाक कुन ता आयद आबे-आबजू ॥ ५ ॥
आबे-हैवाँ दर दरूँ बाँगे बराए क़तरए ।
रेख़्ता दर पेशे-हर नादाँ व दाना आबरू ॥ ६ ॥
मुतरबे-आँ मजलिसी दफ़ रा मनिह हर जा गिरौ ।
तालिबे-आँ बादई बिश्कन सुराही-ओ-सबू ॥ ७ ॥
नाज़िरे-आँ मंज़री बरदार अज़ आलम नज़र ।
आशिक़े-आँ शाहदी बरदोज़ चश्म अज़ ग़ैरे-ऊ ॥ ८ ॥
नेस्त बे ओ हेच ताबे रूए अज़ वै बर मताब ।
बे बयत चूँ नेस्त आबे दस्त रा अज़ वै मशो ॥ ९ ॥

अर्थ—मैं जो सारी आयु उसके पीछे हर ओर दौड़ता फिरता था, मैंने एकाएक उसको हृदय में सम्मुख बैठा हुआ पाया ॥ १ ॥

अन्ततः मैंने उसको हृदय के एक कोने में विराजमान देखा, यद्यपि मैं उसके लिये गली-गली बहुतेरा दौड़ा ॥ २ ॥

जब मेरे हृदय ने सुहृत्तम को पार्श्व में पा लिया, तो उसको आनंद मिल गया। और प्राण ने जब अपने प्यारे को देखा, तो जिज्ञासा से मुक्ति मिली ॥ ३ ॥

ऐ जिज्ञासु ! तुझे जो सारी आयु उसके मिलाप (साक्षात्कार) की लालसा थी, तो तूने उस लालसा को पूर्ण करने के लिये क्यों न प्रत्येक लालसा को छोड़ दिया ? ४ ॥

तू कब तक अपने स्रोत के मुख को कीचड़ से बंद करता (पाटता) रहेगा ? अपनी नहर को साफ़ कर, अर्थात् अपने

अंतःकरण को शुद्ध कर जिससे सच्ची नदी का पानी उसमें आ जाय ॥ ५ ॥

अमृत तेरे भीतर है और फिर तू उसकी एक बूँद के लिये प्रत्येक बुद्धिमान् और मूर्ख के सामने अपनी अप्रतिष्ठा कर रहा है ॥ ६ ॥

यदि तू सच्ची सभा का गायक अर्थात् यदि तू वास्तविक भेद का समाचार देनेवाला है, तो डफ (बाजा) को हरएक स्थान पर गिरवी मत रख (अर्थात् प्रत्येक स्थान पर उस वास्तविक भेद का कोलाहल मत मचा) । यदि तू उस (वास्तविक निजानन्द रूपी) सुरा का इच्छुक है, तो (सांसारिक सुरा की) सुराही और मटका तोड़ डाल ॥ ७ ॥

यदि तू उस दृश्य (देखने-योग्य अवस्था) का देखनेवाला है, तो संसार की ओर से मुँह फेर ले । यदि तू उस (वास्तविक) साक्षी (भगवान्) का प्रेमी है, तो जो कुछ उसके अतिरिक्त है, उसकी ओर से आँख सी ले (बन्द कर ले) ॥ ८ ॥

उसके विना कोई वस्तु ज्योतिर्मय नहीं हो सकती, उसकी ओर से मुँह मत फेर । चूँकि उसके विना तेरे लिये कोई ज्योति (प्रकाश) नहीं है, इसलिये उससे हाथ मत धो (अर्थात् अलग मत हो) ॥ ९ ॥

ठोकर खा खा ठाकुर डिट्ठा ठाकुर ठीकर माँहि ।
ठीकर भजदा टुटदा सड़दा ठाकुर इकसे थाँहि ॥
ठौर ठौर विच ठहरया ठाकुर ठाकुर बाहर नाँहि ।
ठग्ग ठीक ठाकुर ही ठाकुर ठाकुर ही जहाँ ताँहि ॥
ठाकुर राम नचावे नाचे वह जाँदा जहाँ वाँहि ।

मान मान मान कहा मान ले मेरा ।
जान जान जान रूप जान ले तेरा ॥
जाने विना स्वरूप ग़म न जावेगा कभी ।
कहते हैं बार बार वेद बात यह सभी ॥

नैनन के नैन जो है सो बैनन के बैन है।
जिसके बिना शरीर में न पलक चैन है॥
ऐ प्यारी जान ! जान तू भूपों का भूप है।
नाचत है प्रकृति सदा मुजरा अनूप है॥

आपत्तिकारक—अभी-अभी आपने स्वीकार कर लिया था कि ऐक्शन (क्रिया) और रि-ऐक्शन (प्रतिक्रिया) दोनों से संसार आविर्भूत होता है, इससे तो स्पष्ट द्वैतवाद सिद्ध होता है, अब आप आवश्यक परिणाम से भागते हो, एकता ही की बात को हाँके जाते हो।

राम—हाँ-हाँ, वह प्रसंग पूरा नहीं होने पाया था कि आपने और प्रश्न उपस्थित कर दिए। और—

तुम तो कहते हो रहे पासे-अदब लेकिन यहाँ;
हरफ़े-मतलब का ज़ुबाँ पर बार बार आने को है।

अस्तु, अब ऐक्शन और रि-ऐक्शन की दशा सुनो—

ऐक्शन और रि-ऐक्शन सदैव समान और विरोधी (equal and opposite) होते हैं, बल्कि एक ही होते हैं। कल-शास्त्र के प्रायः प्रश्नों में जिसे एक ओर से ऐक्शन गिना जाता है, उसी को दूसरी ओर से रि-ऐक्शन भी गिना जाता है। एक ही घटना या कर्म एक शरीर के विचार से ऐक्शन (क्रिया) कहलाता है, और दूसरे शरीर के विचार से रि-ऐक्शन (प्रतिक्रिया) नाम पाता है। ऐक्शन (कर्तृप्रधान क्रिया) और रि-ऐक्शन (कर्मप्रधान प्रतिक्रिया) वाले शरीर सजातीय (एक-तत्त्व-विशिष्ट) ही होते हैं। अब संसार जो ऐक्शन और रि-ऐक्शन का फल माना गया है, वह ऐक्शन बाहर से चेतन की ओर से माना गया है, और रि-ऐक्शन भीतर से कर्त्ता (subject) की ओर से। यहाँ पर यह आवश्यक उपलब्ध होता है कि ऐक्शन का स्रोत जो चेतन है, तो रि-ऐक्शन का स्रोत भी चेतन ही होना चाहिए।

[मोटा उदाहरण है—संस्कृत भाषण करनेवाला यदि संस्कृत का ज्ञाता है, तो उस भाषण को समझनेवाला भी अवश्य संस्कृतज्ञ होना चाहिए—

कुनद हमजिंस बा हमजिंस परवाज़।
कबूतर बा कबूतर काज़ बा काज़॥

अर्थात् एक जातिवाला अपनी ही जातिवाले के साथ उड़ता है; कबूतर कबूतर के साथ और कौवा कौवे के साथ।]

बाहर (क्रिया का स्रोत वा आधार) यदि चेतन ही चेतन है, तो भीतर (प्रतिक्रिया का आधार) भी चेतन ही चेतन होना चाहिए।—

न आसमानो न मह आफ़ताबो खुल्दे-बरीं।
न अंजुमो न मलायक, न कस अयाँ न निहाँ॥ १॥
न दोज़खो न बहिश्तो न मलिक नै ममलूक।
वले यकेस्त कि दर जुम्ला ज़ाहिर हस्तो-निहाँ॥ २॥
दो कौन ओस्त वले वुल-अजब कमाल अस्त ईं।
न अक़्ल दानद व नै वहम नै ख़िरद न बयाँ॥ ३॥
चगूना अक़्ल बरद पै कमाले-हसरते-ओस्त।
न ज़ाहिरस्तो न बातिन न आशकारो-निहाँ॥ ४॥

अर्थ—न आकाश है, न चंद्रमा है, न सूर्य और न उत्तम स्वर्ग है, न वह तारा है, न फ़रिश्ता, न कोई प्रकट है, न छिपा है॥ १॥

न नरक है, न स्वर्ग है, न राजा है, न प्रजा; किन्तु वह एक है, जो सबमें प्रकट और छिपा है॥ २॥

दोनों लोक वही है; किन्तु आश्चर्य और निपुणता यही है कि न उसको बुद्धि जानती है, न समझ और न वाक्-शक्ति॥ ३॥

बुद्धि उसका खोज कैसे लगा सकती है? अर्थात् कदापि

नहीं, इसलिये उसको इसका अत्यंत शोक है कि वह न बाहर है न भीतर, और न प्रत्यक्ष है न अप्रत्यक्ष ॥ ४ ॥

आपत्तिकारक—अस्तु, इतना तो मान लिया कि भीतर भी चेतन है और बाहर भी चेतन है, किन्तु अद्वैत इससे भी सिद्ध नहीं होता। यद्यपि वास्तव में चेतन ही ऐक्शन का कारण है और चेतन ही रि-ऐक्शन का, और इस पारस्परिक संघर्षण से संसार आविर्भूत होता है। किन्तु चेतन फिर भी दो रहते हैं, एक भीतरवाला और दूसरा बाहरवाला।

राम—चेतन दो नहीं।

जब किसी को ध्रुव-तारा दिखाना होता है, तो उत्तर की ओर उसका मुँह करके कहा करते हैं, वह देख, सप्तर्षि (तारों का पुञ्ज जो पाश्चात्य लोगों के यहाँ Great Bear कहलाता है)। ये सप्तर्षि पहले दिखा देने से ध्रुव का पता लगना सहज हो जाता है। वैसे 'भीतर चेतन' और 'बाहर चेतन', यह बाह्य द्वैत केवल इसलिये दिखाया गया है कि अद्वैत (ध्रुव) का। ठीक-ठीक पता सहज में लग जाय।

(१) शब्द 'भीतर' और 'बाहर' अंतःकरण (बुद्धि, मन intellect and understanding) के भेद (partition) से बोले गये थे; किंतु अनुभव के प्रकाश से मन (अंतःकरण) की सत्यता देखी जाय, तो यह अन्तर (परदा) ऐसे असत् है, जैसे अँधेरे को दीपक से देखा जाय, तो असत् होता है। वास्तव में व्यवधान (Line of demarcation) ही कोई नहीं है, तो बाहर और भीतर कैसा। 'बाहर का चेतन' और 'भीतर का चेतन' यह द्वैत किस प्रकार हो सकता है ?

इस विषय को पुराण की एक कथा खूब स्पष्ट करती है। भस्मासुर दैत्य को शिवजी (कारण शरीर के प्रकाशक) ने यह वरदान (boon) दिया कि "जिस पर तू हाथ रक्खेगा, वह

भस्म हो जायगा।" यह शक्ति पाते ही भस्मासुर ने अपने उपकारी पर ही शक्ति की परीक्षा करने को विचारा, अर्थात् स्वयं शिवजी पर हाथ साफ़ करने की सूझी।

कस नयामोख़्त इल्मे-तीर अज़ मन।
कि मरा आक़बत निशाना न कर्द॥

अर्थ—किसी ऐसे मनुष्य ने मुझसे बाण-विद्या नहीं सीखी कि जिसने मुझको अन्त में लक्ष्य न बनाया हो।

शिवजी आगे-आगे दौड़ने लगे और भस्मासुर हाथ बढ़ाए पीछे-पीछे हो लिया। शिवशंकर भगवान् वह पकड़े गये! वह जलकर राख हुए! वह वश में आ गये! वह भस्म हुए! नहीं नहीं, बच निकले। भस्मासुर किस अपवित्र दृष्टि से शंकर की माया का लालच कर रहा है। क्या सचमुच शिवजी का संहार करेगा?

आहा! क्या आत्मा को प्रफुल्लित कर देनेवाला स्वर सुनाई दिया! यह प्राणप्रद स्वर किधर से आया? वह देखो, पवित्रता की मूर्ति नख-शिख कांतिमान्, सुंदरियों की मुकुटमणि "मनमोहिनी" किस हृदय-हारिणी गति से नृत्य कर रही है। यह 'मोहिनी-अवतार' भगवान् विष्णु (सतोगुण के प्रकाशक) ने शिवजी की जान बचाने के लिये धारा है। भस्मासुर (मन) मोहिनी की मनलुभावनी पवित्रता पर दृष्टि डालते ही अपने आपसे बेसुध हो गया। मोहिनी ने उस दैत्य के अपवित्र हृदय से द्वैत को ऐसा धो दिया और उसके रोम-रोम में ऐसा आश्चर्यजनक प्रवेश किया कि भस्मासुर मानों मोहिनी का छाया-चित्र बन गया। मोहिनी नाचते-नाचते हाथ-पाँव को जिस प्रकार हिलाती थी, उसी का अनुकरण भस्मासुर करने लगा। मोहिनी ने अपने दोनों हाथों को अर्द्ध चक्र बनाते हुए मिलाया, भस्मासुर ने भी ऐसा ही किया। मोहिनी ने

एक धातु से सुंदर धनुष बनाया, भस्मासुर ने भी यही किया। धीरे-धीरे मोहिनी ने अपना हाथ सिर पर रक्खा, विह्वलता की तरंग में भस्मासुर ने भी अपने सिर पर हाथ रक्खा। ए लो, झट भस्म ! छुट्टी।

इस दृष्टांत का दार्ष्टांत यह है। तमोमय कारण शरीर (अज्ञान) पर आत्मारूपी सूर्य की कृपा-दृष्टि पड़ी, तो जैसे सूर्य के तेज से बर्फ़ पिघल पड़ती है, वैसे ही शिव (आत्मा) की कृपा-दृष्टि की बदौलत कारण शरीर से मन (सूक्ष्म शरीर) रूपी भस्मासुर उत्पन्न हुआ। अब वस्तुतः तो समस्त शिव ही शिव है, आत्मा ही आत्मा है, किंतु मन (भस्मासुर) को आत्मा ही की कृपा से यह शक्ति (सत्ता) प्राप्त है कि जहाँ हाथ डाले, राख बना दे। तुम्हारी आँख के सामने क्या है ? आत्मा (शिव)। मन (भस्मासुर) ने वहाँ छाया डाली, तो वृक्ष दृष्टि-गोचर होने लगा। आत्मा (शिव) क्या भस्म हो गया ? नहीं, भाग गया। दाहिनी ओर क्या है ? आत्मा (शिव)। मन (भस्मासुर) ने छाया डाली, दीवाल दिखाई देने लगी। आत्मा (शिव) अंतर्द्धान। किंतु आत्मा (शिव) मरा किसी प्रकार से नहीं; क्योंकि वृक्ष और दीवाल के नाम-रूप में भी सत्-चित्-आनंद रूप से वह झलक मार रहा है। तुम्हारे सिर की ओर क्या है ? आत्मा (शिव)। मन (भस्मासुर) ने छाया डाली, चंद्रमा दिखाई पड़ने लगा; आत्मा विलीन। बाज़ार विचरण को जाओ। चारों ओर क्या है ? आत्मा ही आत्मा।

किंतु मन-भस्मासुर हाथ फेरता जाता है, मुर्दा मैटर ही मैटर (माया, नाम-रूप) दिखाई पड़ता है। आत्मा भागा।

बचपन से लेकर बुढ़ापे तक चाहे स्वप्नावस्था में, चाहे जाग्रदवस्था में जो कुछ देखा सुना या किया-कराया केवल आत्मा ही आत्मा है, किंतु मन (भस्मासुर) ने आत्मा न देखा।

संस्कृत-ज्योतिष-शास्त्रवालों के यहाँ एक ही सूर्य भिन्न-भिन्न राशियों में भिन्न-भिन्न नाम पाता है। वैसे ही एक आत्मा जो कारण शरीर (अज्ञान, सुषुप्ति) पर प्रकाशमान होने के विचार से शिव कहलाता है, जाग्रदवस्था पर प्रकाशमान होने के विचार से विष्णु नाम से अभिहित होता है। मन-भस्मासुर का अंत करने के लिये जाग्रदवस्था में सतोगुण की अधिकता के समय यही आत्मा (विष्णु) मोहिनी-अवतार से अनहद-ध्वनि सुनाना आरम्भ करता है, अर्थात् श्रुति (उपनिषद्) रूपी मोहिनी-अवतार मन-भस्मासुर को विह्वल बनाता है, अपने साथ-साथ नाच नचाता है, कई प्रकार के आरम्भिक वाक्यों से बहलाता-बहलाता अन्त में सिर पर हाथ धरता है, अर्थात् "तत्त्वमसि", "अहं ब्रह्मास्मि"। इस अवसर पर भस्मासुर भी अपने सिर पर हाथ धरता है, अर्थात् "अहं ब्रह्मास्मि"। यह ब्रह्माकार वृत्ति मन-भस्मासुर का नाश करती है और शिव ही शिव, एक शिव ही शिव शेष रह जाता है।

टूटी ग्रन्थि अविद्या नाशी, ठाकुर सत्य राम अविनाशी।
लै मुझमें सब गयो रहे बाक़ी, वासुदेव सोऽहं कर झाकी॥

When shall I be free ? When I shall cease to be.

अर्थ—कब मेरी परिच्छिन्नता दूर होगी ? जब मैं स्वतंत्र हूँगा।

(२) भीतर और बाहर एक ही चेतन होने का सर्व-साधारण की समझ में आनेवाला प्रमाण—एक व्यक्ति 'क' की गर्दन पर खुजलाहट हुई, अब उसी व्यक्ति का हाथ तो ठीक उचित स्थान पर आवश्यकता के अनुसार खुजलायेगा, अन्य व्यक्ति 'ख' ठीक-ठीक रीति से उचित स्थान पर कभी नहीं खुजला सकता। निस्संदेह पहले व्यक्ति 'क' के बतलाने और जतलाने से दूसरा मनुष्य 'ख' यदि किसी अंश में लाभान्वित हो सके तो हो सके, पर अपने आप कोई सहायता नहीं कर सकता। किंतु प्रथम

व्यक्ति 'क' के समझाने से सहायता पाना तो यही अर्थ रखता है, कि वह व्यक्ति 'क' स्वयं अपनी सहायता कर रहा है, दूसरा व्यक्ति 'ख' तो एक प्रकार उस 'क' के औजार या हाथ का काम दे रहा है।

अतः जैसे गर्दन (आवश्यकता को अनुभव करनेवाला) और हाथ (अर्थात् आवश्यकता को दूर करनेवाला) इन दोनों का अधिष्ठान चेतन एक ही है (चाहे मनुष्य सोया पड़ा हो, इधर मुँह पर मक्खी बैठती है, उधर हाथ अपने आप उसे उड़ाने के लिये उठ आता है) वैसे ही, ऐ प्यारे ! वह सत्ता (चेतन), जो (तेरे) इस एक शरीर के भीतर शासक है, वही सूर्य, चन्द्र आदि समस्त सृष्टि की स्वामिनी है। सारी रात तुम निद्रा-भर सो लेते हो, उधर सवेरे के समय तुम्हारे इस शरीर के भीतर ज्योति की खुजली जान पड़ती है, इधर इस खुजली को दूर करने के लिये सूर्य हाथ की भाँति झट आ उपस्थित होता है। मेरे प्रियतम ! शंका और सन्देह मन से मिटा दो। जिस तुम्हारे सच्चे अपने आपका खुजली अनुभव करनेवाला यह शरीर है, उस ही तुम्हारे सच्चे अपने आपका सूर्यरूपी खुजलानेवाला हाथ है।

मग़रबी

आँ माहे मुश्तरीस्त बबाज़ार आमदा।
ख़ुद रा ज़ि दस्ते-ख़्वेश ख़रीदार आमदा ॥ १ ॥
महबूब गश्ता अस्त मुहिब्बे-जमाले-ख़्वेश।
मतलूबे-ख़्वेश रास्त तलबगार आमदा ॥ २ ॥
ज़द हल्क़ा दोश बर दरे-दिल यारे-मानवी।
गुफ़्तम कि कीस्त ? गुफ़्त कि दरे बाज़कुन, तुई ॥ ३ ॥
नक़्क़ाश गश्ता नक़्शो-नगार अस्त बेगुमाँ।
मानी निहाँ शुदा अस्त दरीं नक़्शे-मानवी ॥ ४ ॥

अर्थ—वह प्यारा (प्रेमपात्र) स्वयं बाज़ार में ख़रीदार होकर

आया हुआ है और अपने हाथ से अपनी ही ख़रीदारी कर रहा है ॥ १ ॥

अपने ही सौंदर्य का आसक्त वह (प्रेमी ही) स्वयं हो गया है और अपने प्राप्तव्य का स्वयं ही चाहनेवाला बन गया है ॥२॥

मेरे सुहृन्मित्र ने कल रात्रि को हृदय-द्वार पर कुंडी खटखटाई। मैंने पूछा—कौन है? उसने उत्तर दिया कि पट खोल, तू ही है ॥ ३ ॥

नक़्क़ाश (ईश्वर) ही निस्सन्देह यह चित्र हो गया है और इस चित्र के भीतर असली चित्रकार स्वयं छिपा हुआ है ॥४॥

दोश आँ सनम बेगानावश बिगुज़स्त अज़ मन चूँ परी।
कर्दम सलामश लेकिन ओ दादा जवावे-सरसरी ॥ १ ॥
गुफ़्तम चरा बेगानई? गुफ़्ता कि तो दीवानई।
मन कीस्तम तो कीस्ती, दर ख़ुद चरा मी नंगरी ॥ २ ॥
तो अव्वली ओ आख़िरी, तो बातनी ओ ज़ाहिरी।
तो क़ासिदी ओ मक़सदी, तो नाज़िरी ओ मंज़री ॥ ३ ॥

अर्थ—कल रात को वह प्यारा बेगाने की भाँति मेरे पास से परी की तरह निकल गया। मैंने उसको अभिवादन किया, किन्तु उसने सरसरी (साधारण) उत्तर दिया ॥ १ ॥

मैंने कहा तू बेगाना (दूसरा) क्यों बन गया? उसने उत्तर दिया तू पागल हो गया है। मैं कौन हूँ, तू कौन है, यह अपने भीतर क्यों नहीं देखता है? २ ॥

तू ही आदि है, तू ही अन्त है, तू ही बाहर है, तू ही भीतर है, तू ही उपदेशक है, तू ही उपदेश है, और तू ही देखनेवाला और दर्शन-योग्य है ॥ ३ ॥

कौवे की दोनों आँखों में एक ही पुतली होती है। बाईं आँख से देखता है तो नेत्र इधर फेर लेता है, दाईं आँख से देखते समय उधर फेर लेता है। तुम ही सूर्य-रूपी दाईं आँख में प्रकाशमान

हो, तुम ही मनुष्य-रूपी यह आँख में आश्चर्य का तमाशा हो। डाइनेमो (dynamo) से जो शक्ति निकलती है, वही वृत्त पूरा करके उसमें लौट आती है। इधर बालक जन्म लेता है, उधर बालिका जन्म लेती है, पुरुषों और स्त्रियों की संख्या समुदाय रूप से समान रहती है। जिन देशों में शीत अधिक होता है, उन देशों के पशुओं के शरीर गरम लोम-संकुल होते हैं, मानों लिहाफ़ और तोशक साथ ही लेकर उत्पन्न होते हैं।

संसार की प्रत्येक घटना का अपने इर्द-गिर्द के ठीक उपयुक्त होना [The fittest thing in the fittest place– जिसका नाम, चाहे गलत-हो चाहे ठीक, डिजाइन (design) रक्खा गया है] स्पष्ट सिद्ध करता है कि खुजली और नख-रूपी समस्त सृष्टि में एक ही चेतन है। घटनाओं (phenomena) में वही चेतन विराजमान होता है, जो उनके इर्द-गिर्द (circumstances) में। सब एक ही एक का प्रादुर्भाव है। वह जो तेरा सच्चा अपना आप है, वही समस्त सृष्टि का आत्मा है। जो घटना अनुपयुक्त जान पड़ती है, जो बात अनुचित समझ में आती है, जो काम अशोभित प्रतीत होता है, वह केवल विज्ञान-शास्त्र का पर्याप्त ज्ञान न होने के कारण से है, घटनाओं की तह से अनजान होने के कारण से है, जानकारी की कमी के कारण से है। अन्यथा ऐ प्यारो! प्रत्येक घटना, प्रत्येक काम, प्रत्येक बात, प्रत्येक पत्ता, प्रत्येक तारा, सातों स्वर मिला हुआ गीत अलाप-अलापकर सुना रहा है कि सबका स्वरूप मेरा ही है, सबका आत्मा मेरा ही आत्मा है। एक, एक, एक।

There is not the smallest orb which thou behold'st.
But in his motion like an angel sings.
Still quivering to the young eyed cherubin.

(Merchant of Venice.)

अर्थ—छोटे से छोटा मंडल भी, जो तू देखता है, ऐसा नहीं है कि अपनी गति में देवदूत की भाँति न गाता हो और अभी तक एक प्रकाशमान नेत्रवाले देवदूत की तरह न थरथराता हो।

ऐ मेरे प्राण! यह एक छोटा सा शरीर है। इसको तू कहता है 'मेरा है'। यदि तुझे इसके अंगों और नाड़ी-नसों का पूरा-पूरा तत्त्व ज्ञात हो, तो भी तेरा है; और यदि तूने कालिज में इतनी शिक्षा नहीं पाई कि जिससे रगों-पट्ठों आदि की समस्त गति और स्थिरता का यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो, तो इस अज्ञानता के होते हुए भी शरीर तेरा है। इसमें तुझे कुछ संशय नहीं। वैसे ही समस्त संसार, चाहे तुझे इसके प्रत्येक कुंज और ऊसरों का पता हो, तेरा है, और चाहे तुझे एक गाँव की भी पूरी-पूरी जानकारी न हो, तिस पर भी तेरा है। तेरे राजराजेश्वर होने में कुछ भी संशय नहीं।

नेस्त ग़ैर अज़ हस्तिए तो दर जहाँ मौजूद हेच।
ख़्वाह दर इनकार कोशो ख़्वाह दर इक़रार बाश॥

अर्थ—तेरे अस्तित्व के सिवाय संसार में कुछ भी विद्यमान नहीं है, चाहे तू इस बात को अंगीकार कर, चाहे न कर।

यदि तुझे अपना प्रकाशस्वरूप दिखाई नहीं देता, तो भी तेरा है और यदि आरसी में दिखाई दे, तो भी तेरा है। यदि स्वप्न में रुचिकर और चित्ताकर्षक घटनाएँ उपस्थित हैं, तो तेरे विचार हैं, और यदि महाभयावने रूप विद्यमान हैं, तो तेरी करतूत हैं। वैसे ही संसार में चाहे मनभावती घटनाएँ हों, चाहे विपत्तियाँ और आफ़तें हों, सब तेरी ही बनाई हुई हैं—

Joy ! Joy ! I triumph now ; no more I know
Myself as simply me I burn with love
The centre is within me ; and its wonder
Lies as a circle everywhere about me.

Joy ! Joy ! no mortal thought can fathom me.
I am the merchant and the pearl at once.
Lo ! time and space lie crouching at my feet
Joy ! Joy ! when I would revel in a rapture.
I plunge into myself and all things know.

अर्थ—आनंद ! आनंद !! मैंने अब विजय पाई है, अब मैं अपने आपको केवल एक परिच्छिन्न व्यक्ति (अहंकार) नहीं समझता । मेरे भीतर अब प्रेम की ज्वाला भड़क उठी है, विश्व-केंद्र मेरे भीतर है और उसका विचित्र खेल वृत्त के समान सर्वत्र मेरे चहुँओर वर्तमान है । आनंद ! आनंद !! अब कोई मरणशील (मानवी) विचार मेरी तह को नहीं पहुँच सकता, मैं जौहरी और जवाहर दोनों एक साथ ही हूँ । देखो, देश-काल मेरे चरणों पर गिर रहे हैं । आनंद ! आनंद !! अब जब मैं समाधिस्थ दशा में मग्न होना चाहता हूँ, तो झट अपने भीतर ग़ोता लगाता हूँ, अर्थात् अपनी वृत्ति को अपने भीतर लय कर देता हूँ और प्रत्येक वस्तु को जान लेता हूँ, अर्थात् सर्वज्ञ हो जाता हूँ ।

गुफ़्तमश ख़्वाहम कि बीनम मर तुरा ऐ नाज़नीं ।
गुफ़्त गर ख़्वाही मरा बीनी, बरो ख़ुद रा बबीं ॥ १ ॥
गुफ़्तमश बा तो निशस्तन आरज़ू दारम बसे ।
गुफ़्त गर बाशद तुरा ईं आरज़ू बा ख़ुद नशीं ॥ २ ॥
गुफ़्तमश काँ नक़्शगोई बर मिसाले-नक़्शे-तो ।
गुफ़्त ज़ाहिर शुद ब नक़्शे-ख़्वेशतन नक़्श आफ़रीं ॥ ३ ॥
गुफ़्तमश गोई कि आदम जमए-कुल्ले-आलम अस्त ।
गुफ़्त जमए-आलम अस्त ओ जमए-रब्बुल आलमीन ॥ ४ ॥
गुफ़्तमश हम मन तो अम हम जुमला तो, ख़ंदीदो गुफ़्त ।
बर तो ओ बर दीदनत बादा हज़ाराँ आफ़रीं ॥ ५ ॥

अर्थ—मैंने उस (यार) से कहा कि मैं ऐ प्यारे! तुझको देखना चाहता हूँ। उसने उत्तर दिया कि यदि तू मेरे देखने की कामना रखता है, तो जा अपने आपको देख (जो तेरा वास्तविक स्वरूप है, वही मैं हूँ)॥ १॥

मैंने उससे कहा कि ऐ प्यारे! मैं तेरे पास बैठने की बहुत इच्छा रखता हूँ। उसने कहा, यदि तुझे यह इच्छा है, तो तू जा अपने साथ बैठ (मैं वहीं हो हूँ)॥ २॥

मैंने उससे कहा कि ऐ प्यारे! तू ऐसा रूप बता जो तेरे रूप के सदृश हो। उसने उत्तर दिया कि मेरे अपने चित्र (रूप) से असली चित्रकार स्वतः प्रकट हुआ है॥ ३॥

मैंने उससे कहा कि क्या तू यह कहता है कि मनुष्य सारे संसार का समास है? उसने उत्तर दिया कि संसार का समास तो क्या, वरन् संसारों के स्वामी (सब लोगों के स्वामी ईश्वर-परमात्मा) का भी समास है (अर्थात् ईश्वर के स्वरूप और गुणों का भंडार भी मनुष्य ही है)॥ ४॥

मैंने उससे कहा कि फिर मैं ही तू हूँ और सब कुछ भी तू है। तिस पर वह हँसा और बोला कि तुझ पर और तेरे ऐसे देखने पर हज़ार-हज़ार बेर बलिहार॥ ५॥

यदि यह शरीर सुन्दर है, तो उसे देख-देख तू प्रसन्न होता है, हर्ष से प्रफुल्ल हो जाता है। यदि यह काला है, तो ऐ कृष्ण! तू इस काले-भौंराले ही को 'मेरा' होने के कारण सुंदर निश्चय करता है—

काला हरना जंगल चरना ओह भी छलबल ख़ूब करे।
काला हस्ती रहे फ़ौजन में, फ़ौजन का शृंगार करे॥
काला बादर लरजे-गरजे, जहाँ पड़े, तहाँ छल्ल करे।
काला खाँडा रहे मियाँ में जहाँ पड़े दो टूक करे॥

काली ढाल मर्द के कंधे जहाँ लड़े तहाँ ओट करे।
काला नाग बाँबी का राजा जिसका काटा तुरत मरे॥
काला डोल कुएँ के अन्दर जिसका पानी शांत करे।
काली भैंस बजर का बट्टू, दूध शक्ति बल अधिक करे॥
काला तवा रसोई भीतर खाकर रोटी ख़लक़ जिए।
काली कोकिल कूके हूके जिसका शब्द तन मन हरे॥
काला है तेरे नैनन सुरमा, तू काले का नाम धरे ?
काला है तेरे नैनन तारा, तू काले का नाम धरे ?
काले तेरे बाल साँप - से, तू काले का नाम धरे ?
गोरी री तुम गोरम गोरी; बात करे गुरु ज्ञान की चेरी॥
दाँत दामिनी चमक दमक में; नैन बने जानो आम की कैरी।
इतना गुमान कहा करे राधा, खोल घूँघट मुख देखन दे री॥

जानाँ—हो लिबासे बशरी में बख़ुदा नूरे-ख़ुदा।
सुनते भी हो कुछ ? आरिफ़ तुम्हें क्या कहते हैं ?
हमसे खुल जाओ बवक़्ते-भजन भक्ती एक दिन।
वरना हम छेड़ेंगे रखकर उज़्रे-मस्ती एक दिन॥

माधुरी छवि से परदा दूर करो। हठ अब छोड़ो। बहुत इनकार अच्छा नहीं। मान जाओ। समस्त सृष्टि का आत्मा तुम ही हो। तुम्हीं ने—

कहीं कैवाँ सितारा होके अपना नूर चमकाया।
ज़ोहल में जा कहीं चमका कहीं मरीख़ में आया॥
कहीं सूरज हो क्या क्या तेज़ जलवा आप दिखलाया।
कहीं हो चाँद चमका औ कहीं ख़ुद बन गया साया॥
तूही बातिन में पिनहाँ है, तू ज़ाहिर हर मकाँ पर है।
तू मुनियों के मनों में है, तू रिंदों की ज़ुबाँ पर है॥ १॥
तेरा ही हुक्म है, इन्दर जो बरसाता है यह पानी।
हवा अठखेलियाँ करती है तेरे ज़ेरे-निगरानी॥

तजल्ली आतिशे-सोज़ाँ में तेरी ही है नूरानी।
पड़ा फिरता है मारा-मारा डर से मर्गे-हैवानी॥
तू ही बातिन में पिनहाँ है, तू ज़ाहिर हर मकाँ पर है।
तू मुनियों के मनों में है, तू रिंदों की ज़ुबाँ पर है॥ २॥

तू ही आँखों में नूरे-मरदमक हो आप चमका है।
तू ही हो अ़क़्ल का जौहर सिरों में सबके दमका है॥
तेरे ही नूर का जल्वा है, क़तरे में जो नम का है।
तू रौनक़ हर चमन की है, तू दिलबर जामे-जम का है॥
तू ही बातिन में पिनहाँ है, तू ज़ाहिर हर मकाँ पर है।
तू मुनियों के मनों में है, तू मस्तों की ज़ुबाँ पर है॥ ३॥

कहीं ताऊसे-ज़र्रीं बाल बनकर रक़्स करता है।
दिखाकर नाच अपना मोरनी पर आप मरता है॥
कहीं हो फ़ाख़्ता कू-कू की-सी आवाज़ करता है।
कहीं बुलबुल है ख़ुद है बाग़बाँ फिर उससे डरता है॥
तू ही बातिन में पिनहाँ है, तू ज़ाहिर हर मकाँ पर है।
तू मुनियों के मनों में है, तू रिंदों की ज़ुबाँ पर है॥ ४॥

कहीं शाही बना शह पर, कहीं शिकरा है मस्ताना।
शिकारी आप बनता है, कहीं है आब और दाना॥
लटक से चाल चलता है कहीं माशूक़े जानाना।
सनम तू, ब्राह्मण नाक़ूस तू, ख़ुद तू है बुतख़ाना॥
तू ही बातिन में पिनहाँ है, तू ज़ाहिर हर मकाँ पर है।
तू मुनियों के मनों में है, तू रिंदों की ज़ुबाँ पर है॥ ५॥

तू ही याक़ूत में रौशन, तू ही पुखराज औ दुर में।
तू ही लाले बदख़्शाँ में, तू ही है ख़ुद समुंदर में॥
तू ही कुहसारो-दरिया में, तू ही दीवार और दर में।
तू ही सहरा में आबादी में तेरा नूर नैयर में॥

तू ही बातिन में पिनहाँ है, तू ज़ाहिर हर मकाँ पर है।
तू दुखियों के मनों में है, तू दिलों की ज़ुबाँ पर है॥ ६॥
(ब्रजलाल विष्णु)

प्यारे! तुम्हारा क्या अधिकार है अपने आपको एक शरीर की अहंता (ममता) में पड़ा गलाने का? तुम्हें कब उचित है आत्महत्या करना? समस्त देश-काल तुम्हारा ही शरीर है, तुम ही हो। जिधर दृष्टि डालो, तुम्हारी ही शान है। यदि दुनिया बुरी (काली) है, तो तुम हो; यदि भली (गोरी) है, तो तुम हो; सब तुम्हारा ही जलाल है। चाहे कोई तारे गिन सके, चाहे कोई सिर के बाल भी न गिन सके, किन्तु हो सब तुम ही तुम। यह भी तुम और वह भी तुम। चाहे कहीं ऐसी कला का आविष्कार हो जाय, जिससे सूर्य तक पहुँचना सम्भव हो, चाहे आँख के तारे को भी देखना नसीब न हो सके, किन्तु हो सब तुम ही तुम, यह भी तुम और वह भी तुम। चाहे तुमको प्रत्येक पत्ते और पुष्प की बनावट से पूरी-पूरी जानकारी हो जाय, चाहे तुमको सुमन-देहवान् मनुष्य का कुछ भी पता न लगे, किन्तु हो सब तुम ही तुम। यह भी तुम और वह भी तुम।

कोई-कोई हृदय (heart) को इन्द्रियों का राजा बताते थे, और कोई मस्तिष्क को सम्राट् का नाम देते हैं। कोई आकाश को घूमता मानते थे, कोई भूमि को घूमता सिद्ध कर बैठे; किंतु चाहे यों हो, चाहे वों हो, बुद्धि इधर चक्कर खाती हुई जाय, चाहे उधर घबराती हुई फिरे; (बचपन और सुषुप्ति में) कुछ विवेक और समझ न हो, या जाग्रत् में भूमि और आकाश के कुलावे मिलाए जायँ, तुम्हारा पवित्र स्वरूप सदा एकरस, क्यों कब के प्रश्न से मुक्त, अविनाशी, निर्विकार, त्रिगुणातीत है। Spirit, Infinite., Eternal, Unchangeable in its Being, Wisdom, Power, Holiness, Justice, Goodness and Truth.

अर्थ—आत्मा अपने स्वरूप में अपरिच्छिन्न, अनादि, अपरिवर्तनशील, ज्ञानस्वरूप, शक्तिस्वरूप, पवित्रस्वरूप, न्यायस्वरूप, कल्याणस्वरूप और सत्यस्वरूप है।

ख़्वाह फिरता है फ़लक और ख़्वाह फिरती है ज़मीं ;
दख़्ल मेरी ज़ात में हरगिज़ तग़ैयुर को नहीं।

यदि विज्ञान में कोई नई बात मिली है, तो वह तेरे ही प्रकाशस्वरूप के किसी तिल (ख़ाल) का पता लगा है, तेरी ही कान्ति स्पष्ट हुई है, तेरा ही सौंदर्य प्रकट (विद्यमान) हुआ है।

तत्त्ववेत्तागण भूतकाल में एक दूसरे से बाज़ी बाँध-बाँधकर अद्वैत सिद्धान्त को सिद्ध करते रहे और भविष्यकाल में तत्त्ववेत्ता लोग अद्वैत को सिद्ध करते-करते पागल हो जायँगे। तत्त्वज्ञान के सहस्रों परिवर्तन हो चुके और लाखों आयेंगे। रीतियों के सैकड़ों क्रम दब चुके और भविष्य में बीसियों अपने-अपने अवसर पर हरे-भरे होकर आए दिन पत्थर के कोयलों की कानें बन जायँगे। असंख्य साम्राज्य धरती-तल पर हो गये और करोड़ों अपने-अपने समय पर बहार दिखाकर फिर तबाह हो जायँगे। पीछे बुद्धि के तोते उड़ते आये और आगे को होश उड़ते रहेंगे। चाहे तत्त्व-ज्ञान इसको सिद्ध करने में सफलीभूत हो सके, चाहे बेहोश होकर गिर पड़े, किंतु एकमात्र सत्यात्मा, अपरिवर्तनशील, ज्ञानस्वरूप, आनंदस्वरूप मेरा पवित्र स्वरूप ज्यों-का-त्यों चला आया है और रहेगा।

मुद्दते शुद कि मी रसद अज़ ग़ैब।
लहज़ा-लहज़ा बगोशे होश ख़िताब॥
कि जुज़ो नेस्त दर सराय वजूद।
बहक़ीक़त कसे दिगर मौजूद॥

अर्थ—बहुत समय हुआ कि अंतरिक्ष से प्रतिक्षण अंतःकरण

में यह ध्वनि सुनाई देती रहती है कि उसके सिवा इस अस्तित्व की सराय में वस्तुतः और कोई उपस्थित नहीं है ।

(सीन) सभा सबसे सिर भारू कोई न रहसी आक़ी जे ।
नदूर दस्त जो राज जिन्हाँ दा, सो भी रलसन ख़ाकी जे ॥
काल-कला ते बचन न कोई ब्रह्मा विष्णु पिनाकी जे ।
इक आनदराशी अज अविनाशी हम रह जाना बाक़ी जे ॥
'अल्लाह वजूदु मुत्लक़ु व मा सिवाहु ख़्यालुमुज़ख़रफ़ु बातिलु'

अर्थ—ईश्वर एक सत्यस्वरूप है, इसके अतिरिक्त विचार करना केवल परिहास और मिथ्या है ।

यदि देखने में अत्यन्त निकृष्ट (भोंडा), तीक्ष्ण-स्वभाव, काला-भौंराला व्यक्ति है, तो वह तुम्हारा ही अपना आप है । इस तथ्य से तुम मुक्त नहीं । अतः घृणा कैसी ? और यदि कोई सुन्दर स्वरूप, शुक्र-समान सृष्टि की शोभा और अति विलास-भरी अप्सरावत् है, तो तुम्हारा ही अपना आप है । वह स्वयं तुम्हीं हो, तुम्हीं हो, फिर आसक्ति (प्रणय) किससे ? मोह क्यों ? तुम्हारी ज्ञानेंद्रियाँ जो उसे अलग दिखाती हैं, सरासर झूठ बोलनेवाली हैं । इनका विश्वास मत करो । तुम सब शरीरों की जान हो । सब तुम हो, सब तुम हो ।

Space and Time ! now I see it is true, what I guessed at
What I guessed when I loaf'd on the grass,
What I guessed while I lay alone in my bed,
And again as I walk'd the beach under the paling,
stars of the morning.

... ...

Where the panther walks to and fro on a limb overhead,
where the buck turns furiously on the hunter,

Where the rattle-snake suns his flabby length on a rock, where the otter is feeding on fish,
Over the growing sugar, over the yellow-flowered cotton plant, over the rice in its low moist field.
... ...
Scaling mountains, putting myself cautiously up, holding on by low scragged limbs,
Where the quail is whistling betwixt the woods and the wheat-lot.
Where the brook puts out the roots of the old tree and flows to the meadow,
Under Niagra, the cataract falling like a veil over my countenance,
At the festivals, with black guard gibes, ironical license, bull dances, drinking, laughter,
At apple-peelings wanting kisses for all the red fruits I find,
... ...
Where the burial coaches enter the arched gates of a cemetary
Where the splash of swimmers and divers cools the warm noon,
Through the gymnasium, through the curtain'd Saloon, through the office or public hall;
Pleas'd with the native, and pleas'd with the foreign, pleas'd with the new and old,
... ...
Wandering the same afternoon, with my face turn'd up to the clouds, or down a lane or along the beach,

My right and left arms round the sides of two friends and I in the middle.
By the cot in the hospital reaching lemonade to a feverish patient

... ...

Speeding amid the seven satellites and the broad ring, and the diameter of eighty thousand miles.
Speeding with toil'd meteors, throwing fire balls like the rest,
Carrying the crescent child that carries its own full mother in its belly
Storming, enjoying, planning, loving, cautioning,
Backing and filling, appearing and disappearing,
I tread day and nights such roads
I fly those flights of a fluid and swallowing soul,
My course runs below the soundings of plummets.

(Whalt Whitman)

अर्थ—ऐ देश-काल ! जो कुछ मैंने कल्पना किया था, उसे अब मैं सच निकला देखता हूँ—अर्थात् जो अनुमान कि घास पर फिरते हुए या अकेले अपने बिस्तरे पर लेटे हुए या प्रातःकाल ओझल होते हुए तारों के नीचे तट पर वायु-सेवन करते हुए मैंने (अपने मन में) किये थे, वे सब-के-सब सच निकले ।

... ...

जहाँ कि चीता अपने सिर के बल इधर-उधर वायु-सेवन करता है, जहाँ बारहसिंगा तुंदी से शिकारी पर उल्टा आक्रमण करता है, जहाँ फुंकारें मारनेवाला साँप एक चट्टान पर धूप में लेटता है, जहाँ ऊदबिलाव मछलियों को गड़प कर रहा है, उगते हुए

गन्ने पर, पीले फूलवाले कपास के पौदे पर, ढालू और गीले धान के खेतों में

... ...

पहाड़ों पर यत्न से अपने छोटे दुवले बाहुओं से पकड़-पकड़-कर चढ़ते हुए, जहाँ बटेर जंगलों और खेतों के बीच में सीटी बजाता है, जहाँ सोता (नाला) पुराने वृक्ष की जड़ों को उखाड़ता है और चरागाह की ओर बहता है, जहाँ 'नयाग्रा' के तले झरना इस प्रकार गिरता है, जैसे मेरे मुखमंडल पर परदा; उन मेलों में जहाँ बदमाश ताने मारते हैं, जहाँ फवतियाँ और व्यंग्य एवं कूट वाक्य खुले तौर पर उड़ते हैं, जहाँ साँड़ों का नाच होता है, मदिरा का ख़ूब पान होता है, हँसी-ठठोली होती है, सेब छीलते हुए लोग उन सब लाल फलों का चुंबन चाहते हैं, जो मुझे मिलते हैं।

... ...

जहाँ एक समाधिस्थान के महराबदार दरवाज़े में शववाली गाड़ियाँ प्रविष्ट होती हैं, जहाँ तैराकों और गोता-ख़ोरों के नहाने की छींटों से दोपहर ठंडी हो जाती है, जमनास्टिक या व्यायाम के स्थान में से, पर्देदार चौड़े कमरे में से, दफ़्तर या पब्लिक-हॉल में से, देशी और परदेशी नए और पुराने दोनों से प्रसन्न होते हुए

... ...

उसी तीसरे पहर को बादलों की ओर ऊपर मुँह करते, कभी कूचे के नीचे (दक्षिण की ओर) और कभी समुद्र के किनारे-किनारे आवारा फिरते हुए; अपने दायें और बायें बाहुओं को दो मित्रों के कंधों पर डाले हुए (मित्रों को अपने पार्श्व में लिए हुए), और मैं उनके बीच में होकर; हस्पताल में ज्वर-

पीड़ित रोगी की चारपाई के निकट लेमोनेड पहुँचाते हुए;

... ...

सातों नक्षत्रों, चौड़े वृत्त में से और अस्सी हज़ार मीलों के व्यास में से तेज़ गमन करते हुए; पुच्छल तारों के साथ जो अवशिष्ट तारों की भाँति आग के गोले फेंकते हैं, तेज़ जाते हुए; उस नए चाँद-जैसे बच्चे को ले जाते हुए कि जो अपनी माता को पूरा-पूरा अपने साथ पेट में लिए रहता है; गुल-शोर मचाते हुए, आनंद मनाते हुए, तजवीज़ें करते हुए, प्रेम करते हुए, बचाव करते हुए, आश्रय देते हुए, भरपूर करते हुए, प्रकट और परोक्ष होते हुए, मैं रात-दिन ऐसे रास्तों में चलता हूँ (या ऐसे मार्ग तै करता हूँ)। मैं एक द्रवीभूत और छूटते हुए प्राण की उड़ान उड़ता हूँ, अर्थात् जैसे एक द्रव तत्काल गरमी से उड़ जाता है और उड़ता दिखाई नहीं देता, जैसे एक छूटता हुआ प्राण शरीर से मृत्यु समय उड़ जाता है, मगर उड़ता दिखाई नहीं देता, ऐसे ही मैं भी उड़ता फिरता हूँ। मेरा मार्ग पलमट (भूमि का आकर्षण जाँचने का यंत्र) की आवाज़ों से भी नीचे जाता है, अर्थात् मेरा चलने का मार्ग इतना दूर और गहरा है कि कोई थाह ही नहीं लगा सकता और न कोई यंत्र बता सकता है। (व्हाल्ट व्हिटमैन)

तजल्ली हास्त हक़ रा दर नक़ाबे-ज़ाते-इन्सानी।
शहूदे-ग़ैब गर ख़्वाही व ख़ूब ईं जास्त इमकानी॥ १॥
हिजाबे-जलवा हम यकसर हजूमे-जलवा हस्त ईं जा।
नक़ाबे-नेस्त दरिया रा मगर तूफ़ाने-उरयानी॥ २॥
कमाले-ख़ुद शिनासी शुद दलीले-क़ुदरते-आरिफ़।
तू गर ईं रमूज़ बशनासी तू नीज़ ऐ बेख़बर आनी॥ ३॥
चमन रा शोख़ी अज़ नाज़त फ़लक हा पर्दए-साज़त।
दो आलम मह्व अंदाज़त व फ़हम ऐ क़तरा नादानी॥ ४॥

अर्थ—मानुषी स्वरूप के परदे में ईश्वरीय तेज निहित है। यदि तू उस अव्यक्त की साक्षी चाहता है, अर्थात् यदि तू उस छिपे हुए स्वरूप का अनुभव करना चाहता है, तो यहाँ ही उसका अनुभव होना संभव है ॥ १ ॥

यहाँ तेज का समूह (पुंज) ही तेज-स्वरूप का परदा बना हुआ है, अर्थात् प्रकाश की अधिकता ने ही प्रकाश के स्रोत को छिपा रक्खा है। जैसे नदी को कोई परदा छिपाए हुए नहीं है, सिवा नंगेपन के तूफ़ान के ॥ २ ॥

ज्ञानी की तर्क-शक्ति उसके स्वरूप-ज्ञान (उसके नंगा होने) का कमाल है। तू यदि इस भेद को जान ले, तो ऐ भूले हुए! तू भी वही हो जाय ॥ ३ ॥

बाग़ को शोख़ी तेरे ही नाज़ (हाव-भाव) के कारण है, और आकाश (अंतरिक्ष) तेरे ही बाजे के परदे हैं, ऐ नासमझी के बिंदु (ऐ भोले पुरुष)! ऐसा समझ कि दोनों लोक तेरे ही नख़रे पर लट्टू हो गए हैं ॥ ४ ॥

प्रश्न—सर्वं खल्विदं ब्रह्म। (छां० उप०, प्र० ३, खं० १४, मं० १)

अर्थ—यह समस्त नाम-रूप जगत् ब्रह्म ही है।

हर चे आयद दर नज़र अज़ ख़ैरो-शर ; जुमला ज़ाते-हक़ बुवद ऐ बेख़बर !

अर्थ—ऐ बेख़बर, जो कुछ भलाई और बुराई दृष्टिगोचर होती है, वह सब ईश्वर का स्वरूप है—

"वन तृण पर्वत है पारब्रह्म"

एक ही चेतन प्रत्येक वस्तु में, बिना ह्रास और वृद्धि के, ज्यों का त्यों विद्यमान है।

ब नामे आँ कि ओ नामे नदारद।
बहर नामे कि ख़्वानी सर बरआरद ॥

अर्थ—यद्यपि वह कोई नाम नहीं रखता, फिर भी जिस नाम से तू उसको बुलाए, वह सिर निकालता है (प्रकट हो आता है)।

इनकी, संक्षेप में, तनिक व्याख्या कर दो।

उत्तर—पहले यह स्वल्प रूप से वर्णित हो चुका है कि—

तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः। (ईशा० उप०)

अर्थात् एक ही चेतन (आत्मा) सबके भीतर है और वही चेतन सबके बाहर है। और यह चेतन मेरा वास्तविक अपना आप है। जैसे स्वप्न में एक ही पुरुष उधर पदार्थ (object, दृश्य) बन जाता है, और इधर देखनेवाला (subject, द्रष्टा) बन जाता है, वैसे ही जाग्रत् में भी यही चेतन उधर ऐक्शन (क्रिया) बनकर आता है, और इधर रि-ऐक्शन (प्रतिक्रिया) बनता है। यही चेतन ऐक्शन और रि-ऐक्शन के द्वारा विविध प्रकार के नाम-रूपों में दृश्यमान होता है। इस एक ही चेतन के बाह्य द्वैतपन पर संसार का दृश्य निर्भर है। एक हाथ इधर से आया, एक उधर से आया, ताली बजी ; किंतु दोनों हाथ एक ही पुरुष के थे। वैसे दोनों ओर चेतन एक ही है।

गंगा की एक लहर इधर से आई, दूसरी उधर से आई। दोनों के टकराने से फेन और बुलबुले आदि उत्पन्न हो गए। किंतु दोनों लहरें एक ही गंगा की हैं। वैसे ही संसार-रूपी फेन बुलबुले दिखाई देने में ऐक्शन (क्रिया) और रि-ऐक्शन (प्रतिक्रिया) रूपी लहरों का स्रोत एक ही चेतन है।

माया

संध्या

गंगा की ठंढी छाती से आती है खुश हवा।
　　है भीने-भीने बाग़ का साँस इसमें मिल रहा॥
गंगा के रोम-रोम में रचने लगा वह बह्र।
　　आया जुवार ज़ोर का लहरों पे लेके लह्र॥
देखो तो कैसे शौक़ से आते जहाज़ हैं।
　　मारे खुशी के सीटी बजाते जहाज़ हैं॥

शादी ज़मीं की ए लो ! फ़लक से हुई-हुई।
वह सायवाँ क़नात है जब ही तनी हुई॥
दुल्हा के सिर पै तारों का सेहरा खिला-खिला।
दुल्हिन के वर्क़े-दिल ने चिराग़ाँ खिला दिया॥

[स्थान—ईडन गार्डेन, कलकत्ता]

है क्या सुहाना बाग़ में मैदाने-दिलकुशा।
और हाशिया है बेंचों का सब्ज़ा पै वाह वा॥
मजमा हुजूम लोगों का भरकर लगा है यह।
मैदान आदमी से लबालब भरा है यह॥
बेंचों पै बाज़ बैठे हैं, अक्सर हैं ख़ुश खड़े।
बाँके जवान बाग़ में हैं टहलते पड़े॥
मैदाँ के पार सड़क पै है बग्घियों की भीड़।
घोड़ों की सरकशी है लगामों की दे नपीड़॥
शौक़ीन कलकता के हैं मौजूद सब यहाँ।
हर रंग ढंग वज़ा के मिलते हैं अब यहाँ॥

काम

हम सबको देखते हैं, यह हैं देखते कहाँ ?
आँखें तनी हुई हैं, यह क्या पीर क्या जवाँ॥
मर्कज़ है सब निगाहों का उजला चबूतरा।
ख़ुश बैंड बाजा गोरों का जिसमें है बज रहा॥
गाते फुला-फुलाके हैं वह गालें गोरियाँ।
क्या रोशनी में सुर्ख़ दमकती हैं कुर्तियाँ॥
ऐ लोगो ! तुमको क्या है जो हिलते ज़रा नहीं।
क्या तुमने लाल कुर्ती को देखा कभी नहीं ?

परदा

इसरार इसमें क्या है, करो ग़ौर तो सही।
इस टिकटिकी में क्या है, करो ग़ौर तो सही॥

गोरों की कुर्तियों को है गो तक रहे ज़रूर।
लेकिन नज़र से कुर्तियाँ गोरे तो सब हैं दूर॥
लहरा रहा है परदा-सा सबकी निगाह पर।
इस परदा से पिरोई है हरएक की नज़र॥
यह परदा तन रहा है अजब ठाट-बाट का।
जिसमें ज़मीं ज़मॉं-ओ-मकाँ है समा रहा॥
परदा है बिला छेद की सींवन कहीं नहीं।
लेकिन मुटाई पूछो तो असला नहीं नहीं॥
परदा सितम है सहर के नक़्शो नगार हैं।
हर आँख के लिये याँ अलहदा ही कार हैं॥
सब सामई के सामने परदा है यह पड़ा।
हर एक की निगाह में नक़्शा बना दिया॥
परदों से राग के है यह परदा अजब पड़ा।
गंधर्व-नगर का है कि मेराज का मज़ा॥
जादू है, हिप्नोटिज़्म है, परदा सुराब है।
क्या सच है, रंग-ढंग ये सब नक़्शे-आब है ?
रमिए तो यार परदा में, देखें तो कैफ़ियत।
आँखें सिली हैं परदा से क्यों ? क्या है माहियत ?
दीदों में और रंगों में क्या है मुनासिबत ?

❀ ❀ ❀ ❀

लाठी है हवाए-दहर, पानी बन जाओ।
मौजों की तरह लड़ो, मगर एक ही रहो॥
साथ है सूरत के सूरत आफ़रीं।
नक़्श पर नक़्क़ाश शैदा हो गया॥

प्राकृतिक प्रमाण—मैं साक्षी चेतन हूँ, यह सिद्धांत है, जिसका खंडन नहीं हो सकता, किंतु अपने आपको केवल साक्षी-मात्र,

निःसंबंध, नपुंसक ठहराना संतोष नहीं लाता—निर्जन एकांत की भाँति अप्रिय प्रतीत होता है। इससे सिद्ध होता है कि हमारी प्रकृति इस बात की रवादार नहीं कि अपने आपको केवल ऐक्शन (क्रिया) या केवल रि-ऐक्शन (प्रतिक्रिया) का स्रोत मानने पर इति श्री की जाय। जब तक अनुभव स्वरूप के साथ एकता न होगी, चित्त को चैन नहीं पड़ने की। अब जरा और विचार कीजिए। गुलाब का फूल सामने रक्खा है, इसकी रंगत इसका एक गुण है।

यह गुण देखनेवाले (subject, द्रष्टा) की ओर से रि-ऐक्शन (प्रतिक्रिया) का परिणाम है। जैसे आरसी में प्रिया के पान खाए हुए ओष्ठ प्रिया के आरसी देखने का परिणाम है।

फूल की गंध उसका एक गुण है। यह भी देखनेवाले (subject, द्रष्टा) की ओर से रि-ऐक्शन का परिणाम है।

फूल की कोमलता भी एक गुण है, जो देखनेवाले के रि-ऐक्शन का परिणाम है। फूल का रूप भी एक गुण है, जो देखनेवाले के रि-ऐक्शन का परिणाम है। निदान फूल के समस्त गुण (नाम-रूप) देखनेवाले की ओर से रि-ऐक्शन (प्रतिक्रिया) होने के पश्चात् प्रतीत होते हैं। अब खूब सोच-विचारकर बताइए कि "फूल केवल इन गुणों के समुच्चय को ही कहते हैं, अथवा फूल में कुछ और भी तत्त्व है ?"

प्रत्यक्ष में तो यही ज्ञात होता है कि यदि फूल की रंगत, गंध, आकार, कोमलता, स्वाद, परिमाण इत्यादि (नाम-रूप) गुणों का खयाल मन से दूर कर दिया जाय, तो कुछ भी शेष न रहेगा; शून्य ही हाथ आयेगा। आरंभ में तो यही अनुमान प्रभावित करता है कि पुष्प केवल गुणों के पुंज का ही नाम है; किंतु वेदांत यह कहता है कि प्यारे! फूल के समस्त गुण तो निस्संदेह तुमने एक प्रकार अपने भीतर से उगले हैं, और फूल, फूल की दृष्टि से, तेरे

रि-ऐक्शन (प्रतिक्रिया) के दिए हुए गुणों का ऋणी है। किंतु जिसको तू फूल मान रहा है, उसने फूल की दृष्टि से प्रतीत होने से पहले तेरी नासिका पर प्रभाव डाला, तेरी आँख पर काम किया, तेरी घ्राणेंद्रिय पर ऐक्शन किया, तेरी रसना-इंद्रिय पर प्रभाव डालने की योग्यता उसी में थी। वह तो चेतन है; असत् नहीं। अतः फूल के नाम-रूप गुणों से परे असत् (न) नहीं है, वल्कि चेतन (अ) है; और फूल केवल गुणों के समुच्चय ही का नाम नहीं है, वल्कि फूल का वास्तविक अस्तित्व तो चेतन है।

One stupendous whole

... ...

Warms in the sun, refreshes in the breeze,
Glows in the stars, and blossoms in the trees,
Lives through all life, extends through all extent,
Spreads undivided, operates unspent,
Breathes in our soul, informs our mortal part,
As full, as perfect, in a hair as heart;
As full, as perfect, in vile man that mourns,
As the rapt seraph that adores and burns;
To him no high, no low, no great, no small;
He fills, he bounds, connects, and equals all.

(Alex. Pope.)

अर्थ—एक ही महापूर्ण शक्ति धूप में गरमी का आनंद लेती है, प्रातःकालीन वायु में प्रफुल्लित होती है, तारों में चमकती है और वृक्षों में कलियों की भाँति खिलती है। समस्त जीवित वस्तुओं में वह जीवन के समान रहती है (या वही जीवित है), और समस्त विस्तार में वह फैली हुई (फैलावट-रूप) है। अविभक्त हुई वह फैलती है, और अव्यय रूप से वह कार्य करती है।

हमारे जीवात्मा (हृदय) में वह श्वास लेती है और हमारे विनाशी अंग (शरीर) में वह प्राण डालती है। बाल में भी उतनी ही भरपूर (पूर्ण) है, जितनी कि हमारे दिल में। बुरे स्वभाववाले पुरुष में भी, कि जो शोक करता रहता है, वैसी ही पूर्ण और भरपूर है, जैसे कि एक आनंद-मग्न देवदूत में, जो प्रार्थना और उपासना करता रहता और (प्रेम में) दहकता रहता है। उस (पूर्ण सत्ता) की दृष्टि में न कोई उत्तम है न अधम; न बड़ा है न छोटा। वह सबको पूर्ण करती है, सीमाबद्ध करती (या स्वयं उछलती और भड़कती) है, सबको मिलाती (जोड़ती) है और सबको एक समान करती है।

उक्त तथ्य को हम इस प्रकार निरूपण करेंगे—फूल = गुण (फूल) + अ

[गुण (फूल) के संकेत से तात्पर्य है वे गुण, जिनकी बदौलत 'फूल' नाम दिया जाता है और 'अ' से प्रयोजन है चेतन, जो गुणों से परे है।]

वह आम का फल दृष्टिगोचर हो रहा है। यह गुलाब के फूल से क्यों भिन्न है?

अपने गुणों के कारण। फल के गुण और हैं और फूल के और। फूल सूँघने की वस्तु है, फल खाने या चूसने की! रंगत में, आकृति में, नाम में, सूक्ष्मता या स्थूलता में, प्रभावों में और प्रयोग में पृथक्ता है। इसलिये फल और फूल दोनों एक ही नहीं कहला सकते। संक्षेप से यह कि भिन्नता (पृथक्ता, differentiation) का कारण गुण (नाम-रूपादि) हैं, जो कि अनुभव करनेवाले की ओर से रि-ऐक्शन का परिणाम हैं। क्या फूल की वास्तविक सत्ता (चेतन), ऐक्शन का कारण (जो फूल के गुणों से परे है), फल की वास्तविक सत्ता (चेतन) ऐक्शन

के कारण से (जो फल के गुणों से परे है) भिन्नता नहीं रखती ?

वेदांत का यह उत्तर है कि फूल के वास्तविक स्वरूप और फल के वास्तविक स्वरूप में कोई अंतर नहीं है। जैसे अँगूठी और कंगन में भिन्नता केवल गुणों (नाम-रूप) के कारण से है, अपने असली स्वरूप (सोने) में कुछ भी भेद नहीं है। अँगूठी उँगली में पहनी जायगी, कंगन कलाई में पहना जायगा। दोनों की आकृतियाँ और बनावट आदि पृथक्-पृथक् हैं, किंतु हैं दोनों सोना एक ही। वैसे एक ही चेतन आत्मा (अ) गुलाब की असली सत्ता है और आम की भी वास्तविक सत्ता है। अतः वेदांत के मत से आम का समीकरण (equation) उक्त निरूपणानुसार इस प्रकार होगा—

आम का फल = गुण (फल) + अ

[गुण (फल) से तात्पर्य है वे गुण, जैसे मिठास, पीली रंगत आदि, जो इस फल को संसार की समस्त अन्य वस्तुओं से न्यारा कराते हैं। यह भी स्मरण रहे कि समस्त गुण अनुभवकर्त्ता के रि-ऐक्शन का परिणाम ही होते हैं।]

यदि आम के फल की वास्तविक सत्ता (अ) को गुलाब के फूल की वास्तविक सत्ता (अ) से अभेद मानने में आपत्ति हो, तो लीजिए, इसे अ से निरूपण नहीं करेंगे, $अ^{1}$ से इसका निरालापन जतलायेंगे। इस रूप में आम का समीकरण (equation) निम्नानुसार होगा—

आम का फल = गुण (फल) + $अ^{1}$

इसी प्रकार मिसरी को मिसरी ठहरानेवाले आरोपित गुणों (मिसरी) से परे जो मिसरी का स्वरूप है, उसे फूल और फल के स्वरूप से पृथक् $अ^{2}$ मानने पर मिसरी का समीकरण निम्नानुसार होगा—

मिसरी = गुण (मिसरी) + अ² ❀

❀ गुणों के आरोपित होने के विषय में कुछ अक्षर और लिख देना उचित है। मिसरी का (सबसे बड़ा गुण) मीठापन खानेवाले की अवस्था पर निर्भर है। अतएव कुछ अवस्थाओं में मिसरी कड़वी लगती है। वह दर्पण, जो मनुष्य के लिये स्वच्छ निर्मल है, चींटी को आँख को गर्दा-ही-गर्दा दिखाई देता है। जहाँ मनुष्य के लिये पता लगाना असंभव होता है, गंधवाला कुत्ता झट शिकार को सूँघ लेता है। चींटियाँ आनेवाली वर्षा को जान जाती हैं, अंडे मुँह में लिए दौड़ती दिखाई देती हैं। किसी वस्तु की लंबाई-चौड़ाई और मोटाई को मनुष्य कुछ और मानता है, हाथी की आँख उसे कुछ और ही ठानती है। मेंढक की आँख यह गवाही देती है कि पानी में तो सब वस्तुएँ साफ़-साफ़ होती हैं, पर पानी के बाहर सब पर धुँधलापन छा रहा है। जो वस्तुएँ साधारण मनुष्यों को सफ़ेद-सफ़ेद दिखाई देती हैं, कुछ अवस्थाओं में कुछ लोगों को पीली-पीली दिखाई देती हैं। माता-पिता को किवाड़ दीवार चारपाई ज्ञात होते हैं, किंतु नन्हा बच्चा कुछ भी अनुभव नहीं करता, चाहे उसकी आँखें खुली हों और जाग रहा हो। आँखों की बनावट यदि सूक्ष्मदर्शक, दूरदर्शक, केलाइडस्कोप (Kaleidoscope) या Look & Laugh ("देखो और हँसो" खिलौना) के नियम पर हो, तो संसार बिलकुल और-का-और हो जाय। कानों की बनावट में तनिक-सा परिवर्तन श्रवण का चित्र ही पलट दे। जहाँ कीड़े से बढ़ते-बढ़ते मनुष्य तक विकास हुआ है, तो क्या मालूम भविष्य में कोई ऐसा और विकास का चक्र आ जाय कि मनुष्यों के इंद्रिय और मस्तिष्क उलट-पलटकर नए रंग-ढंग अनुभव करने लगें। इन उदाहरणों (दृष्टांतों) से स्पष्ट होता है कि वस्तुओं के गुण वास्तविक नहीं होते, वरन् अनुभव करनेवाले पर अवलंबित होते हैं, और उनकी प्रतीति सदा अनुभव करने-वाले के आश्रय है।

इस हिसाब से अ[1], अ[2], अ[3], अ[4], अ[5] आदि से निरूपित चेतन असंख्य निश्चित होते हैं और विभिन्न मानने पड़ते हैं।

किंतु चेतन को गुणों से परे स्वीकार कर चुके हैं।

और यह बात निश्चित है कि भिन्नता का कारण केवल गुण होते हैं। गुणों ही की तुलना से भेद का पता लगता है। क्योंकि तुलना करना और वस्तुओं की भिन्नता को स्थिर या स्वीकार करना बुद्धि का काम है, और बुद्धि की पहुँच गुणों से परे नहीं।

अतः चेतन जो गुणों से परे है, भिन्नता और पृथक्ता की सीमा में नहीं, इसलिये चेतन विभिन्न नहीं हो सकते। और जब चेतन में भिन्नता की गति नहीं, तो असंख्य होना क्या अर्थ रखता है ?

किंतु उपर्युक्त कल्पना अ, अ[1], अ[2], अ[3], अ[4], अ[5] आदि से विविध शरीरों में विविध चेतन का होना पाया जाता है, अर्थात् वह एक मिथ्या परिणाम तक पहुँचाती है, अतः उपर्युक्त कल्पना मिथ्या है; अर्थात् आम के नाम-रूप (गुणों) में जो (सत्, चित्, आनंद) चेतन संसर्ग कर रहा है, उसे अ[1] से निरूपण करके फिर मिसरी के नाम-रूप (गुणों) में जो चेतन अ[2] संसर्ग कर रहा है, उसे अ[1] चेतन से विभिन्न ठहराना और भौंरा

विभिन्न पदार्थों में वास्तविक स्वरूप को विभिन्न मानने पर प्रत्येक पदार्थ के लिये एक नया समीकरण होगा—

भौंरा = गुण (भ) + अ[3]
सिंह = गुण (सिं) + अ[4]
गंगा = गुण (ग) + अ[5]
हिमालय = गुण (ह) + अ[6]
लेखनी = गुण (ल) + अ[7]
... ...

(अ^{3}) सिंह (अ^{4}) गंगा (अ^{5}) आदि में अलग-अलग चेतन मानना विलकुल अनुचित है। एक ही चेतन गुलाव में, आम में, मिसरी में, भौंरा, सिंह, गंगा आदि में विद्यमान है; अ पर कल्पित चिह्न वनाना अनुचित है।

अतः अ = अ^{1} अ^{2} अ^{3} अ^{4} अ^{5}... ... ...

सर्वं खल्विदं ब्रह्म। (छां० प्र० ३, खं०१४, मं०१)

एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो वहिश्च।

(क० उ० व० ५, अ० २, मं० ६)

अर्थ—यह सव (नाम-रूप जगत्) ब्रह्म ही है।

जैसे अग्नि सव संसार में व्यापक होकर नाना रूप में प्रकट हो जाती है, वैसे ही एक आत्मा सव नाम-रूपों के भीतर व्यापक होता हुआ प्रत्येक नाम-रूप में होकर वाहर प्रकट हुआ है।

एक ही गेली (लकड़ी) में वढ़ई चार जोड़ी किवाड़ तैयार करने का अंदाज़ा लगाता है। यदि मेज़ें वनानी स्वीकार हों, तो इसी गेली में तीन मेज़ों का तख़मीना निकालता है। वढ़ई के ख़याल में नौ कुरसियाँ इसी गेली से निकल आती हैं। इसी गेली से छः वेंचें निकल आती हैं। इसी गेली में १५ स्टूल कल्पित होते हैं। इसी गेली में दो तख़्तपोश पाए जाते हैं, और चीरने-फाड़ने के विना ही इसी गेली में १२ व्लैकवोर्ड दृष्टिगोचर होते हैं। वैसे एक ही ब्रह्म (चेतन) रूपी गेली, जिसमें वास्तविक दृष्टि से कोई किसी प्रकार का परिवर्तन घटित नहीं होता, भाँति-भाँति के रूपों का कारण (अधिष्ठान) है। फिर जैसे एक ही सफ़ेद काग़ज़ पर अपने मन में चित्रकार कभी राम की, कभी कृष्ण की, कभी कालीदह की, कभी वृंदावन की, कभी काशी की तसवीरें खींच रहा हो और उसी सफ़ेद काग़ज़ पर गणितज्ञ अपने ख़याल में त्रिकोण, वर्ग, वृत्त, अंडाकार आदि शकलें पड़ा वना रहा हो, और उसी सफ़ेद काग़ज़ पर कोई और व्यक्ति

मनुष्य-गणना और गृह-गणना के कोष्ठक बना रहा हो, वैसे एक ही चेतन (ब्रह्म) अद्वैत-स्वरूप में वैकुंठवासी अपने स्वर्ग के विविध रंगों के नक़्शे जमा रहा है, और इसी चेतन (ब्रह्म) अद्वैत-स्वरूप में संसारी विविध भाँति के चित्र कल्पित कर रहा है, और इसी चेतन (ब्रह्म) अद्वैत-स्वरूप में नारकीय अपने नरक की प्रज्वलित अग्नि देख रहा है।

विविध धर्मों में बहुत-सी ऐसी किंवदंतियाँ चली आती हैं कि वे व्यक्ति—जो अत्यंत सज्जन हो गये, अत्यंत पवित्र बन गये, सांसारिक इच्छाओं और शारीरिक बंधनों से बिलकुल विमुक्त हो गये, बेहद सुधर गये, बिलकुल और के और हो गये—तत्काल स्वर्ग को चढ़ाए गये। साधारणतया ऐसी किंवदंतियाँ चाहे मिथ्या हों, किंतु वेदांत की दृष्टि से असंभव नहीं हैं। स्वर्ग के चढ़ाये जाने के यह अर्थ हैं कि उनके भीतर इतना परिवर्तन हो गया कि सफ़ेद काग़ज़-रूपी चेतन में सांसारिक चित्रों को देखने के स्थान पर मनोहर वैकुंठ के चित्र देखने लगे और अपने शरीर को मनुष्य के स्थान पर देवता का शरीर पाया।

पर यह संसार देखा तो क्या और नरक-स्वर्ग देखे तो क्या, वास्तविक तत्त्व न यह है, न वह है। जितनी द्वैत या नानात्व और भेद-दृष्टि है, वास्तविक दृष्टि से सब असत्य और निर्मूल है।

'मिथ्या' किसको कहते हैं ? जो वस्तु दिखाई तो दे, किंतु जब उसके अधिष्ठान को देखा जाय, तो न रहे। जैसे चाँदी जो सीप में दृष्टिगोचर होती है, सीप (अधिष्ठान) को देखने पर नहीं रहती, या साँप जो रस्सी में दिखाई देता है, रस्सी (अधिष्ठान) को देखते ही नहीं रहता। अतः वेदांत-शास्त्र के शब्दों में 'मिथ्या' वह है, जो अपने अधिष्ठान में अत्यंताभाव का प्रतियोगी है।

सर्वेषामपि भावनामाश्रयत्वेन सम्मते ।
प्रतियोगित्वमत्यन्ताभावं प्रतिमृषात्मता ॥ ११ ॥
अंशिनः स्वांशगात्यन्ताभावस्य प्रतियोगिनः ।
अंशित्वादितरांशीव दिगेषैव गुणादिषु ॥ १२ ॥ (चित्सुखी)

११वें श्लोक का अर्थ—संसार की समस्त वस्तुओं के लिये आश्रय का होना आवश्यक है, किंतु प्रत्येक वस्तु के अपने आश्रय में उस वस्तु का अत्यंताभाव पाया जाता है । अतः सांसारिक वस्तुओं का अस्तित्व असल आश्रय में उनके अत्यंताभाव का प्रतियोगी है । और यही है वस्तुओं का मिथ्या होना ।

व्याख्या—सामान्य दृष्टि से कंगन का आश्रय सोना है, पट का आश्रय सूत है, आदि । पट के मिथ्या होने के यह अर्थ हैं कि जिस आश्रय (अर्थात् सूत) में विद्यमान होने का पट को दावा है, उस आश्रय अर्थात् सूत का तार-तार पुकार रहा है कि मुझमें पट नहीं है । स्वर्णकार की दृष्टि से जो कंगन विद्यमान है, उसका आश्रय सोना है, किंतु सर्राफ़ की दृष्टि कहती है कि स्वर्ण की दृष्टि से कभी कंगन हुआ ही नहीं ।

अब पट आदि का अस्तित्व अपने आश्रय (सूत) के विना और कहीं कदापि कल्पित नहीं हो सकता (इस बात से इन्कार करना ऐसा है, जैसे दावात का हाथी हो जाना स्वीकार कर बैठना) ।

और साथ ही इसके पट आदि के निज आश्रय का अस्तित्व उन वस्तुओं को अपने में कदापि आश्रय नहीं देता । अतः वस्तुओं की प्रतीति का निर्मूल (मिथ्या) होना उचित प्रतीत होता है, और इस परिणाम से किसी प्रकार बचाव नहीं हो सकता, यदि रोटी खाई न जाय, तो पेट पर बाँधनी होगी ।

ऊपर दिखा आए हैं कि संसार की समस्त वस्तुओं का वास्तविक आश्रय एक ब्रह्म ही ब्रह्म है, जिसको 'अ' से निरूपण किया जा चुका है। इस ब्रह्म को समस्त गुणों का आश्रय और समस्त वस्तुओं का अधिष्ठान क्यों कहा गया था—सांसारिक नाप-रूप की आवश्यकतानुसार।

अन्यथा अद्वैत-स्वरूप (ब्रह्म) की दृष्टि से आश्रय होना-हवाना क्या अर्थ रखता है ?

(१) ब्रह्म को निर्गुण स्वीकार किया गया था। जब ब्रह्म में गुणों का प्रवेश ही नहीं, तो आश्रय होने का गुण भी उसमें क्यों ? ब्रह्म का रूप-रेख-लेख नहीं, उसका आकार नहीं और उसमें कोई राह नहीं, कोई छिद्र नहीं, तो संसार उसमें किधर से घुस सकता है ? जगत् की उसमें गुंजाइश कहाँ ?

समस्त नाम-रूप इधर तो विना आश्रय के रह नहीं सकते और उधर आश्रय (ब्रह्म) अन्य को आश्रय देता नहीं। इधर तो तीक्ष्ण धूप और कृपाण-धारा कंठ तर करने को खड़े हैं, और उधर चूहे मशकें कुतर गए हैं। अतः नाम-रूप संसार को 'अलअतश-अलअतश' (राम-राम सत्य है) कहते हुए मिथ्यापन के कर्बला (मरघट) में खेत रह जाना (शहीद हो जाना) आवश्यक प्रतीत होता है।

(२) लोभी पुरुष सीप को चाँदी पड़ा देखे, डरपोक व्यक्ति रस्सी को साँप पड़ा कहे; पर सीप चाँदी को और रस्सी साँप को अपने बीच में कब घुसने देते हैं। राम (परमेश्वर) में लोक और परलोक का प्रवेश होना क्या अर्थ रखता है ?

१२वें श्लोक का तात्पर्य—जो वस्तुएँ परमाणुओं से बनी हैं (और परमाणुओं से निर्मित संसार में क्या नहीं है ?), वे प्रतियोगी हैं अपने अत्यंताभाव की, जो उनके आश्रय (परमाणुओं) में है। जितनी परमाणुओं से युक्त (वा विभाग-योग्य)

वस्तुओं की परीक्षा करोगे, उनका यही हाल पाओगे। अतः सब-की-सब वस्तुओं का मिथ्या होना स्पष्ट है।

व्याख्या—भूमि छोटे-छोटे परमाणुओं से निर्मित है; पानी नन्हे-नन्हे बिंदुओं से बना होता है; काल सेकंड, पल आदि खंडों से बनता है; शक्ति (force) सदैव अपने असंख्य विभिन्न परमाणुओं (components) का प्राप्त-फल (resultant) या मिश्रण होती है। वैशेषिक मत का यह सिद्धांत प्रत्यक्षतः समस्त सृष्टि पर लागू है। वेदांत का इसमें यह कथन है—"माना कि समस्त वस्तुओं का प्रत्यक्षतः आधार या आश्रय उनके परमाणु हैं, किंतु आश्चर्य है कि आश्रय की ओर से कभी आश्रित (अधिष्ठेय) हुआ ही नहीं।"

(१) बर्फ़ पिघली, पानी बन गया, पानी से भाप बन गई, किंतु आश्रय अर्थात् H^2, O. (हाइड्रोजन + ऑक्सीजन) की दृष्टि से न बर्फ़ थी, न पानी और न भाप।

H^2, O (हाइड्रोजन + ऑक्सीजन का मिश्रण) ज्यों का त्यों हूबहू बना रहा। परिवर्तन या परिणाम केवल नाम-रूप (माया) में हुए।

(२) हीरा—स्वच्छ, निर्मल, अत्यंत चमक-दमक, महान् आब-ताब, वज्रादपि कठोर, अल्प-लभ्य, बहुमूल्य। एक बार अनमोल हीरे (कोहनूर) का मूल्य आधे जगत् की संपत्ति लगाई गई थी।

ग्रेफ़ाइट, कोयला और दीपक का काजल—अत्यंत काले और ऐसे नरम कि काग़ज़ आदि पर अपना चिह्न छोड़ दें, सब स्थान पर अधिकता से उपस्थित और मुफ़्त के मोल प्राप्त।

विज्ञान दिखाता है कि तात्त्विक दृष्टि से यह परस्पर विरुद्ध गुण (धर्म) वाली वस्तुएँ बिलकुल एक ही हैं, एक ही कारबन हैं। यदि एक ही हैं, तो इनमें विस्मित कर देनेवाली

भिन्नता कहाँ से आई ? केवल परमाणुओं की लगावट-बनावट रूप (form, माया) के कारण। Form (माया-आकृति) विचित्र विस्मयोत्पादक है, जो एक ही कारबन को इधर हीरा और उधर कोयला कर दिखाती है।

(३) डॉक्टर 'पालकेरस' का एक उदाहरण इस माया की सारी माया खोल देता है।

कल्पना करो, हमारे पास कागज़ या लकड़ी की बनी हुई एक समानांतर चतुर्भुज (३ × ५) है, और दो एक जैसी समकोण त्रिकोण हैं, जिनके कर्ण (hypotenuse) ५ हैं और बराबर भुजें (sides) ३ हैं।

समानांतर चतुर्भुज के दोनों ओर त्रिकोणों को इस प्रकार लगाओ कि समानांतर चतुर्भुज की बड़ी भुजाओं पर त्रिकोणों के कर्ण (hypotenuse) अनुकूल हो जायँ। ऐसा करने से एक षट्कोण (षट्भुज) बन जायगा, जिसकी प्रत्येक भुज ३ है। समानांतर चतुर्भुज समान चतुर्भुज की अवस्था (आकार) से लुप्त हो गया और त्रिभुज त्रिभुजों के रूप में न रहे। एक नया रूप प्रकट हो आया। एक षट्कोण (षट्भुज) लब्ध हुआ, जो अपने अंगों (चतुर्भुजों और त्रिभुजों) के गुण को खो बैठा है, और अब ऐसे गुण रखता है, जो उसके अंगों (चतुर्भुज और त्रिभुजों) में विद्यमान न थे।
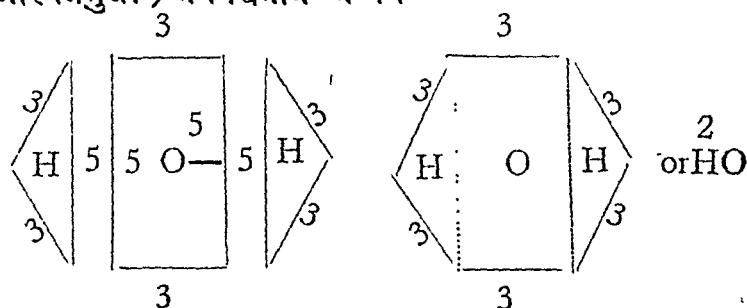
त्रिभुजों के और समानांतर चतुर्भुज के लम्बे भुज (कर्ण) इस वर्तमान षट्कोण (वा षट्भुज) में नितांत नहीं। षट्कोण छः अधिक कोण (बहिर्लंब obtuse angles) रखता है। यद्यपि त्रिभुजों में दो दो न्यून कोण (acute angles) पाये जाते थे, और चतुर्भुज में चार समकोण (right angles) थे। न तो त्रिभुजें समभुज थीं और न समानांतर चतुर्भुज, किंतु षट्भुज (षट्कोण) समभुज है।

(४) हाइड्रोजन के गुण और हैं, ऑक्सीजन के और। किंतु उन तत्त्वों से मिश्रित जल बिलकुल अलग-थलग है, वस्तु ही निराली है। यह निरालापन, यह अनोखापन (विचित्रता) कहाँ से आई? केवल रूप (form, माया) से। कुछ लोगों का ख़याल है कि मिश्र पदार्थ के विशेष गुण पहले किसी-न-किसी गुप्त रूप से अपने-अपने आश्रय में अवश्य विद्यमान रहते हैं, किंतु उपरि-लिखित रेखागणित का उदाहरण इस विचार का स्पष्ट खंडन करता है। षट्कोण (षडस्रः) एक नितांत नया रूप है, जो न तो अपने इस अंश में निहित था और न उस अंश में छिपा बैठा था।

अतः समस्त ब्रह्मांड केवल नाम-रूप का खेल है, और सबके सच्चे आश्रय (ब्रह्म) में निष्ठा होने पर तो जगत्-वगत न कभी हुआ था; न है, न होगा।

आप ही आप हूँ याँ ग़ैर का कुछ काम नहीं।
ज़ाते-मुतलक़ में मेरी शक्ल नहीं, नाम नहीं॥

भेदोऽयं भिन्नधर्म्मिप्रतिभटविषयज्ञानजज्ञानवेद्यो ।
धर्म्यादेर्भेदसिद्धिः पुनरपि च तथेत्यापतेच्चानवस्था॥

("स्वराज्यसिद्धिः" वार्तिककार सुरेश्वराचार्य [मंडन मिश्र] कृत)

अर्थ—वस्तुओं का पारस्परिक भेद तो तब उत्पन्न होता है, जब उनकी परस्पर तुलना की ज़ाय, किंतु परस्पर तुलना तब

हो सकती है, जब उन वस्तुओं में पहले भिन्नता और भेद-भावना हो। इसी प्रकार यह भेद और भेद-भावना तुलना का परिणाम है, और तुलना फिर भिन्नता और भेद-भावना के बाद आती है। यह चक्र (अनवस्था दोष) नानात्व (द्वैत) को घेरे हुए है।

श्रीगोविंदपादाचार्यजी कहते हैं—

उत्तमादीनि पुष्पानि वर्तन्ते सूत्रके यथा।
उत्तमाद्यास्तथा देहा वर्तन्ते मयि सर्व्वगे॥

अर्थ—जैसे एक धागे में उत्तम, मध्यम और कनिष्ट प्रकार के फूल गुँधे हुए हैं, वैसे सबमें समानेवाले मुझ (आत्मा) में उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ शरीर पिरोए हुए हैं।

यथा न संप्रशेत् सूत्रं पुष्पानामुत्तमादिता।
तथा नैकं सर्व्वगं मां देहानामुत्तमादिता॥

अर्थ—जैसे फूलों की उत्तमता, मध्यमता और कनिष्ठता तार पर कुछ प्रभाव नहीं डालती, वैसे शरीरों का उत्तम, मध्यम और कनिष्ठपन मुझ सर्वव्यापक आत्मा का तनिक भी विगाड़ नहीं कर सकता।

पुष्पेषु तेषु नष्टेषु यद्वत् सूत्रं न नश्यति।
तथा देहेषु नष्टेषु नैव नश्यामि सर्वगः॥

अर्थ—जैसे उन समस्त फूलों के नष्ट हो जाने पर तार को कुछ हानि नहीं, वैसे शरीरों के नाश हो जाने से मुझ सर्वगत आत्मा को तनिक भी क्षति नहीं पहुँचती।

की करदानी! की करदा, तुसी पुछोखां दिलबर की करदा (टेक)
इकसे घर विच बसदयां रसदयां, नहीं हुँदा विच परदा। की करदा० ॥ १ ॥
विच मसीत नमाज़ गुज़ारे, बुतख़ाने जा वड़दा। की करदा० ॥ २ ॥
आप इको, कई लाख घराँविच, मालिक हर घर घर दा। की करदा० ॥ ३ ॥

मैं जित वल देखां,उत वल ओही,हरइक दी संगत करदा। की करदा०॥४॥
मूसा ते फ़रऔन बना के, दो होके क्यों लड़दा। की करदा०॥५॥

अर्थ १—एक ही घर में रहते हुए परदा नहीं हुआ करता, मगर मेरा स्वरूप मेरे दिल-रूपी घर में रहते हुए परदा में छिपा हुआ है, इसलिये ऐ लोगो! तुम इस दिलबर (प्यारे आत्मा) को पूछो कि तू यह क्या लुकन-छिपन खेल कर रहा है।

२—कहीं तो वह मसजिद में छिपकर बैठा रहता है और उसके आगे नमाज़ होती है, और कहीं मन्दिरों में दाख़िल हुआ है, जहाँ उसकी पूजा हो रही है; इसलिये ऐ लोगो! तुम उस दिलबर को पूछो कि तू यह क्या कर रहा है।

३—आप स्वयं तो एक अद्वितीय है, मगर लाखों घरों (दिलों) के अंदर प्रविष्ट हुआ हरएक घर का स्वामी बना हुआ है; इसलिये ऐ लोगो! तुम इससे दर्याफ़्त तो करो कि यह दिलबर (प्यारा) क्या कर रहा है।

४—जिधर मैं देखता हूँ, उधर दिलबर ही नज़र आता है, और हरएक के साथ वही (मिला बैठा) नज़र आता है; इसलिये ऐ लोगो; आप दर्याफ़्त करो कि यह दिलबर (ईश्वर) क्या कर रहा है।

५—मुसलमानों में हज़रत मूसा और हज़रत फ़रौन हुए हैं, जिनमें ख़ूब झगड़ा हुआ था, इन दोनों को बनाकर या इस तरह से आप ही दो रूप होकर यह दिलबर क्यों लड़ता और लड़ाता है; इसलिये ऐ लोगो! आप दर्याफ़्त करो कि यह दिलबर क्या करता है।

सुत्ता रह्यो विच हर हर घर दे, सुझी फिरे लुकाई जे।
की करदा बेपरवाही जे॥

I looked above and in all spaces saw but one;
I looked below and in all billows saw but one;

I looked unto its heart, it was a sea of worlds ;
A space of dreams all full, and in the dreams but one ;
Earth, air, and fire and water, in thy fear dissolve ;
Ere they ascend to thee, they trembling blend in one.
The heavens shall dust become, and dust be heaven again
Yet shall the one remain and one my life with thine.

अर्थ—मैंने ऊपर दृष्टि उठाकर देखा और समस्त आकाश में मुझे एक ही दिखाई दिया। मैंने नीचे दृष्टि की और समस्त तरंगों में एक ही देख पड़ा। मैंने उसके मन में (भीतर) देखा, उसमें सृष्टियाँ भरी हुई थीं और एक आकाश स्वप्नों से भरपूर उसमें पाया और उन स्वप्नों में सिवा एक के और कोई न था, या और कोई दिखाई न दिया। ऐ प्यारे! पृथ्वी, वायु, अग्नि और जल तेरे भय के मारे पिघल जाते हैं, और तुझ तक पहुँचने से पहले काँपते हुए एक में मिल जाते हैं। आकाश राख (भस्म) हो जायँगे और राख आकाश हो जायगी, तो भी वह एक (अद्वैत तत्त्व) स्थिर रहेगा और मेरा जीवन तेरे साथ एक होगा।

एक साधु की गुदड़ी (कन्था) चोरी हो गई। किसने चुराई ? कौन चोर पड़ा ? एक कान्सटेबिल (कदाचित् परीक्षा के लिये चुरा ली होगी!)। चौकीदार ही चोर बन गया (न जाने किस विचार से)। साधु पुलिस-स्टेशन (थाने) के कहीं आस-पास ही रहता था। मौज में आकर रिपोर्ट लिखवाने गया—"लुट गया! लुट गया!! ग़रीब लुट गया!!!"

चोरी-गए माल की रिपोर्ट

थानेदार—तुम्हारा क्या गया है ?

साधु—सब कुछ। एक तो रज़ाई खो गई है।

थानेदार—और क्या ? साधु—बिछौना ।
„ और क्या ? „ चादर ।
„ और क्या ? „ कोट और अँगरखा ।
„ और क्या ? „ तकिया ।
„ और क्या ? „ आसन ।

थानेदार—कुछ और ? साधु—हाँ, छतरी भी जाती रही है ।

थानेदार—बस इतना ही कि कुछ और भी ?

साधु—हुज़ूर ! धोती भी चोरी हो गई ।

थानेदार—खूब स्मरण कर ले ।

साधु—और..................और......................

वह कान्सटेबिल जिसने चोरी की थी, पास ही खड़ा था । चोरी-गए माल की इतनी लंबी तालिका (फ़ेहरिस्त) सुनकर बेबस हँस पड़ा और गाली देकर बोला—"और-और बोले जाता है ! तेरा चोरी गया माल बस भी होगा कि नहीं ? तेरी झोपड़ी है कि सौदागर की कोठी ? इतना असबाब कहाँ से आ गया ?"

यह कहकर पुलिसमैन (कान्सटेबिल) साधु की गुदड़ी उठा लाया और थानेदार की ओर मुख करके बोला—"हुज़ूर, बस, केवल इतना तो इसका चोरी-गया सब माल है और इसने दर्जन-भर चीज़ें गिन मारीं ।"

थानेदार—(साधु से) क्या तू पहचान सकता है कि यह गुदड़ी तेरी है ?

साधु—हाँ, मेरी है ; और किसकी ?

इतना कहा और झटपट गुदड़ी कंधे पर डाल थाने से बाहर दौड़ चला ।

थानेदार ने सिपाहियों को आज्ञा दी, इसे चट पकड़ लो, जाने न पाए । और साधु को धमकाकर कहा—"तेरा चालान

होगा, तूने झूठी रिपोर्ट क्यों लिखाई ? हमको धोका देना चाहा ?"

साधु, जो देह और प्राण की चिंता एवं पाप-पुण्य के बंधन से बिलकुल मुक्त था, भय और आशा से आबद्ध (थानेदार) की रुष्टता को क्या समझता था, मुसकराकर उत्तर दिया—"हम झूठ बोलनेवाले नहीं हैं।"

यह कहा और उसी गुदड़ी को ओढ़कर बताया—"यह देखो मेरी रज़ाई।" उसी गुदड़ी को नीचे बिछाकर बताया—"यह देखो मेरा बिछौना।" धूप में उसी गुदड़ी को सिर पर रखकर कहा—"यह देखो मेरी छतरी।" गुदड़ी को त[illegible]कर नीचे डाला, और ऊपर बैठकर कहा—"यह देखो मेरा आसन।" इत्यादि।

वह व्यक्ति, जिसने विश्व के आश्रयदाता (ब्रह्म) को जाना है, उसका तो सभी कुछ ब्रह्म ही ब्रह्म हो गया। संबंधी और निकटवर्ती हैं, तो ब्रह्म; शासक और शासित हैं, तो ब्रह्म; प्रेम करनेवाले या वैर रखनेवाले हैं, तो ब्रह्म; माता, बहन, भाई हैं, तो ब्रह्म; उसके बाग़ और पुष्प-वाटिका ब्रह्म; उसकी लेखनी और कृपाण ब्रह्म। उसके लिये तो ब्रह्म ही साधु की गुदड़ी है। सारा घर-बार, जायदाद ब्रह्म है। अपनी तो प्रभात है यही और सायं यही है—

लबे-साक़ी मरा हम जामो हम नुक़्लस्तो हम बादा।

अर्थ—साक़ी (मस्ती की शराब पिलानेवाले) का ओष्ठ जो है, वही मेरा प्याला, नुक़्ल और शराब है।

तैं बिन मेरा सगा न कोई, अम्मा बाबल भैन न भाई।
प्यारे ! वसकर बहुती होई, तेरा इश्क़ मेरी दिलजोई॥
मैं विच मैं न रह गई राई, जब की पिया सँग प्रीति लगाई।
कदे जा आसमाने बैहन्दे हो, कदे इस जग दे दुःख सहन दे हो॥
कदे पीरे-मुग़ाँ हो बैहन्दे हो, मैं ताँ इकसे नाच नचाई।
मैं विच मैं न रह गई राई, जब की पिया सँग प्रीति लगाई॥

ऐसा साधु रंक से राव तक की परवाह न रखनेवाला अपने अनुभव से सिद्ध करता है कि एक ही तत्त्व (ब्रह्म) प्रत्येक रंग में प्रकट हो रहा है; वही सूर्य बनकर चमकता है, वही अंधकार (अज्ञान) रूपी सागर बनकर उछलता है; फूल में, काँटों में, तूती और बुलबुल की चोंच में, जल में, थल में, नगर में, ऊजड़ में, हर मकाँ में, हर काल में एक ही परब्रह्म अविभक्त और अविभाज्य रूप से शोभायमान है । उस एक ही इंद्रजाली (मदारी) के पिटारे (थैले) में प्रत्येक वस्तु मिल रही है ।

सप्तद्वारावकीर्णां च न वाचमनृतां वदेत् । (मनु० अ० ६)

तात्पर्य—इस (आत्म-तत्त्व को) पहचानवाला पाँचों इंद्रियाँ और मन बुद्धि (इन सातों द्वारों) से वास्तविक सत् (ब्रह्म) के विना कुछ व्यवहार नहीं करता; अर्थात् देखता है, तो ब्रह्म; सुनता है, तो ब्रह्म; सूँघता है, तो ब्रह्म; जो कुछ छूता है, उसको ब्रह्म ही जानता है; जो कुछ चखता है, उसे ब्रह्म ही पहचानता है; सोचता है, तो ब्रह्म; समझता है, तो ब्रह्म ।

खाँड का कुत्ता, गधा, चूहा, बिल्ला ।
मुँह में डालो ज़ायक़ा है खाँड का ॥

ज्ञानवान् खाँड ही से व्यवहार रखता है, कुत्ता, गधा, चूहा, बिल्ला आदि नाम-रूपों से लड़ाई-दंगा नहीं रखता ।

चाक्षुष दृष्टि को अत्यंत छलनेवाले (optical illusions) और अद्भुत चित्र देखने-सुनने में आये—

(१) दाईं ओर से देखो, तो राजा साहब हाथी पर जा रहे हैं, बाईं ओर से देखो, तो घोड़े की लगाम पकड़े साईस खड़ा है, आनंद यह कि चित्र एक ही है ।

(२) चित्र कमरे में लटक रहा है, किंतु उत्तमता यह कि सारे कमरे में कोई कहीं पर खड़ा हो, यही निश्चय होगा कि मुझसे आँखें लड़ा रहा है । यदि सौ मनुष्य एक ही समय वहाँ विद्यमान

हों, तो उनमें से प्रत्येक को पूरा-पूरा विश्वास होगा कि आँखें केवल मेरे ही साथ दो-चार हैं, मेरी ही ओर टकटकी लगाए तस्वीर घूर रही है।

(३) किंतु बहुत काल की बात है कि एक अँगरेज़ी-पत्र में एक आश्चर्यमय अनोखे चित्र का विज्ञापन पढ़ा, जिसका नाम (title) था "Here is the Bohemian with his family, where is the Cat ?"=यह देखो बोहेमिया का निवासी अपने बाल-बच्चों-सहित विद्यमान है, पर बताओ, बिल्ली कहाँ है ?

इस चित्र में आनंद की बात यह थी कि जो मनुष्य उसे हाथ में लेकर ध्यान से देखना आरंभ करता था, उसे बोहेमिया का निवासी अपने स्त्री और पुत्रादिकों सहित तत्काल दृष्टिगोचर हो जाता था, रहट चलना भी दिखाई दे जाता था, लहलहाते खेत और छायावाले वृक्ष भी दृष्टि में चढ़ जाते थे, नदी का दृश्य भी आँखों-तले फिर जाता था। इसके अतिरिक्त हरियाली और पशु-पक्षी आदि बीसियों वस्तुएँ दीदों (नेत्रों) में समा जाती थीं, किंतु बिल्ली का नाम-चिह्न न मिलता। बिल्ली लुप्त, कहीं न मिलती थी, घंटों ढूँढ़ा करो, ढूँढ़ने में कोई बात बाक़ी न रक्खो, काग़ज़-भर को इस सिरे से उस सिरे तक छान डालो, किंतु बिल्ली के दर्शन मिलना दुर्लभ।

अंततः हारकर क्रोध से चित्र को दे पटका, तो ए लो ! ग़ज़ब हो गया ! आश्चर्य ! विस्मय ! बोहेमिया का निवासी क्या हुआ ? उसकी स्त्री और बच्चे कहाँ हैं ? रहट, खेत, पशु-पक्षी, उनमें से कुछ भी सामने न रहा। समस्त काग़ज़ बिल्ली ही बिल्ली बन गया। एक बिल्ली ने सब काग़ज़ को घेर लिया। जब बिल्ली आई, तो बाक़ी सबकी हो गई सफ़ाई।

जब हम थे, तब तुम नाहीं, अब तुम हो, हम नाहिं।

यह उदाहरण शुक्ल यजुर्वेदसंहिता के चालीसवें अध्याय के अधोलिखित मंत्र का अर्थ जतलाता है—

ईशावास्यमिदꣳ सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत।
तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥

अर्थ—जो कुछ दीखे जगत् में, सब ईश्वर में ढाँप।
करो चैन इस त्याग से, धन-लालच से काँप ॥

इस मंत्र में सच्चे संन्यास (त्याग) का वास्तविक स्वरूप वर्णन किया है, साधु की यथार्थता बतलाई है।

मंत्र का तात्पर्य—(मंत्र का दूसरा भाग) यदि तुझको आनंद की कामना है, तो सांसारिक पदार्थों में मत ढूँढ़। रुपया में आनंद नहीं मिलेगा, ख्याति में नहीं मिलेगा, विषय-भोग तुम्हें घोर पातक में फँसाएगा, विषय-भावना के पीछे लगकर पछताना पड़ेगा, अज्ञान के मिथ्या पाश में फँसकर शोक के सिवा कुछ हाथ न आयेगा। संसार के भर्रे में आकर पछतावे (पश्चात्ताप) के हाथ मलते रह जाओगे। संसार-रूपी बोहेमिया के चित्र में सच्चे आनंद का पता नहीं मिलने का। आनंद-प्राप्ति का यदि कोई मार्ग है, तो केवल एक त्याग है, त्याग बिना आनंद कभी नहीं मिल सकता।

न कर्मणा न प्रजया न धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः। (श्रुति)

अर्थ—न कर्म से, न संतान से, न धन से, वरन् केवल एक त्याग के द्वारा मनुष्य अमृतत्व को पा सकता है।

(श्रुति का प्रथम भाग) इस त्याग के अर्थ मंत्र के पहले भाग में दिखाए हैं ; अर्थात् वह त्याग, जिससे समस्त दुःख दूर होते हैं, अंतःकरण की उस निर्मलता का नाम है, जिससे अंतर्दृष्टि नाम-रूप संसार को, बोहेमिया के निवासी और उसके कुटुंब के चित्र की भाँति, बिलकुल त्याग कर देती है, नाम-रूपों के धोखे से दृष्टि निवृत्त हो जाती है, और एक

आनंद (आत्मा) ही आनंद (आत्मा) वहार दिखाता है। यह सब कुछ ईश्वर (आत्मा) से ढक जाता है, जगत् का जगत्पन अँधेरे की भाँति प्रकाश (आत्मा) में लुप्त हो जाता है, सब संबंध मिट जाते हैं, सब बंधन छुट जाते हैं, नानात्व का चिह्न शेष नहीं रहता।

दीदए-दिल हुआ जो वा; खुल गया हुस्न-दिलरुबा।
यार खड़ा हो सामने, आँख न फिर लड़ाए क्यों?
बर आबे-हयाते-तो जहाँ हमचो हुबाब अस्त।
ओ नीज़ चो बरबाद शवद बर सरश आब अस्त॥

अर्थ तेरे जीवन के जल पर संसार बुलबुले के समान है, ज्यों ही कि वह नष्ट होता है, उसके सिर पर पानी होता है, अर्थात् जब वह टूटता है, तो पानी हो जाता है।

शिवं सर्वगतं शांतं बोधात्मकमजं शुभम्।
तदेक भावनं राम ! कर्मत्याग इति स्मृतः॥
(योगवासिष्ठ निर्वाण-प्रकरण)

अर्थ—ऐ रामचंद्र ! एक, सर्वगत, शांत, अज, आनंद और कल्याण-स्वरूप शिव को जान सब ओर से आँख फेरकर उसी एक तत्त्व-स्वरूप में भावित होना, इसी का नाम कर्मत्याग या संन्यास है।

वेदांत-सिद्धांत-मुक्तावली

योऽहमद्वय वस्त्वेव सद्वये दृढनिश्चयः।
प्राप्य चानन्दमात्मानं सोऽहमद्वय विग्रहः॥

अर्थ—वह एक 'मैं' जो यद्यपि एकमेवाद्वितीयं हूँ, किंतु एक

बेर द्वैत का पक्का विश्वासी हो गया था, अब आनंद (आत्मा) का अनुभव करके वही अद्वितीय-स्वरूप हूँ ।

नास्ति ब्रह्म सदानन्दमिति मे दुर्मतिः स्थिता ।
क्व गता सा न जानामि यदाहं तद्वपुः स्थितः ॥

अर्थ—'ब्रह्म सदानंद-स्वरूप नहीं है,' यह मेरी दुर्मति थी । किंतु अब तो मैं वही ब्रह्म हूँ, न जाने वह दुर्मति कहाँ उड़ गई ।

संसाररोगसंग्रस्तो दुःखराशिरिवापरः ।
आत्मबोधसमुन्मेपादानन्दाब्धिरहं स्थितः ॥

अर्थ—संसार-रोग (नाम-रूप) में ग्रस्त हुआ मैं अन्य हो गया था, दुःखों की राशि और शोक का पहाड़ बन गया था । किंतु अब आत्मबोध के उन्मेप से आनंद का सागर बन गया हूँ ।

योऽहमल्पेऽपि विषये रागवानतिविह्वलः ।
आनन्दात्मनि सम्प्राप्ते स रागः क्व गतोऽधुना ॥

अर्थ—तब नाशवान् तुच्छ वस्तुएँ मेरे हृदय को विह्वल कर देती थीं ; किंतु अब वह हलचल सब मिट गई, क्योंकि आनंदात्मा मैं स्वयं हूँ ।

सीन—सुख हुई दुःख दूर हुए, देख मुख महबूब दे चन्द नूँ जी ।
रैन चाँदनी देखके दुध जेही, पाया चित चकोर आनंद नूँ जी ॥
निक्का कत्त पटाड़ी पूर लीती, आगे सूर दी साँ इक तंद नूँ जी ।
हुई मंगलाचार जैकार बोलो, लद्धा अंदरों बालमुकुन्द नूँ जी ॥

यो वा एतदक्षरं गार्ग्यं विदित्वास्माँल्लोकात्प्रैति स कृपणः ।

(श्रुतिः)

वेद कहते हैं—"जो व्यक्ति आत्मज्ञान को प्राप्त नहीं करता और प्रत्यक्ष जगत् से मुख नहीं मोड़ता, वह कृपण (कंजूस-नीच) है ।" जैसे कंजूस धन-संपत्ति होने पर भी मक्खियाँ

मारता रहता है और कष्ट सहता है, वैसे ही आत्मानंद के होते हुए मैं दुःख और शोक के गढ़े में गिरा था, धन्य है, अब छुटकारा मिला, कृपणता और नीचता से अब मुक्ति मिली।

बुल्हा शाह मुबारकाँ लख देवो।
होई शांत जानी गले लाय के जी ॥
अहयुल्लनास बगोयेद मुबारकबादम ।
कज़ सनमख़ानए-तन दर हरमे-जाँ रफ़्तम ॥

अर्थ—ऐ लोगो ! मुझको मुबारकबाद दो कि प्यारे के शरीर-रूपी मंदिर से अब उसके प्राण के हरम में चला गया हूँ, अर्थात् शारीरिक दृष्टि से उठकर आत्मिक दृष्टि में मग्न हो गया हूँ।

विशुद्धोऽस्मि विमुक्तोऽस्मि पूर्णात्पूर्णतमाकृतिः ।
असंस्पृश्य समात्मानमंतर्ब्रह्मांडकोटयः ॥

अर्थ—मैं विशुद्ध हूँ, विमुक्त हूँ, पूर्ण (आकाश) से भी बढ़कर पूर्णतम (सर्वव्यापक) हूँ। असंख्य ब्रह्मांड मुझमें पड़े हैं, मैं असंस्पर्श्य हूँ, मेरा स्वरूप निर्लिप्त है।

परिणाम

वहाँ, जहाँ पर 'कहाँ' ? निहाँ (छिपा) है—
(यहाँ वहाँ या कहीं न)
तब, जबकि 'कब' भ्रम और भ्रांति है—
(अब तब और कभी न)
था, है, और होगा।
क्या ? कौन ?
जिसमें "क्या ? कौन ?" नष्ट है।
अल्ला-अल्ला, खैरसल्ला—अर्थात् राम-राम, छुट्टी मिली।

वहदतनामा

फ़क़ीरा ! आपे अल्लाह हो। (टेक)

आपे लाड़ा, आपे लाड़ी, आपे मापे हो ॥ १ ॥
आप बधाइयाँ, आप स्यापे, आप अलापे हो ॥ २ ॥
राँझा तूहीं, तूहीं राँझा, तूहीं भुल हीर न वेले रो ॥ ३ ॥
तेरे जिहा सानूँ एथे ओथे, कोई न जापे ओ ॥ ४ ॥
घुँड कढ के, क्यों चन मोंह उत्ते, आहले रहयों खलो ॥५॥
तूहीं सब दी जान प्यारी, तैनूँ ताना लगे न को ॥ ६ ॥
बोली ताना, यारी सेवा, जो देखें तूँ सो ॥ ७ ॥

अर्थ—आप ही तू स्वयं पति, आप ही पत्नी और आप ही पिता-माता है। इसलिये ऐ प्यारे ! तू आप ही ईश्वर हो, अर्थात् वस्तुतः अपने आपको ही तू ईश्वर निश्चय कर ॥ १ ॥

आप ही तू बधाई (आशीर्वाद), आप ही स्यापा और आप ही तू रोने-पीटने का आलाप है। इसलिये ऐ प्यारे ! अपने आपको ही तू प्रभु अनुभव कर ॥ २ ॥

वास्तव में तू ही राँझा और तू ही हीर है, अपने आपको भूलकर तू हीर की ख़ातिर वन-वन में व्यर्थ मत रो ॥ ३ ॥

तेरे जैसा यहाँ-वहाँ हमें कोई नहीं दीखता, इसलिये तू अपने आपको ही ईश्वर निश्चय कर ॥ ४ ॥

अपने चन्द्रमुख पर से घूँघट निकालकर तू एक ओर क्यों खड़ा हो रहा है ? ऐ प्यारे ! अपने आपको ईश्वर निश्चय कर ॥ ५ ॥

तू ही सबकी प्यारी जान है, तुझे कोई बोली-ठठोली नहीं लग सकती है। इसलिये तू अपने आपको ईश्वर निश्चय कर ॥ ६ ॥

वल्कि बोली-ठठोली, मित्रता, सेवा इत्यादि जो दीखता है, वह सब तू ही है। इसलिये अपने आपको ईश्वर निश्चय कर ॥ ७ ॥

सूली सलीब, जहर दे मुक्के करे न मुकदा जो ॥ ८ ॥
बुक्कल विच बड़ यार! जो सुत्ते, ओथे तेरी लो ॥ ९ ॥
तूहीं मस्ती विच शराबाँ, हर गुल दी ख़ुशबो ॥ १० ॥
राग रङ्ग दी मिठ्ठी सुर तूं, लैं कलेजा टो ॥ ११ ॥
लाह लीड़े, यूसुफ घुट मिल लै, दूई दे पट ढो ॥ १२ ॥
आठवें अर्श तेरा नूर चमकदा, होर भी ऊँचा हो ॥ १३ ॥
यह दुन्या तेरे नौहाँ दे विच, हँथ गल ते रख न रो ॥ १४ ॥
जे रब भालें बाहिर किधरे, एस गल्लों मुँह धो ॥ १५ ॥

सूली-सलीब और ज़हर के अन्त होने पर भी जो कदापि नहीं अन्त होता, वह तू है। इसलिये तू ही ईश्वर है, ऐसा निश्चय कर ॥ ८ ॥

प्यारे की बग़ल में प्रवेश होकर हम जब सोये, तो वहाँ तेरा ही प्रकाश पाया, अतएव तू अपने आपको ईश्वर समझ ॥ ९ ॥

शराब में मस्ती और पुष्प में गंध तू है, इसलिये अपने आपका तू अनुभव कर ॥ १० ॥

कलेजे में चुटकियाँ भरनेवाला जो राग-रंग का मीठा स्वर है, वह तू है, अतएव तू अपने आपको ईश्वर समझ ॥ ११ ॥

द्वैत के वस्त्र उतारकर तू अपने प्यारे आत्मा (यूसुफ़) को घुटकर मिल और इस प्रकार अपने आपको ईश्वर अनुभव कर ॥ १२ ॥

आठवें आकाश पर तेरा ही प्रकाश चमकता है और तू इससे भी ऊपर हो और इस प्रकार अपने आपको ईश्वर अनुभव कर ॥ १३ ॥

यह संसार तेरे नाखुनों का खेल है, तू मुख पर हाथ रखकर मत रो, बल्कि अपने आपको ईश्वर निश्चय कर ॥ १४ ॥

यदि तू अपने से बाहर कहीं ईश्वर ढूँढ़ना चाहता है, तो इस बात से तू मुख धो डाल अर्थात् तुझे बाहर नहीं मिलेगा और ऐ फ़क़ीर! तू अपने आपको ईश्वर मान कर ॥ १५ ॥

तू मौला नहीं बन्दा चन्दा, झूठ दी छड दे खो ॥ १६ ॥
पवन इन्दर तेरी पण्डाँ ढोंदे, क्यों, तैनूँ किते न ढो ॥ १७ ॥
काहनूँ पया खेड़ना हैं भौं भौं बिलयां, बैठ निचल्ला हो ॥ १८ ॥
तेरे तारे सूरज थई थई नचदे, तू बैह जाकर चौ ॥ १६ ॥
पचे न तैनूँ सुख बे ओड़क, एहो गिरानी खो ॥ २० ॥
दुःखहर्त्ता ते सुखकर्त्ता, तैनूँ ताप गये कद पोह ॥ २१ ॥
चोर न पये तैनूँ भूत न चमड़े, होर गयो क्यों हो ॥ २२ ॥

तू स्वयं मालिक व प्रभु है, नौकर - चाकर तू नहीं है। अपने आप को बद्ध जीव मानने का जो तेरा झूठा स्वभाव है, इसे तू छोड़ और अपने आपको ईश्वर निश्चय कर ॥ १६ ॥

पवन और इन्द्र देवता तो तेरा बोझ उठाते हैं, फिर तेरी सेवा क्यों नहीं कभी करते? बलिक सर्वप्रकार से वे तेरी ही सेवा करते हैं, इसलिए तू अपने आपको ईश्वर निश्चय कर ॥ १७ ॥

प्यारे को इधर-उधर ढूँढ़ने की जो घूमन वेरी खेल है, उस खेल को व्यर्थ तू क्यों खेलता है? स्थिर होकर बैठ और अपने स्वरूप का अपने भीतर अनुभव कर ॥ १८ ॥

तेरे आश्रय तारे और सूर्य थई थई नाच रहे हैं। तू स्वयं स्थिर होकर बैठ, और इस तरह अपने स्वरूप का अनुभव कर ॥ १६ ॥

तुझे अनन्त सुख पचता नहीं है, इस बदहज़मी को तू दूर कर और अपने आपको ईश्वर निश्चय कर ॥ २० ॥

तू स्वयं दुःखहर्त्ता और सुखकर्त्ता है, तुझे कब तीनों ताप तपा सकते हैं? तू ईश्वर है, ऐसा निश्चय कर ॥ २१ ॥

तुझे चोर नहीं पकड़ते और न भूत-प्रेत तुझे चिमट सकते हैं, फिर तू अपने से इतर क्यों हो रहा है? और अपने आपमें क्यों नहीं आता? ए प्यारे! होश में आ और अपने को ईश्वर निश्चय कर ॥ २२ ॥

तूँ साची केढ़ी कह्यां मारें, हुन थककर चलियाँ है सौ ॥ २३ ॥
खुलियाँ तैनूँ भऊ न खान्दे, लुक लुक क़ैद न हो ॥ २४ ॥
वहदत नूँ कर कसरत देखें, गयों भैड़ा किधरों हो ॥ २५ ॥
ताज तखत छड ठट्टी मल्ली, एस गल्लों तूँ रो ॥ २६ ॥
छड़ के घर दियाँ खण्डाँ खीराँ, की लोड़ चबावें तो ॥ २७ ॥
तेरे घर विच राम वसेन्दा, हाय कुट कुट भर न भो ॥ २८ ॥
राम रहीम सब बन्दे तेरे, तेथों बड़ा न को ॥ २९ ॥

तू साची कौन से फावड़े मार रहा है अर्थात् कौन सा परिश्रम कर रहा है, जो अब थककर सोने लगा है ? ऐ प्यारे, शीघ्र उठ, और अपने आपको ईश्वर अनुभव कर ॥ २३ ॥

स्वतंत्र (आज़ाद) होने में तुझे कोई राक्षस इत्यादि तो नहीं खाते, इसलिये छिप-छिपकर क़ैद मत हो, बल्कि अपने आपको ईश्वर निश्चय करके मुक्त हो ॥ २४ ॥

एकता को तू नाना करके देखता है। भैंगे नेत्रवाला तू कहाँ से हो गया है ? हृदय के नेत्र खोलकर तू अपने आपको ईश्वर अनुभव कर ॥२५॥

निज राज्य का ताज और तख़्त छोड़कर छोटी-सी कुटिया तूने ले ली है, इस मूर्खता पर तू रुदन मत कर और अपने स्वरूप का तू अनुभव कर ॥ २६ ॥

निज घर के स्वादिष्ठ भोजन छोड़कर फूस व तूड़ी को तू क्यों चबा रहा है ? क्यों नहीं अपने को आनन्दस्वरूप आत्मा अनुभव करता ? ॥२७॥

तेरे घट में राम बस रहा है। हाय, वहाँ भुस कूट-कूटकर मत भर, बल्कि उस स्वरूप का अनुभव कर ॥ २८ ॥

राम, रहीम सब तेरे बन्दे (सेवक) हैं, तुझसे बड़ा कोई नहीं है, इसलिये तू अपने आपको ईश्वर निश्चय कर ॥ २९ ॥

आप भगीरथ, आप ही तीरथ, बन गङ्गा मल धो ॥ ३० ॥
परदे फ़ाश होवीं सब करके, नङ्गा सूरज हो ॥ ३१ ॥
छड मौहरा, सुन 'राम' दुहाई, अपना आप न को ॥ ३२ ॥

गङ्गा को स्वर्ग से लानेवाला राजा भगीरथ तू आप है, और आप ही तू तीर्थ है। स्वयं गङ्गा रूप होकर तू सब मल धो, और इस तरह अपने आपको ईश्वर अनुभव कर ॥ ३० ॥

ईश्वर करे तेरे सब परदे फट जायँ और तू सूर्यवत् नितान्त नङ्गा हो और इस प्रकार नंगा हुआ तू अपने स्वरूप का साक्षात्कार करे। ॥ ३१ ॥

तू संसार-रूपी खेल वा विषय-भोग-रूपी विष को त्याग, ऐसी "राम" की पुकार है ; उसे सुन, और अपने आपको ईश्वर निश्चय कर के निज स्वरूप का साक्षात्कार कर। अपने आपका नाश मत कर ॥ ३२ ॥

ॐ ॐ ॐ ॐ

राम राम राम